सर्वश्रेष्ठ
रूसी और सोवियत
पुस्तकमाला
अ० चेख़ोव
लघु उपन्यास
और
कहानियां

सर्वश्रेष्ठ रूसी और सोवियत पुस्तकमाला

अ॰ चेख़ोव

लघु उपन्यास और कहानियां

प्रगति प्रकाशन

मास्को • १९७४

अनुवादक – कृष्ण कुमार

А. Чехов

Повести и рассказы

На языке хинди

पहला संस्करण : १९५९

दूसरा संस्करण : १९६५

तीसरा संशोधित संस्करण : १९७४

Ч $\frac{70301-372}{14(01)-74}$ 563—74

अनुक्रम

ग्रन्तोन चेख़ोव

ग्रन्तोन चेख़ोव ने बहुत कम उम्र पाई थी (१८६०–१९०४)। प्रौढ़ावस्था के ग्रागमन से बहुत पहले ही उनका जीवन दीप बुझ चुका था। परन्तु विश्व साहित्य पर उनका प्रभाव ग्राज भी महसूस किया जाता है। उनके तथा उनके सृजन कार्य का जितना ज्ञान लोगों को है उतना कम जीवित लेखकों के बारे में होता है। किसी लेखक से प्रेम करना उसकी कलाकृतियों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना ही तो होता है। ज़ाहिर है कि जनता में ग्रपने ग्राप को तथा ग्रपने निकट ग्रतीत को जानने की इच्छा जितनी प्रबल होती जायेगी उतना ही लेखक से उसका प्रेम बढ़ता जायेगा। चेख़ोव के समय के समालोचक उन्हें निराशावादी तथा ग्रंधियारे ग्रौर उदास लोगों का गायक कहा करते थे जिनकी ग्राशा के चिराग बुझ चुके हैं। मगर ग्राज के पाठक के लिये चेख़ोव ऐसी कोई हस्ती नहीं। उनके समकालीन ग्रालोचकों का कहना था कि चेख़ोव की रचनाग्रों में गति का ग्रभाव है। चेख़ोव को निष्क्रियता का दोषी ठहराते थे। वे चाहते थे कि वह कोई सामाजिक समाधान, एक पूरा सिद्धांत या कम से कम कोई ग्रस्थायी सामाजिक हल पेश करें। लेकिन हम कलाकार की ग्राईने की तरह पारदर्शी ग्रात्मा जानते हैं ग्रौर यह कल्पना करना कठिन है कि ग्रगर चेख़ोव ने ग्रपनी कृतियों में उन मांगों को पूरा करने का प्रयास किया होता तो उसकी सुन्दर गद्य शैली का क्या हश्र होता।

चेख़ोव के ग्रागमन से साहित्य तथा नाट्य कला में एक नयी धारा ने जन्म लिया जो कथ्य को परोक्ष रूप में प्रस्तुत करती है। यह पात्र के

चरित्र को और अधिक गूढ़ बनाने तथा उसके अत्यंत लाक्षणिक मूल्यांकन का एक साधन है। चेख़ोव के जीवन की अंतर्धारा बेहद व्यापक है। वह असाधारण रूप से नियमनिष्ठ तथा कड़े और संयत कलाकार थे—एक शब्द को जन्म देने नहीं, बल्कि उल्टे अगर कोई शब्द अनावश्यक हो तो उसे मिटा देने की कोशिश करते थे। उसके बाद जो कुछ सामने आता था, वह ख़ूब मंजा हुआ, तराशा हुआ होता था। उनके शब्दों के चुस्त तथा गठे हुए वाक्यों की हर पंक्ति पुराने सितारों की तरह मनों भारी होती है। उनकी विधि से मुझे सर्जरी के विशेष लैम्प की याद आती है जो आत्मा के इस कुशलतम सर्जन की आपरेशन की मेज़ पर रखा हुआ है: उसके प्रकाश में हर चीज़ साफ़ साफ़ दिखाई देती हैं, और कोई भी तफ़सील आदमी का ध्यान नहीं हटाती है। परन्तु बर्फ़ की तरह सफ़ेद इस परत के नीचे छिपी हुई लेखक की अंतर्धाराएं भी अत्यंत व्यापक हैं।

उन दिनों की आलोचना के विभिन्न मूल्यांकन का सार मेरी समझ से यह है कि चेख़ोव ने सभी तथाकथित रोगग्रस्त सवालों का विश्लेषण तम्बाकू के धुएं से भरे कमरे में नहीं, बल्कि रूसी प्रकृति के निश्चल, प्रशांत नीले आकाश के नीचे किया। और यद्यपि चेख़ोव के संयत तथा संभले अंदाज़ में सल्तिकोव-श्चेद्रीन के निन्दा भरे व्यंग या उस्पेन्स्की की कड़वाहट की सी कोई बात नहीं है, फिर भी हम आज अपने समय की ऊंचाइयों से अनुमान कर सकते हैं कि चेख़ोव की तमाम कृतियां अति कटु प्रमाणों का संकलन हैं जो रूसी जनमत के समक्ष निर्णय के लिये प्रस्तुत की गयी हैं। यह उस समय के जीवन की अत्यंत दुखद शहादत थी, जो कभी कभी इस उदासीन नक़ाब वाक्य पर समाप्त होती थी: "इस संसार में कोई कुछ नहीं समझ सकता!"

लेकिन जिनको समझना था उन्होंने समझा। उन्होंने समझा कि लघु कथा "डाक" में आधी रात के अंधेरे में डाकिये की नाराजगी का कारण क्या था और उसने क्यों विद्यार्थी का उत्तर नहीं दिया। और "रौशनी" शीर्षक कथा में लोग रौशनी को किस ओर चाहते थे। और "एक नीरस कहानी" में प्रोफ़ेसर निकोलाई स्तेपानोविच अपनी सुखसमृद्धि के बावजूद क्यों चैन से सो नहीं पाते थे। यही कारण था कि रूस के लोग चेख़ोव की पुस्तकें पढ़कर ज़्यादा अच्छे और अधिक ईमानदार बन जाते थे। उन्होंने

हमारे पूर्वजों को ओछी, कूपमण्डूक जीवन से घृणा करने की शिक्षा दी, उन्होंने पशुवत, पूंजीवादी ख़ुशहाली की जड़ों को हिलाकर रख दिया और यह बताया कि आदमी की श्रेष्ठता इस पर निर्भर करती है कि वह समाज को कहां तक फ़ायदा पहुंचा सकता है। ऐसी श्रेष्ठकृतियों की रचना वही कलाकार कर सकता था जो आशावादी हो, जो सच्चरित्र हो और जिसका नैतिक स्तर अडिग और ऊंचा हो। और यह चेख़ोव का दोष नहीं था कि उनके सृजनात्मक प्रयत्न के व्यापक दर्पण में अकसर प्रिशिबेयेवों तथा अक्सिनयायों के बदसूरत चेहरे तथा आदमियों के ख़ाली खोल दिखाई देते हैं।

चेख़ोव महान व्यक्ति थे, उनके भावावेग सतह के ऊपर नहीं, सतह के नीचे होते थे। रूस के उज्ज्वल भविष्य में उनकी आस्था असीम थी। उन्हें अपनी मातृभूमि से बेहद प्रेम था यद्यपि वह इसका ढिंढोरा नहीं पीटा करते थे। सच्चे प्रेम में दिखावा नहीं हुआ करता। उस समय का रूस आज के रूस से बहुत भिन्न था, लेकिन चेख़ोव को उस पुराने रूस से भी प्रेम था जिसमें लोगों के दुख-दर्द थे और उस आश्चर्यजनक सत्य की आशा भी थी जो एक दिन रूस तथा सारे संसार के द्वार पर खटखटाने वाला था। उन्हें उस समय के मास्को से, शोरभरे और धूलभरे मास्को से, जिसकी सड़कें ऊबड़-खाबड़ थीं, अगाध प्रेम था, और मास्को का कठोर मौसम भी उन्हें, उस आदमी को अच्छा लगता था जिसकी आगे चलकर तपेदिक से मृत्यु होनेवाली थी... लेकिन रूस से प्रेम करने पर भी वह कभी उसकी ख़ुशामद नहीं करते थे जैसा कि पराये और मक्कार लोग उसकी सजगता को बुझाने के लिए किया करते हैं। लेखक चेख़ोव रूस की स्थिति पर बहुत दुखी थे। और ऐसे लोगों को पीड़ाभरे और कभी-कभी आवेशपूर्ण शब्द कहने का भी अधिकार होता है। ऐसा भी हुआ है कि इस डाक्टर ने बड़ा कठोर रोग-निदान किया है मगर यह वास्तविकता का मात्र एक आवेशपूर्ण बयान न था, उस रोग-निदान में ही चिकित्सा का संकेत भी था जो अक्सर अस्पष्ट होता था। हमारी धरती के नीचे से नवजीवन के स्रोत फूटे और जब तक जनता के सुख के खोज करनेवालों ने जनता के पुनरुत्थान के लिये जीवनदायी जल के चश्मे खोद नहीं निकाले तब तक चेख़ोव अपने कार्य तथा अपने क्रियाशील स्वप्नों के सहारे ज़िन्दा रहे।

चेख़ोव की पुस्तकों के पन्ने इस स्वप्न से अटे पड़े हैं। चेख़ोव ने सुन्दर जीवन को इस धरती पर ले आना चाहा था, उस जीवन को जिसमें न्याय हो और ग़रीबी न हो और जिसमें श्रम ही अस्तित्व का आधार हो। वह जानते थे कि इस सुन्दरता की क़ीमत बहुत भारी है परन्तु उन्हें पूर्ण विश्वास था कि उसकी जनता में इतनी बौद्धिक शक्ति है कि वह यह क़ीमत चुका सकती है। दोस्तोयेव्स्की ने १८७७ की डायरी में लिखा था कि रूस घटनाओं की देहलीज़ पर खड़ा है। इसके बहुत दिनों बाद चेख़ोव का अनुमान था कि घटनाएं अभी दो सौ बरस दूर हैं। ये दोनों भविष्यवाणियां अगर एक जैसी नहीं साबित हुईं तो इसका कारण केवल यह था कि प्रातःकाल बहुत धीरे धीरे घसिटता चलता है और सबसे अंतिम, सबसे ठंडी तथा सबसे कठिन घड़ी हज़ारों वर्षों ठहर जाती है।

ज़रा सोचिये, रूस में सूर्योदय कितना धीरे धीरे हुआ, रूसी मज़दूर वर्ग कितना लम्बा रास्ता तय करनेवाला था, उसने तथा उसके केन्द्रबिन्दु – बोल्शेविकों ने – जो आगे चलकर क्रांति का फ़लीता बने, कैसा करिश्मा दिखाने का फ़ैसला किया। चेख़ोव ने तभी समझ लिया था कि बुद्धिजीवी लोग अपने आप उस समय के रूस की पाशविक, निर्मम तथा क्रूर जीवन-पद्धति के विरुद्ध संघर्ष करने में असमर्थ हैं। याद कीजिये कैसे कात्या वृद्ध, बुद्धिमान निकोलाई स्तेपानोविच के हाथों को दीवानों की तरह चूमते हुए उससे अनुरोध करती है: "मैं ऐसे तो ज़िन्दा नहीं रह सकती! मैं नहीं रह सकती! ईश्वर के लिए मुझे बताओ तो, कि मैं क्या करूं, मुझे अभी, फ़ौरन, इसी क्षण बताओ। बताओ मैं क्या करूं!" और यह अतिप्रबुद्ध व्यक्ति, जो स्वयं उसी निराशा का शिकार है, नहीं जानता कि उस समय के घुटनभरे वातावरण से निकलने का उपाय क्या है। यह १८८८ की बात है। उससे एक साल पहले पीटर्सबर्ग की रात और भी काली और अंधेरी थी, चौराहे पर फांसी का तख़्ता लटका हुआ था जिसकी ओर अलेक्सान्द्र उल्यानोव सुबह की ठंड में ठिठुरता तथा मई के बुझते सितारों को अंतिम बार देखता बढ़ रहा था। पांच बरस बाद ही उसका छोटा भाई व्लादीमिर उल्यानोव, जिसका नाम आगे चलकर विश्व की जनता आशा और श्रद्धा के साथ लेनेवाली थी, समारा नगर से पीटर्सबर्ग के लिए, मुक्ति संग्राम की अगली पंक्तियों की ओर रवाना हुआ। और दस बरस बीतने पर रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की प्रथम कांग्रेस

हुई। यह कांग्रेस अभी लेनिन के बिना ही हुई, जो उस समय निर्वासन में थे। इस कांग्रेस में कुल नौ व्यक्ति उपस्थित थे। नये रूस का और रूसी क्रांति का यह पहला क़दम था।

उस मनहूस धुंधलके में जिसमें प्रातःकाल की किरणों का आभास ही झलकने लगा था, कितने ही इलाक़ों पर अकाल और भुखमरी की परछाईं पड़ी, एक ज़ार के स्थान पर एक बौना ज़ार राज सिंहासन पर बैठा, ग्लेब उस्पेन्स्की पागल हो गया, और गार्शिन उस स्याह वातावरण में आत्महत्या कर बैठा। इन तिथियों पर विचार करने से ही कितनी सीखें तथा विचार के लिये कितना मसाला मिलता है।

चेख़ोव के प्रोफ़ेसर लोग रातों को शांतिपूर्वक इसलिए सो नहीं पाते थे कि जनता की पुकार सुनाई देती थी और रूसी मानव का दुखी विवेक जाग रहा था। अधिक से अधिक संख्या में जन समूह हरकत में आने लगा था और गलियों में क्रांतिकारी गाने की धुनें सुनाई पड़ने लगी थीं।

हमारे प्रिय लेखक की कटु उदासीनता की जड़ें यही थीं। रूस का प्रातःकाल निकट था और उस घड़ी तक जिन्दा न रहना असहनीय था... प्रथम रूसी क्रांति के समय भी चेख़ोव जीवित नहीं थे।

चेख़ोव को मरे ७० वर्ष बीत चुके हैं परन्तु उनका नाम सितारों को छू रहा है। चेख़ोव जनता के प्रतिबिम्ब थे तथा जनता का बौद्धिक विवेक चेख़ोव का प्रतिबिम्ब था। चेख़ोव हर जगह सम्मानित अतिथि हैं। मज़दूर के घर में भी उनका आदर सत्कार होता है, विद्वान अकादमीशियन भी उन्हें सिर आंखों पर बिठाते हैं तथा सैनिकों के भी वह प्रियपात्र हैं।

रूस के सपूत चेख़ोव आज भी अपनी मातृभूमि के साथ क़दम से क़दम मिलाकर चल रहे हैं।

लेओनीद लेओनोव,
लेखक, लेनिन पुरस्कार विजेता

क्लर्क की मौत

एक सुन्दर रात को क्लर्क, इवान द्मीत्रिच चेरव्यकोव अव्वल दर्जे की दूसरी पंक्ति में बैठकर दूरबीन की मदद से 'लक्लोचेस दे कर्नविल' का आनन्द ले रहा था। वह खेल देख रहा था और अपने को सबसे सुखी मनुष्य समझ रहा था, जब यकायक... कहानियों में 'यकायक' एक घिसा-पिटा शब्द हो गया है, किन्तु लेखक सही ही हैं: ज़िन्दगी अचम्भों से भरी है! तो, यकायक उसका चेहरा सिकुड़ गया, उसकी आंखें आसमान की ओर चढ़ गयीं, उसकी सांस रुक गयी... वह आंखों से दूरबीन हटाकर अपने स्थान पर दोहरा हो गया और... आक छीं!!! कहने का मतलब यह कि उसे छींक आ गयी। यूं तो हर किसी को जहां चाहे छींकने का हक़ है। किसान, थाने के दारोग़ा, यहां तक कि प्रिवी कौंसिल के मेम्बर तक छींकते हैं–हर कोई छींकता है, हर कोई। चेरव्यकोव को इससे कोई झेंप नहीं लगी, रूमाल से उसने अपनी नाक पोंछी और एक शिष्ट व्यक्ति होते हुए अपने चारों तरफ़ देखा कि कहीं उसकी छींक से किसी को असुविधा तो नहीं हुई? और तभी वह सचमुच झेंप गया क्योंकि उसने एक वृद्ध व्यक्ति को पहली पंक्ति में अपने ठीक आगे बैठा हुआ देखा जो अपनी गंजी खोपड़ी और गरदन को दस्ताने से पोंछ रहा था और कुछ बड़बड़ाता जा रहा था। चेरव्यकोव ने उस बूढ़े को पहचान लिया कि वह यातायात मंत्रालय के सिविल जनरल ब्रिजालोव हैं।

"मैंने उनके ऊपर छींका है!" चेरव्यकोव ने सोचा। "वह मेरे अफ़सर नहीं हैं, यह सही है, किन्तु, तब भी यह कितना भद्दा है! मुझे माफ़ी मांगनी चाहिए।"

हल्के से खांसकर, चेरव्यकोव आगे झुका और जनरल के कान में फुसफुसाया :

"मैं क्षमाप्रार्थी हूं, महानुभाव, मैं छींका था... मेरा यह मतलब नहीं था कि..."

"अजी, कोई बात नहीं..."

"कृपया मुझे क्षमा कर दें। मैं... यह जान-बूझकर नहीं हुआ था..."

"क्या तुम चुप नहीं रह सकते? मुझे सुनने दो!"

कुछ घबड़ाया हुआ चेरव्यकोव झेंप में मुसकराया और खेल की तरफ़ मन लगाने की कोशिश की। वह खेल देख रहा था किन्तु उसे आनंद नहीं आ रहा था। बेचैनी उसका पीछा नहीं छोड़ रही थी। मध्यांतर में वह ब्रिजालोव के पास पहुंचा, थोड़ी देर के लिए उनके आसपास घूमा-फिरा और फिर साहस बटोरकर मिनमिनाया :

"हुज़ूर! मैंने आप के ऊपर छींक दिया... मुझे क्षमा करें... आप जानते हैं... मेरा यह मतलब नहीं..."

"अरे! बस... मैं तो उसे भूल भी गया था, छोड़ो अब इस बात को!" जनरल ने कहा और बेसब्री में उसका अधर फड़कने लगा।

"कहते हैं कि भूल गये हैं, लेकिन आंखों में विद्वेष भरा है," चेरव्यकोव ने जनरल की ओर संदेह की नज़रों से देखते हुए सोचा। "और बात नहीं करना चाहते! मुझे उन्हें अवश्य समझाना चाहिए कि मेरा यह मतलब नहीं था कि... कि यह एक स्वाभाविक चीज़ थी, नहीं तो शायद वह यह सोच बैठें कि मैं उन पर थूकना चाहता था। अभी भले ही वह ऐसा न सोचें, लेकिन बाद में शायद सोचने लगें..."

घर पहुंचकर चेरव्यकोव ने अपनी पत्नी को अपने अभद्र व्यवहार के बारे में बताया। उसे लगा कि उसकी बीवी ने इस घटना की बात बड़ी बेपरवाही से सुनी। पहले वह सहम गयी, पर यह जानकर कि ब्रिजालोव 'पराया' अफ़सर है निश्चिन्त-सी हो गयी।

"लेकिन मेरा ख़्याल है कि तुम्हें जाकर माफ़ी मांग लेनी चाहिए," उसने कहा, "नहीं तो वह सोचेंगे कि तुम्हें भले आदमियों में बैठने का शऊर नहीं है।"

"यही तो! मैंने माफ़ी मांगने की कोशिश की थी, पर इसका ढंग ऐसा अजीब था... कोई क़ायदे की बात ही नहीं की। फिर वहां बात करने का मौक़ा भी नहीं था।"

अगले दिन चेरव्यकोव ने नयी वर्दी पहनी, बाल कटवाये और ब्रिजालोव से माफ़ी मांगने गया... जनरल का मुलाक़ाती कमरा प्रार्थियों से भरा हुआ था और जनरल ख़ुद उनकी अर्ज़ियां सुन रहा था। उनमें से कुछ से बात करने के बाद जनरल की निगाह उठी और चेरव्यकोव के चेहरे पर जा अटकी।

"हुज़ूर, कल रात, 'आर्केडिया' में, अगर आपको याद हो," क्लर्क ने कहना शुरू किया, "मैं... आ... मुझे छींक आ गयी थी, और... आ... ऐसा हुआ... मैं क्षमा चाहता..."

"उफ़, क्या बकवास है!" जनरल ने कहा और दूसरे आदमी की ओर मुड़ा।

"मेरी बात सुनते नहीं!" डर से पीले पड़ते हुए चेरव्यकोव ने सोचा, "इसका मतलब है कि वह मुझसे बहुत नाराज़ हैं। बात यहीं ख़त्म नहीं की जा सकती... मुझे यह बात उन्हें समझा ही देनी चाहिए।"

जब जनरल अन्तिम प्रार्थी से बात करके अपने निजी कमरे की ओर जाने के लिए मुड़ा, चेरव्यकोव उनके पीछे भिनभिनाता हुआ जा पहुंचा:

"हुज़ूर, मुझे माफ़ करें! हार्दिक पश्चात्ताप होने के कारण ही मैं आपको कष्ट देने का दुस्साहस कर पा रहा हूं।"

जनरल ने रुआंसा चेहरा बनाया, हाथ हिलाया और "तुम तो मेरा मज़ाक़ उड़ा रहे हो, जनाब!" कहकर वह दरवाज़े के पीछे छिप गया।

"मज़ाक़?" चेरव्यकोव ने सोचा, "मुझे तो इसमें कोई मजाक़ की बात दिखायी नहीं देती। जनरल हैं पर इतनी सी बात नहीं समझते! बहुत अच्छा, मैं इस भले आदमी को अब अपनी क्षमा-प्रार्थनाओं से परेशान नहीं करूंगा। भाड़ में जायें वह! मैं उन्हें एक पत्र लिख दूंगा, मैं अब उनके पास जाऊंगा नहीं! हां, मैं नहीं जाऊंगा, बस!"

ऐसे ही विचारों में डूबा चेरव्यकोव वापस घर पहुंचा, पर उसने पत्र नहीं लिखा। उसने बहुत सोचा-विचारा, लेकिन वह यह नहीं तय कर पाया

कि बात किन शब्दों में लिखी जाये। अतः अगले दिन फिर, उसे मामला साफ़ करने के लिए जनरल के पास जाना पड़ा।

"श्रीमान! मैंने कल आपको कष्ट देने की जो हिम्मत की थी..." उसने कहना शुरू किया, अब जनरल ने उसपर प्रश्नसूचक निगाह डाली, "आप पर हंसने के लिए नहीं, जैसा कि हुज़ूर ने कहा, मैं आपके पास माफ़ी मांगने आया था, कि आपको मेरी छींक से कष्ट हुआ... जहां तक आपका मज़ाक़ उड़ाने की बात है, मैं ऐसी बात कभी सोच भी नहीं सकता, मैं यह हिम्मत कैसे कर सकता हूं? अगर हम लोगों के दिमाग़ में ऐसे व्यक्तियों का मज़ाक़ बनाने की बात घर कर जाये, तो फिर सम्मान की भावना कहां रह जायेगी... बड़ों की कोई इज्ज़त ही नहीं रह जायेगी..."

"निकल जाओ यहां से!!" गुस्से से कांपते, लाल पीले हो, जनरल चीख़ा।

भय से स्तम्भित हो, चेरव्यकोव फुसफुसाया: "क – क – क्या?"

पैर पटकते हुए जनरल ने दोहराया: "निकल जाओ!!"

चेरव्यकोव को लगा जैसे उसके भीतर कुछ टूट सा गया हो। लड़खड़ाते हुए पीछे चलकर वह दरवाज़े तक पहुंचा, दरवाज़े से बाहर आया और सड़क पर चलने लगा। वह न कुछ देख रहा था, न सुन रहा था... संज्ञाशून्य, यंत्रचालित-सा वह सड़क पर बढ़ता गया; घर पहुंचकर वह बिना वर्दी उतारे, जैसे का तैसा, सोफ़े पर लेट गया और... मर गया।

१८८३

गिरगिट

पुलिस का दारोग़ा ओचुमेलोव नया ओवरकोट पहने, बग़ल में एक बण्डल दबाये बाज़ार के चौक से गुज़र रहा था। उसके पीछे पीछे लाल बालोंवाला पुलिस का एक सिपाही हाथ में एक टोकरी लिए लपका चला आ रहा था। टोकरी ज़ब्त की गई झड़बेरियों से ऊपर तक भरी हुई थी। चारों ओर ख़ामोशी... चौक में एक भी आदमी नहीं... भूखे जबड़ों की तरह दुकानों व शराबख़ानों के खुले हुए दरवाज़े ईश्वर की सृष्टि को उदासी भरी निगाहों से ताक रहे थे। यहां तक कि कोई भिखारी भी आसपास दिखायी नहीं देता था।

"अच्छा! तो तू काटेगा? शैतान कहीं का!" ओचुमेलोव के कानों में सहसा यह आवाज़ आयी, "पकड़ तो लो, छोकरो! जाने न पाये! अब तो काटना मना हो गया है! पकड़ लो! आ... आह!"

कुत्ते के पिपियाने की आवाज़ सुनायी दी। ओचुमेलोव ने मुड़कर देखा कि व्यापारी पिचूगिन की लकड़ी की टाल में से एक कुत्ता तीन टांगों से भागता हुआ चला आ रहा है। कलफ़दार छपी हुई क़मीज़ पहने, वास्कट के बटन खोले एक आदमी उसका पीछा कर रहा है। वह कुत्ते के पीछे लपका और उसे पकड़ने की कोशिश में गिरते गिरते भी कुत्ते की पिछली टांग पकड़ ली। कुत्ते की पें-पें और वही चीख: "जाने न पाये!" दोबारा सुनाई दी। ऊंघते हुए लोग गरदनें दुकानों से बाहर निकालकर देखने लगे, और देखते देखते एक भीड़ टाल के पास जमा हो गयी, मानो ज़मीन फाड़कर निकल आयी हो।

"हुज़ूर! मालूम पड़ता है कि कुछ झगड़ा-फ़साद है!" सिपाही बोला।

ओचुमेलोव बायें ओर मुड़ा और भीड़ की तरफ़ चल दिया। उसने देखा कि टाल के फाटक पर वही आदमी खड़ा है। उसकी वास्कट के बटन खुले हुए थे। वह अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाये, भीड़ को अपनी लहूलुहान उंगली दिखा रहा था। लगता था कि उसके नशीले चेहरे पर साफ़ लिखा हुआ हो कि "अरे बदमाश!" और उसकी उंगली जीत का झंडा है। ओचुमेलोव ने इस व्यक्ति को पहचान लिया। वह सुनार ख़्रूकिन था। भीड़ के बीचोंबीच अगली टांगें पसारे, अपराधी–एक सफ़ेद ग्रे हाउंड का पिल्ला, दुबका पड़ा, ऊपर से नीचे तक कांप रहा था। उसका मुंह नुकीला था और पीठ पर पीला दाग़ था। उसकी आंसू भरी आंखों में मुसीबत और डर की छाप थी।

"क्या हंगामा मचा रखा है यहां?" ओचुमेलोव ने कंधों से भीड़ को चीरते हुए सवाल किया। "यह उंगली क्यों ऊपर उठाये हो? कौन चिल्ला रहा था?"

"हुज़ूर! मैं चुपचाप अपनी राह जा रहा था बिल्कुल गऊ की तरह सीधा-सादा," ख़्रूकिन ने अपने मुंह पर हाथ रखकर, खांसते हुए कहना शुरू किया, "मित्री मित्रिच से मुझे लकड़ी के बारे में कुछ काम था। एकाएक, मालूम नहीं क्यों, इस बदमाश ने मेरी उंगली में काट लिया... हुज़ूर माफ़ करें, पर मैं कामकाजी आदमी ठहरा... और फिर हमारा काम भी बड़ा पेचीदा है। एक हफ़्ते तक शायद मेरी यह उंगली काम के लायक़ न हो पायेगी। मुझे हरजाना दिलवा दीजिये। और, हुज़ूर क़ानून में भी कहीं नहीं लिखा है कि हम जानवरों को चुपचाप बरदाश्त करते रहें... अगर सभी ऐसे ही काटने लगें, तब तो जीना दूभर हो जायेगा..."

"हुंह... अच्छा..." ओचुमेलोव ने गला साफ़ करके, त्योरियां चढ़ाते हुए कहा, "ठीक है... अच्छा, यह कुत्ता है किसका? मैं इस बात को यहीं नहीं छोड़ूंगा! कुत्तों को खुला छोड़ रखने के लिए मैं इन लोगों को मज़ा चखाऊंगा! जो लोग क़ानून के मुताबिक़ नहीं चलते, उनके साथ अब सख़्ती से पेश आना पड़ेगा! ऐसा जुरमाना ठोकूंगा, बदमाश कहीं के! मैं अच्छी तरह सिखा दूंगा उसे कि कुत्तों और हर तरह के ढोर-डंगर को ऐसे छुट्टा छोड़ देने का क्या मतलब है! मैं ठीक कर दूंगा, उसे! येल्दीरिन!" सिपाही को संबोधित कर दारोग़ा चिल्लाया, "पता लगाओ कि यह कुत्ता है किसका, और रिपोर्ट तैयार करो! कुत्ते को फ़ौरन

मरवा दो! यह शायद पागल होगा... मैं पूछता हूं यह कुत्ता है किसका?"

"शायद जनरल जिगालोव का हो!" भीड़ में से किसी ने कहा।

"जनरल जिगालोव का? हुंह... येल्दीरिन, ज़रा मेरा कोट तो उतारना...ओफ़, बड़ी गरमी है... मालूम पड़ता है कि बारिश होगी। अच्छा, एक बात मेरी समझ में नहीं आती कि इसने तुम्हें काटा कैसे?" ओचुमेलोव ख्र्यूकिन की ओर मुड़ा। "यह तुम्हारी उंगली तक पहुंचा कैसे? यह ठहरा ज़रा-सा जानवर और तुम पूरे लहीम-शहीम आदमी! किसी कील-वील से उंगली छील ली होगी और सोचा होगा कि कुत्ते के सिर मढ़कर हरजाना वसूल कर लो। मैं ख़ूब समझता हूं! तुम्हारे जैसे बदमाशों की तो मैं नस नस पहचानता हूं!"

"इसने उसके मुंह पर जलती हुई सिगरेट लगा दी थी, हुज़ूर! बस, यूं ही मज़ाक़ में। और यह कुत्ता बेवकूफ़ तो है नहीं, उसने काट लिया। यह शख़्स बड़ा बेतुका है, हुज़ूर!"

"अबे! काने! झूठ क्यों बोलता है? जब तूने देखा नहीं, तो उड़ाता क्यों है? और सरकार तो ख़ुद समझदार हैं। सरकार ख़ुद जानते हैं कि कौन झूठा है और कौन सच्चा। और अगर मैं झूठा हूं, तो अदालत से फ़ैसला करा लो। क़ानून में लिखा है... अब हम सब बराबर हैं, ख़ुद मेरा भाई पुलिस में है... बताये देता हूं... हां..."

"बन्द करो यह बकवास!"

"नहीं, यह जनरल साहब का नहीं है," सिपाही ने गंभीरतापूर्वक कहा। "उनके पास ऐसा कोई कुत्ता है ही नहीं, उनके तो सभी कुत्ते शिकारी पौण्डर हैं।"

"तुम्हें ठीक मालूम है?"

"जी, सरकार।"

"मैं भी जानता हूं। जनरल साहब के सब कुत्ते अच्छी नस्ल के हैं, एक से एक क़ीमती कुत्ता है उनके पास। और यह! यह तो बिल्कुल ऐसा-वैसा ही है, देखो न! बिल्कुल मरियल ख़ारिश्ती है। कौन रखेगा ऐसा कुत्ता? तुम लोगों का दिमाग़ तो ख़राब नहीं हुआ? अगर ऐसा कुत्ता मास्को या पीटर्सबर्ग में दिखाई दे तो जानते हो क्या हो? क़ानून की परवाह किये बिना, एक मिनट में उससे छुट्टी पा ली जाये! ख्र्यूकिन!

तुम्हें चोट लगी है और तुम इस मामले को यूं ही मत टालो...इन लोगों को मज़ा चखाना चाहिये! ऐसे काम नहीं चलेगा।"

"लेकिन मुमकिन है, जनरल साहब का ही हो," कुछ अपने आपसे सिपाही फिर बोला, "इसके माथे पर तो लिखा नहीं है। जनरल साहब के अहाते में मैंने कल बिल्कुल ऐसा ही कुत्ता देखा था।"

"हां, हां, जनरल साहब का तो है ही!" भीड़ में से किसी की आवाज़ आयी।

"हुंह... येल्दीरिन ज़रा मुझे कोट तो पहना दो... अभी हवा का एक झोंका आया था, मुझे सरदी लग रही है... कुत्ते को जनरल साहब के यहां ले जाओ और वहां मालूम करो। कह देना कि मैंने इसे सड़क पर देख पाया था और वापस भिजवाया है...और हां, देखो, यह भी कह देना कि इसे सड़क पर न निकलने दिया करें... मालूम नहीं, कितना क़ीमती कुत्ता हो और अगर हर बदमाश इसके मुंह में सिगरेट घुसेड़ता रहा तो कुत्ता बहुत जल्दी तबाह हो जायेगा। कुत्ता बहुत नाज़ुक जानवर होता है... और तू हाथ नीचा कर, गधा कहीं का! अपनी गन्दी उंगली क्यों दिखा रहा है? सारा क़ुसूर तेरा ही है..."

"यह जनरल साहब का बावर्ची आ रहा है, उससे पूछ लिया जाये। ए प्रोख़ोर! इधर तो आना भाई! इस कुत्ते को देखना, तुम्हारे यहां का तो नहीं है?"

"अमां वाह! हमारे यहां कभी भी ऐसा कुत्ता नहीं था!"

"इसमें पूछने की क्या बात थी? बेकार वक़्त ख़राब करना है," ओचुमेलोव ने कहा, "आवारा कुत्ता है। यहां खड़े-खड़े इसके बारे में बात करना समय बरबाद करना है। तुम से कहा गया है कि आवारा है, तो आवारा ही समझो। मार डालो और काम ख़त्म!"

"हमारा तो नहीं है," प्रोख़ोर ने फिर आगे कहा, "यह जनरल साहब के भाई का कुत्ता है। हमारे जनरल साहब को ग्रे हाउंड के कुत्तों में कोई दिलचस्पी नहीं है, पर उनके भाई साहब को यह नस्ल पसन्द है..."

"क्या? जनरल साहब के भाई आये हैं? व्लादीमिर इवानिच?" अचम्भे से ओचुमेलोव बोल उठा, उसका चेहरा आह्लाद से चमक उठा। "ज़रा सोचो तो! मुझे मालूम भी नहीं! अभी ठहरेंगे क्या?"

"हां..."

"ज़रा सोचो, वह अपने भाई से मिलने आये और मुझे मालूम भी नहीं कि वह आये हैं। तो यह उनका कुत्ता है? बहुत ख़ुशी की बात है। इसे ले जाओ... कैसा प्यारा नन्हा-मुन्ना-सा कुत्ता है। इसकी उंगली पर झपटा था! हा-हा-हा... बस बस, अब कांपो मत। गुर्र गुर्र... शैतान ग़ुस्से में है... कितना बढ़िया पिल्ला है..."

प्रोख़ोर ने कुत्ते को बुलाया और उसे अपने साथ लेकर टाल से चल दिया। भीड़ ख्यूकिन पर हंसने लगी।

"मैं तुझे ठीक कर दूंगा," ओचुमेलोव ने उसे धमकाया और अपना लबादा लपेटता हुआ बाज़ार के चौक के बीच अपने रास्ते चला गया।

१८८४

नक़ाब

अमुक सार्वजनिक क्लब में किसी संस्था की सहायतार्थ ड्रेस-बाल या जैसा कि स्थानीय नवयुवतियां उसे पुकारती हैं, 'बाल पारेय' हो रहा था।

आधी रात थी। नाच में भाग न लेनेवाले बुद्धिजीवी लोग, जो नक़ाब नहीं पहने थे, वाचनालय में बड़ी मेज़ के चारों ओर बैठे हुए थे। संख्या में वे पांच थे, उनकी नाकें और दाढ़ियां अख़बारों के पन्नों में दबी हुई थीं; वे पढ़ रहे थे, ऊंघ रहे थे और राजधानी के समाचारपत्रों के स्थानीय उदारचेता संवाददाता के शब्दों में "विचारमग्न" थे।

हाल से 'क्वैड्रिल' नाच के संगीत की धुन आ रही थी। बैरे बारबार दरवाज़े के पास से पैर खटखटाते और तश्तरियां खनखनाते हुए भाग-दौड़ कर रहे थे। किन्तु वाचनालय के भीतर गंभीर शान्ति का साम्राज्य था।

एक घुटी हुई सी गहरी आवाज़ ने, जो किसी सुरंग से आयी मालूम देती थी, शान्ति भंग कर दी: "मैं समझता हूं, हमें यहां ज्यादा आराम रहेगा, चले आओ साथियो! इस तरफ़!"

दरवाज़ा खुला और एक चौड़े कन्धोंवाला, नाटा, हट्टा-कट्टा व्यक्ति कोचवान की वरदी पहने, अपनी टोपी में मोरपंख लगाये, नक़ाब लगाये, वाचनालय में घुसा। उसके पीछे नक़ाब लगाये दो महिलाएं थीं और किश्ती लिये बैरा था। किश्ती में चौड़े पेंदेवाली मदिरा की एक बोतल, लाल शराब की तीन बोतलें और कई गिलास थे।

"इस तरफ़, यहां ज्यादा ठंडा रहेगा," इस आदमी ने कहा, "किश्ती मेज़ पर रख दो... कुमारियो बैठ जाओ! जे वू प्री आ ल्या

त्रीमोन्त्रान! और आप सज्जनो, ज़रा जगह दीजिये, आप का यहां कोई काम नहीं।"

वह थोड़ा-सा डगमगाया और अपने हाथ से झाड़कर मेज़ पर से कई पत्रिकायें गिरा दीं।

"रख दो उसे! और आप पढ़नेवाले सज्जनो, रास्ते से हट जाइये! यह आप की राजनीति या अख़बार पढ़ने का वक़्त नहीं है... अख़बार रखिये!"

"आप थोड़ा शान्त रहें न!" पढ़ाकू ज्ञानियों में से एक अपने चश्मे से नक़ाबपोश की ओर घूरता हुआ बोला, "यह वाचनालय है, शराबख़ाना नहीं... यह शराब पीने की जगह नहीं है।"

"कौन कहता है? क्या मेज़ मज़बूत नहीं है? या हमारे ऊपर छत आ गिरेगी? क्या मज़ाक़ है! लेकिन मेरे पास बातें करने के लिए वक़्त नहीं है। आप अपने अख़बार रख दें... बहुत पढ़ चुके आप लोग और यह पढ़ाई काफ़ी है। वैसे ही आप लोग बहुत क़ाबिल हैं। इसके अलावा ज़्यादा पढ़ने से आप लोगों की आंखें ख़राब हो जायेंगी; लेकिन ख़ास बात यह कि मेरी मर्ज़ी नहीं है–बस।"

बैरे ने मेज़ पर किश्ती रख दी और झाड़न बांह पर डाल, दरवाज़े पर खड़ा हो गया। महिलाओं ने तुरन्त लाल शराब उड़ेलनी शुरू कर दी।

"ज़रा सोचो तो! ऐसे भी बुद्धिमान लोग होते हैं जो ऐसी शराब से अख़बार ज़्यादा पसन्द करते हैं," मोरपंखवाले ने अपने लिए शराब उड़ेलते हुए कहा। "यह मेरा विश्वास है, आदरणीय महानुभावो, कि आप लोगों को अख़बार इसलिए अधिक प्रिय है कि आपके पास शराब पीने के लिए पैसा नहीं है। क्या मैं ठीक कहता हूं? हा-हा-हा... इन पढ़ाकुओं की ओर देखो... और आपके अख़बारों में लिखा क्या है? ऐ चश्मेवाले! हमें भी कुछ ख़बर बताओ? हा-हा-हा... अच्छा बन्द करो यह सब! रोब गांठने की या तकल्लुफ़ बरतने की ज़रूरत नहीं है! लो थोड़ी शराब पिओ!"

मोरपंखवाले ने हाथ बढ़ाकर चश्मेवाले सज्जन के हाथ से अख़बार छीन लिया। चश्मेवाला भोंचक्का हो दूसरे ज्ञानियों की ओर देखता हुआ गुस्से से लाल पीला पड़ने लगा; दूसरे ज्ञानी भी उसकी ओर देखने लगे।

"जनाब! आप अपने आप को भूल गये हैं!" वह चिल्लाया। "आप वाचनालय को शराबियों के अड्डे में बदले डाल रहे हैं, हंगामा कर रहे हैं, लोगों के हाथ से अख़बार छीन रहे हैं! पर मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकता! आप जानते नहीं, जनाब, कि आप बात किससे कर रहे हैं! मैं बैंक का मैनेजर जेस्त्याकोव हूं!"

"मुझे ख़ाक परवाह नहीं है कि तुम जेस्त्याकोव हो! और तुम्हारे अख़बार की मैं कितनी इज़्ज़त करता हूं, वह इसी से साबित हो जायेगी।"

यह कहते हुए उसने अख़बार उठा लिया और फाड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

ग़ुस्से से पागल हुआ जेस्त्याकोव बोला: "सज्जनो! इसके मानी क्या हैं? यह तो बहुत अजीब बात है, यह... यह तो... बस भौंचक्का कर देनेवाली बात है..."

"अब ग़ुस्सा हो रहे हैं!" वह व्यक्ति हंसते हुए बोला, "हाय, मैं कितना डर गया हूं! देखो, डर के मारे मेरी टांगें कैसी थर्रा रही हैं... अच्छा, सज्जनो! अब मेरी बात सुनो, मज़ाक़ अलग रहा, मैं आपसे क़तई बात करना नहीं चाहता... मैं इन कुमारियों के साथ एकान्त चाहता हूं, मैं मौज करना चाहता हूं, इसलिए, मेहरबानी करके गड़बड़ न मचाओ और यहां से चुपचाप चले जाओ... वह रहा दरवाज़ा। श्री बेलेबूख़िन! निकल जाओ यहां से, जाओ जहन्नुम में! तुम इस तरह अपना थूथन क्यों उठा रहे हो? जब मैं कहता हूं: जाओ, तो फ़ौरन चले जाओ... जल्दी, वरना उठाकर फेंक दूंगा!"

अनाथों की अदालत के ख़ज़ानची बेलेबूख़िन ने क्रोध से लाल पड़ते हुए और कंधे मटकाते हुए कहा: "क्या कहा तुमने? मेरी समझ में नहीं आता... कोई उद्दण्ड व्यक्ति कमरे में घुस आये और... एकाएक भगवान जाने क्या-क्या बकने लगे!"

"क्या कहा? उद्दण्ड?" क्रोध से मेज़ पर घूंसा मारते हुए, जिससे किश्ती में रखे गिलास उछल पड़े, मोरपंखवाला आदमी चिल्लाया, "तुम किससे बात कर रहे हो? क्या तुम समझते हो कि मैं नक़ाब पहने हूं, तो तुम मुझे जो चाहो कह लोगे? तुम तो बड़े ख़रदिमाग़ हो! मैं कहता हूं, निकल जाओ बाहर! और बैंक मैनेजर भी यहां से रफ़ूचक्कर हो जाये!

तुम सब बाहर निकल जाओ! मैं नहीं चाहता कि एक भी बदमाश इस कमरे में रहे! जाओ जहन्नुम में!"

"वह हम देख लेंगे," जेस्त्याकोव बोला, जिसके चश्मे का शीशा तक धुंधला हो गया था। "मैं तुम्हें अभी दिखाता हूं। अरे कोई है? अरे, तुम जरा किसी मैनेजर-वैनेजर को तो बुलाओ!"

एक मिनट बाद, छोटे क़द का लाल बालों वाला मैनेजर कोट के कालर में अपने पद का सूचक नीला फ़ीता लगाये, नाच की मेहनत से हांफता हुआ कमरे में आया।

"कृपा कर इस कमरे को छोड़ दें!" उसने शुरू किया, "यह पीने की जगह नहीं है! मेहरबानी करके जलपान-कक्ष में जायें।"

"और तुम कहां से आ टपके?" नक़ाबवाला बोला, "मैंने तो तुम्हें बुलाया नहीं था।"

"कृपया गुस्ताखी न करें और बाहर चले जायें।"

"देखिये, जनाब! मैं तुमको एक मिनट का मौक़ा देता हूं... चूंकि तुम यहां के प्रबन्धक हो और एक प्रमुख अधिकारी हो, इन कलाकारों को बाहर ले जाओ। मेरे साथ की ये कुमारियां आसपास किसी अजनबी का रहना पसन्द नहीं करतीं... वे शरमाती हैं और मैं अपने पैसे की पूरी क़ीमत चाहता हूं, और उन्हें बिल्कुल वैसा ही देखना चाहता हूं, जैसा कि उन्हें प्रकृति ने बनाया था।"

"निश्चय ही यह सूअर यह नहीं समझ रहा कि वह अपने सूअरख़ाने में नहीं है," जेस्त्याकोव चिल्लाया, "येवस्त्रात स्पिरिदोनिच को बुलाओ!"

"येवस्त्रात स्पिरिदोनिच!" सारे क्लब में यही आवाज़ गूंज उठी, "येवस्त्रात स्पिरिदोनिच कहां है?"

और शीघ्र ही वह आ पहुंचा; पुलिस की वरदी में वह एक बूढ़ा आदमी था।

भारी गले से, अपनी डरावनी आंखें तरेरते हुए और ऐंठी हुई अपनी मूंछें हिलाते हुए वह बोला: "मेहरबानी करके कमरा छोड़ दें!"

"सचमुच तुमने तो मुझे डरा दिया," मज़ा लेकर वह व्यक्ति हंसते हुए बोला, "भगवान की क़सम, बिल्कुल डरा दिया! कैसी मज़ाक़िया सूरत है! ख़ुदा की क़सम, बिल्ली की सी मूंछें! बाहर निकल पड़ रहीं आंखें! ओफ़! हा-हा-हा..."

गुस्से से कांपता, अपना सारा दम लगाकर येवस्त्रात स्पिरिदोनिच चीख़ा : "बहस बन्द करो! निकल जाओ, वरना मैं तुम्हें बाहर फिंकवा दूंगा!"

वाचनालय में हंगामा मचा हुआ था। लाल टमाटर बना येवस्त्रात स्पिरिदोनिच चिल्ला रहा था और पैर पटक रहा था। जेस्त्याकोव चिल्ला रहा था। बेलेबूख़िन चीख़ रहा था। सभी बुद्धिजीवी चिल्ला रहे थे। पर उन सब की आवाज़ें नक़ाबपोश की गले से निकली दबी-घुटी, गंभीर आवाज़ में डूब गयीं। इस होहल्ले में नाच बन्द हो गया और मेहमान लोग हाल से निकलकर वाचनालय में आ गये।

क्लब में जितने पुलिस वाले थे, असर डालने के लिए उन सबको बुलाकर येवस्त्रात स्पिरिदोनिच रिपोर्ट लिखने बैठा।

"लिख डालो," नक़ाबवाले व्यक्ति ने क़लम के नीचे उंगली घुसेड़ते हुए कहा, "अब मुझ बेचारे का क्या होगा? हाय, मुझ ग़रीब का क्या होगा? आप लोग क्यों अनाथ ग़रीब को बरबाद करने पर तुले हुए हैं? हा-हा-हा... अच्छा तो क्या रिपोर्ट तैयार हो गयी? क्या सब लोगों ने इस पर दस्तख़त कर दिये? अब देखो! एक... दो... तीन!"

वह उठ खड़ा हुआ, अपनी पूरी ऊंचाई तक तन गया और अपनी नक़ाब उतार फेंकी। अपना शराबी चेहरा दिखाने और उससे पड़े असर का मज़ा लूटने के बाद वह आराम-कुर्सी में धंस गया और ख़ूब ज़ोर ज़ोर से हंसने लगा। सचमुच ही देखने लायक़ असर हुआ था। सभी बुद्धिजीवी हैरान नज़रों से एक दूसरे की तरफ़ देखने लगे और डर से पीले पड़ गये, कुछ तो अपने सिर खुजलाते भी देखे गये। अनजाने में कोई भारी ग़लती कर डालनेवाले व्यक्ति की तरह येवस्त्रात स्पिरिदोनिच ने खखारकर अपना गला साफ़ किया।

सबने पहचान लिया था कि झगड़ालू व्यक्ति पुश्तैनी इज़्ज़तदार नागरिक स्थानीय करोड़पति प्यातिगोरोव है जो हुल्लड़बाज़ी व उदारता के लिए मशहूर है, और जिसके शिक्षा-प्रेम के बारे में स्थानीय समाचारपत्र लिखते थकते नहीं थे।

"क्या अब आप लोग यहां से जायेंगे या नहीं?" थोड़ा रुककर प्यातिगोरोव ने पूछा।

पंजों के बल चलते हुए, बिना एक भी शब्द कहे, बुद्धिजीवी लोग कमरे के बाहर निकल आये और उनके पीछे प्यातिगोरोव ने दरवाज़ा बन्द कर ताला लगा लिया।

"तुम जानते थे कि वह प्यातिगोरोव है," येवस्त्रात स्पिरिदोनिच ने कुछ देर बाद वाचनालय में शराब ले जानेवाले बैरे के कन्धे झंझोड़ते हुए भारी आवाज़ में कहा, "तुमने कुछ कहा क्यों नहीं?"

"उन्होंने मुझे मना जो किया था।"

"मना किया था! ठहरो, बदमाश! मैं तुम्हें जब एक महीने के लिए जेल में ठूंस दूंगा, तब तुम्हें पता चलेगा कि 'मना किया था' के क्या मानी होते हैं। निकल जाओ!" फिर बुद्धिजीवी लोगों की ओर मुड़ते हुए बोला: "और आप लोग भी ख़ूब हैं! हुड़दंग मचा दिया, जैसे, दस मिनट के लिए आप वाचनालय छोड़ न सकते हों! ख़ैर, सारी गड़बड़ और मुसीबत आपकी ही लायी हुई है और आप लोग ही अब निपटिये इससे। अरे साहब, भगवान के सामने कहता हूं, मुझे ये तरीक़े पसन्द नहीं हैं, क़तई पसन्द नहीं हैं।"

मायूस, परेशान, पछताते हुए बुद्धिजीवी लोग एक दूसरे से फुसफुसाते हुए क्लब में इधर-उधर घूम रहे थे, उन लोगों की तरह जिन्हें आनेवाली मुसीबत का पता लगा गया हो... उनकी बीवियों और बेटियों पर यह सुनकर ख़ामोशी छा गयी कि प्यातिगोरोव बुरा मान गये हैं, नाराज़ हैं, और वे अपने अपने घर चल दीं। नाच बन्द हो गया।

रात दो बजे प्यातिगोरोव वाचनालय के बाहर निकला। वह नशे में झूम रहा था। हाल में आकर वह बैंड की बग़ल में बैठ गया और बाजों की धुन पर ऊंघने लगा। ऊंघते ऊंघते उसका सिर संतप्त मुद्रा में लटक गया और वह खर्राटे लेने लगा।

"बन्द करो बाजे!" बैण्डवालों को इशारा करते हुए मैनेजर बोला, "श्-श्-श्-श्! येगोर नीलिच सो गये हैं..."

"क्या मैं आपको घर तक पहुंचा आऊं, येगोर नीलिच?" करोड़पति के कान तक झुकते हुए बेलेबूख़िन ने पूछा।

प्यातिगोरोव ने होंठ बिचकाये, मानो गाल पर बैठी कोई मक्खी उड़ा रहा हो।

"क्या मैं आपको घर तक पहुंचा आऊं?" बेलेबूख़िन ने फिर कहा, "या आपकी गाड़ी लाने को कह दूं?"

"क्या? तुम... तुम क्या चाहते हो?"

"आपको घर पहुंचाना... सोने जाने का समय हो गया है न..."

"घर! मैं घर जाना चाहता हूं... मुझे घर ले चलो!"

ख़ुशी से दमकता हुआ बेलेबूख़िन प्यातिगोरोव को सहारा देकर उठाने लगा। बाक़ी बुद्धिजीवी लोग भी भागते हुए आ पहुंचे और ख़ुशी से मुसकुराते हुए उन सब ने मिलकर ख़ानदानी इज़्ज़तदार नागरिक को उठाया और बड़ी सतर्कता के साथ उसे गाड़ी तक पहुंचाया।

"कोई कलाकार, कोई अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति ही हम सब का ऐसा मज़ाक़ उड़ा सकता," करोड़पति को गाड़ी में बैठाते हुए प्रसन्नचित्त जेस्त्याकोव बड़बड़ाया। "मैं तो सचमुच आश्चर्यचकित हूं, येगोर नीलिच! मैं हंसी नहीं रोक पा रहा, अब भी नहीं... हा-हा-हा... और हम सब इतने उत्तेजित हो गये और गड़बड़ करने लगे! हा-हा-हा... आप विश्वास करें, मैं नाटक में भी इतना कभी नहीं हंसा! हास्य की इतनी गहराई! जिन्दगी भर यह अविस्मरणीय सांझ मुझे याद रहेगी!"

प्यातिगोरोव को विदा करने के बाद बुद्धिजीवी लोग प्रसन्न व आश्वस्त हो गये।

जेस्त्याकोव ने ख़ुशी से डींग मारी: "उन्होंने मुझसे हाथ मिलाया! तो अब सब ठीक है, वह नाराज़ नहीं हैं।"

लम्बी सांस लेकर येवस्त्रात स्पिरिदोनिच बोला: "भगवान करे न हो! वह बदमाश है, ख़राब आदमी है, पर वह हमारा हितकारी है। हमें होशियारी बरतनी चाहिये!"

संताप

मिस्तरी ग्रिगोरी पेत्रोव, जिसे बहुत दिनों से पूरे गाल्चिनो ज़िले के लोग कुशल दस्तकार, मगर काहिल आदमी के रूप में जानते थे, अपनी बूढ़ी बीमार बीवी को ज़ेम्स्त्वो* अस्पताल ले जा रहा था। उसे गाड़ी हांककर कोई तीस मील का सफ़र तय करना था और सड़क बेहद ख़राब थी, काहिल ग्रिगोरी की बात ही क्या, सरकारी डाकिये तक के बूते के बाहर की बात थी वह। ठिठुरन भरी तेज़ हवा चेहरे पर लग रही थी। बर्फ़ के गाले बड़े-बड़े बादलों की तरह हवा में उड़ रहे थे और पता लगाना मुश्किल हो रहा था कि बर्फ़ आसमान से आ रही है या ज़मीन से। बर्फ़ की वजह से खेत, तार के खम्भे, जंगल कुछ भी नहीं दिखाई देते थे और जब बहुत ज़्यादा तेज़ हवा का झोंका आ जाता, ग्रिगोरी को जूआ भी न सूझता। कमज़ोर, बूढ़ी घोड़ी कछुए की रफ़्तार से घिसट रही थी। गहरी बर्फ़ से एक एक टाप निकालने और गरदन झटकने में ही उसे अपनी सारी ताक़त लगा देनी पड़ती थी... मिस्तरी को जल्दी थी। बेचैनी से वह अपनी जगह पर बीच बीच में उठता-बैठता और घोड़ी की पीठ पर बार-बार चाबुक मारता।

"रोओ न, मत्र्योना..." वह बड़बड़ाया, "ज़रा कोशिश कर के बरदाश्त कर लो। ईश्वर कृपा करे हम लोग जल्दी ही अस्पताल पहुंच जायेंगे

---

*ज़ेम्स्त्वो – सन् १८६४ के राजनीतिक सुधारों के बाद रूस के प्रत्येक ज़िले को आर्थिक क्षेत्र में सीमित स्वशासन अधिकार दिये गये। इस दृष्टि से जो प्रशासन संस्थाएं चुनी गयीं, उनको "ज़ेम्स्त्वो" कहते थे। इनके सदस्य प्रायः बड़े ज़मींदार-जागीरदार होते थे। – सं०

ग्रौर वे लोग फ़ौरन पलक झपकते तुम्हारा इलाज... पावेल इवानिच तुम्हें कुछ दवा देंगे, या तुम्हारी फसद खोलकर ख़ून निकालने को कहेंगे, या फिर शायद वह इतनी भलाई करे कि तुम्हारे बदन पर स्पिरिट की मालिश करवा दे... स्पिरिट बदन का दर्द खींच लेती है। पावेल इवानिच ग्रपनी ताक़त भर तुम्हारे लिए सब कुछ करेंगे... वह चीखे चिल्लायेंगे ग्रौर पैर पटकेंगे, फिर तुम्हें ग्रच्छा करने के लिए जो कुछ कर सकते हैं, वह करने में जुट जायेंगे वह बड़ा सज्जन, भलामानस ग्रौर दयालु है, ईश्वर उसका भला करे...जैसे ही हम लोग वहां पहुंचेंगे, वह दौड़ते हुए ग्रपने घर से निकल ग्रायेंगे ग्रौर गाली देने लगेंगे। वह चिल्लायेंगे : 'क्या ? क्यों ? तुम वक़्त पर क्यों नहीं ग्राये ? क्या मैं कोई कुत्ता हूं जो तुम बदमाशों के इशारे पर नाचता रहूं ? तुम सवेरे क्यों नहीं ग्राये ? भाग जाग्रो ग्रब, कल ग्राना !' ग्रौर मैं कहूंगा : 'डाक्टर साहब ! पावेल इवानिच ! हुज़ूर !' जल्दी चल न, शैतान की बच्ची ! जल्दी चल !"

मिस्तरी ने घोड़ी के चाबुक जमाया ग्रौर बीवी की ग्रोर देखे बिना, बड़बड़ाता गया :

"'हुज़ूर, ईश्वर साक्षी है मैं पाक सलीब की क़सम खाता हूं, मैं बहुत तड़के घर से रवाना हुग्रा था। लेकिन मैं वक़्त से कैसे पहुंच पाता, मां मरियम ने कुपित होकर यह ग्रंधड़ चला दिया। ग्राप ग्रपने ग्राप देख लें... कोई बढ़िया घोड़ा भी वक़्त पर नहीं पहुंच सकता ग्रौर मेरी घोड़ी, ग्राप ज़रा इस पर एक निगाह डालें, यह घोड़ी नहीं, यह तो एक वबाल है !' ग्रौर पावेल इवानिच ग़ुस्से में भवें तानकर चिल्लायेंगे : 'मैं तुम लोगों को समझता हूं ! तुम लोग हमेशा कोई न कोई बहाना ढूंढ़ ही लोगे ! ख़ास तौर पर तुम ग्रीश्का, तुम्हें तो मैं ख़ूब जानता हूं ! मेरा ख़्याल है कि तुम रास्ते में पांच बार शराबख़ानों में रुके होगे !' ग्रौर मैं कहूंगा : 'हुज़ूर ! मैं क्या कोई संगदिल, नास्तिक हूं, क्या मुझे भगवान का डर नहीं है ? यहां मेरी बुढ़िया मर रही है, उसके प्राण पखेरू उड़नेवाले हैं ग्रौर मैं क्या शराबख़ानों की ग्रोर दौड़ूंगा ! यह ग्राप कैसी बात कर रहे हैं ? जहन्नुम में जायें शराबख़ाने !' तब पावेल इवानिच तुम्हें ग्रस्पताल के भीतर ले जाने को कहेंगे ग्रौर मैं उसके पैरों पर गिर जाऊंगा : 'पावेल इवानिच ! हुज़ूर ! हम ग्राप के ग्रहसानमन्द हैं, ग्रापको धन्यवाद देते हैं ! हम पापियों व मूर्खों को ग्राप माफ़ करें। हमें बहुत कड़ाई से न जांचें, हम ठहरे गंवार

किसान! हम लोगों को तो लात मारकर निकाल देना चाहिये, और आप हैं कि हमसे मिलने के लिए बाहर बर्फ़ में निकल आये हैं!' और पावेल इवानिच मेरी ओर ऐसे ताकेंगे मानो मुझे ठोकनेवाले हैं और कहेंगे: 'मेरे पैरों पर गिरने की जगह, तुझ गदहे को वोद्का ढकोसना छोड़ अपनी बुढ़िया पर कुछ तरस खाना चाहिये। तेरे तो कोड़े मारना चाहिये!' 'कोड़े! पावेल इवानिच! ईश्वर जानता है, हम लोगों के सचमुच कोड़े लगाने चाहिये! पर आपके पैरों पर हम कैसे न गिरें, आपकी श्रद्धा कैसे न करें जब आप हमारे हितचिन्तक हैं, हमारे अपने पिता हैं? हुज़ूर! मैं सच कहता हूं, ईश्वर साक्षी है, अगर मैं अपनी बात से फिरूं तो आप मेरे मुंह पर थूक देना! जैसे ही मेरी मत्र्योना अच्छी हो जायेगी, बिल्कुल पहले जैसी हो जायेगी, आप जो हुकुम देने की मेहरबानी करेंगे, मैं वही चीज़ बनाकर तैयार कर दूंगा! अगर आपको पसन्द हो, तो सिगरेट केस बना दूंगा, बढ़िया लकड़ी का सिगरेट केस... क्रोके खेलने के लिए लकड़ी के गेंद बना दूंगा, स्किटिल खेलने की तीलियां बना दूंगा—ऐसी बढ़िया मानो विदेशी हों... आपके लिए सब कुछ करने को तैयार रहूंगा! इसके लिए मैं आपसे एक कोपेक भी न लूंगा! इस तरह के सिगरेट केस के लिए मास्को में वे आपसे चार रूबल ऐंठ लेते और मैं आपसे एक कोपेक भी नहीं लूंगा।' और डाक्टर हंसकर कहेगा: 'अच्छा अच्छा, अब बस कर, बहुत हुआ। पर यह बड़े अफ़सोस की बात है कि तू शराबी है।' इन भलेमानसों से बात करना मुझे आता है, बुढ़िया! ऐसा कोई साहब है ही नहीं जिसे मैं मना न लूं। बस, भगवान इतनी दया करे कि हम रास्ता न भूलें। कैसा तूफ़ान है! बर्फ़ की वजह से मुझे ठीक ठीक दिखाई भी नहीं पड़ता।"

मिस्तरी लगातार बड़बड़ाता जाता, अपनी घबड़ाहट को दबाने के लिए वह बिना सोचे-समझे ज़बान चलाता जाता। पर जहां उसके पास शब्दों की कमी नहीं थी, उसके दिमाग़ में लगे विचारों और सवालों के तांते का भी अंत नहीं था। संताप ने अचानक ही आकर उसे घेर लिया था, जैसे गाज गिर पड़ी हो और वह हतबुद्धि हो गया था, वह सम्हल न पा रहा था, अपने होश हवास में न आ पा रहा था, सोच-समझ न पा रहा था। अभी तक उसने लापरवाही की ज़िन्दगी बितायी थी, मानो शराब के ख़ुमार में था, उसे ख़ुशी या अफ़सोस किसी का पता ही न था, और अब एकाएक उसके

हृदय में असहनीय पीड़ा हो रही थी। लापरवाह काहिल और शराबी अब अकस्मात अपने को व्यस्त, काम में बुझे व्यक्ति की, हड़बड़ी में पड़े ऐसे व्यक्ति की स्थिति में पा रहा था, जो स्वयं प्रकृति के विपरीत पड़ गया हो।

जहां तक मिस्तरी को याद थी, इस सन्ताप ने उसे पिछली शाम आ घेरा था। हमेशा की तरह नशे में चूर, वह जब शाम को घर लौटा, और बरसों पुरानी आदत के मुताबिक़ गाली बकने और घूंसे चलाने लगा, उसकी बुढ़िया ने अपने अत्याचारी की ओर ऐसी निगाह से देखा, जिस ढंग से उसने पहले कभी नहीं निहारा था। उसकी बूढ़ी आंखों में आम तौर पर जो भाव रहता था, वह था शहीद का, भीरुता का, ऐसे कुत्ते का भाव जो पीटा बहुत जाता हो और भोजन बहुत कम पाता हो, पर अब उसकी आंखें स्थिर और कठोर थीं, जैसे सन्तों की प्रतिमाओं की आंखें होती हैं, या मरणासन्न लोगों की होती हैं। उन विलक्षण, वेदनाप्रद आंखों ने ही सन्ताप का बीज बोया था। किंकर्तव्यविमूढ़ मिस्तरी पड़ोसी से घोड़ा मांग लाया था और अब इस आशा में अपनी बुढ़िया को अस्पताल ले जा रहा था कि पावेल इवानिच अपने चूर्णों और लेपों की सहायता से वृद्धा की आंखों में वही पुरानी झलक ला देगा।

"सुनो, मत्र्योना!" वह बोला, "याद रखो! अगर पावेल इवानिच तुमसे पूछे कि क्या मैं तुझे मारता हूं, तो तुम कह देना 'अरे नहीं, हुज़ूर!' और मैं अब कभी भी तुझे नहीं पीटूंगा। पाक सलीब की सौगन्ध, मैं अब कभी नहीं मारूंगा। तू तो जानती है कि मैं जब भी तुझे मारता था तो तुझे सचमुच मारना कभी नहीं चाहता था। मैं तो तुझे ऐसे ही, बिना क्रोध के मारता था। मुझे तो तुझ पर तरस आता था। कोई और होता तो परवाह भी न करता, पर मैं तुझे अस्पताल ले चल रहा हूं... मैं जो कुछ भी कर सकता हूं, कर रहा हूं। और ऐसे तूफ़ान में! तेरी दया है भगवान! बस परमात्मा हमें रास्ता न भूलने दे... मत्र्योना! अब तुम्हारी बग़ल का दर्द कैसा है? तुम कुछ कहती क्यों नहीं? मैं पूछता हूं: तुम्हारी बग़ल का दर्द अब कैसा है?"

उसे यह बात अजीब लग रही थी कि वृद्धा के चेहरे पर बर्फ़ पिघल नहीं रही थी, अजीब बात यह थी कि उसका चेहरा भी लम्बा खिंचा लगता था, और ऐसे मटमैले भूरे रंग का हो रहा था, मानो गन्दी मोम का हो, और ऐसा गंभीर, ऐसा कठोर लग रहा था।

मिस्तरी ने भन्नाकर कहा : "ऐ पागल बूढ़ी! मैं तुझसे ईमानदारी से, ईश्वर को साक्षी करके पूछता हूं, और तू... बूढ़ी पगली! मैं तुझे पावेल इवानिच के पास नहीं ले जाऊंगा, बस!"

मिस्तरी ने लगाम ढीली छोड़ दी और सोच-विचार में लग गया। बुढ़िया की ओर ताकने की उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी, वह डर रहा था। बिना जवाब पाये उससे सवाल करते जाने में भी उसे डर लग रहा था। अंत में इस दुविधा को दूर करने के लिए उसने वृद्धा की ओर देखे बिना उसका ठंडा हाथ टटोला। जब उसने हाथ छोड़ा, वह पत्थर की तरह गिर पड़ा।

"मर गयी! हाय, हाय!"

और मिस्तरी रोने लगा। उसकी भावना दुख की नहीं, खीझ की थी। वह सोचने लगा कि दुनिया में घटनाएं किस तेज़ी से घटती हैं! उसका सन्ताप ठीक से शुरू भी न हुआ था, कि अब सब कुछ समाप्त हो गया। अपनी वृद्धा के साथ रहना, उससे अपने दिल की बात कहना, उससे स्नेह करना, उसकी सेवा करना अभी ठीक से शुरू भी न हुआ था कि वह मर गयी... वह उसके साथ चालीस वर्ष से रह रहा था, पर ये चालीस वर्ष मानो एक कुहासे में बीत गये थे। शराब पीने, लड़ने-झगड़ने और ज़रूरतों में ज़िन्दगी अज्ञात सी ही गुज़र गयी थी। और वृद्धा ठीक उस समय गुज़र गयी जब उसे आभास हुआ कि वह उसे प्यार करता था, कि वह उसके बिना रह नहीं सकता था, कि उसने उसके साथ बड़ा ज़ुल्म किया था।

उसे याद आया : "वह भीख मांगने जाती थी, मैं उसे रोटी के लिए भीख मांगने भेजता था, हां मैं भेजता था! ओफ़, ओफ़! वह अभी दस साल और जिन्दा रह सकती थी, बेचारी पगली, और अब वह सोचती होगी कि मैं सचमुच ही ऐसा था। पवित्र माता! मैं जा कहां रहा हूं? अब उसे डाक्टर नहीं, क़ब्र की ज़रूरत है! अरे मुड़ जा, वापस मुड़!"

ग्रिगोरी ने लगाम खींचकर घोड़ी का मुंह पीछे फेर दिया और पूरी ताक़त से उसके चाबुक जमाया। हर घण्टे सड़क और ज़्यादा ख़राब होती जाती थी। अब उसे घोड़ी का जूआ बिल्कुल ही नहीं दिखाई देता था। बीच बीच में गाड़ी किसी चीड़ के पौधों को कुचल जाती, कोई काली चीज़ मिस्तरी का हाथ खरोंच जाती और तेज़ी से उसकी आंखों के सामने

से चमककर निकल जाती, और फिर उसे चक्कर मारती हुई सफ़ेदी के अलावा और कुछ न दिखाई देता।

मिस्तरी सोच रहा था: "काश! ज़िन्दगी फिर नये सिरे से शुरू करने का मौक़ा मिलता..."

उसे याद आया कि चालीस साल पहले मत्र्योना नवयुवती सुन्दरी और प्रसन्नचित्तवाली थी, कि वह एक समृद्ध परिवार से आयी थी। उसकी शादी ग्रिगोरी की कुशलता के कारण ही उससे कर दी गई थी। सुखी जीवन के लिए जो कुछ चाहिये, वह सब उनके पास था, पर विवाह सम्पन्न होते ही, उसी क्षण, शराब में चूर वह अलावघर के ऊपर की पट्टी पर धम् से आकर सो रहा और तब से वह मानो कभी पूरी तरह जागा नहीं, आज तक पूरी तरह होश में आया नहीं। उसे शादी की तो याद थी, पर वह चाहे जितनी कोशिश करे शादी के बाद क्या हुआ इसकी याद उसे नहीं आती थी–सिवा शराब पीने, सोने और मारपीट करने के और इस तरह चालीस साल बरबाद हो गये थे।

उड़ती हुई बर्फ़ के सफ़ेद बादल अब धीरे धीरे धूमिल हो रहे थे। सांझ होती जा रही थी।

अचानक मिस्तरी ने फिर अपने आप से पूछा: "मैं जा कहां रहा हूं? मुझे चाहिये कि मैं जाकर उसे दफ़ना दूं, और मैं लगातार अस्पताल की ओर हांकता चला जा रहा हूं। मैं मानो पागल हो गया हूं!"

उसने फिर घोड़ी का मुंह पीछे फेरा, चाबुक से उसे फिर मारा। अपनी सारी शक्ति संजोकर घोड़ी फुफकारी और दुलकी भागने लगी। मिस्तरी उसे बराबर चाबुक मारता जाता... उसे अपने पीछे खट खट की आवाज़ सुनाई देने लगी और उसने पीछे मुड़े बिना समझ लिया कि लाश का सिर गाड़ी से टकरा रहा होगा। अंधेरा बढ़ता गया, बढ़ता गया, हवा और ठंडी होती गयी, और तेज़ व ठिठुरन भरी होती गयी...

"ज़िन्दगी फिर से शुरू करने को मिले," मिस्तरी सोच रहा था, "मैं अपने लिए नये औज़ार ख़रीद लूं और लोगों से आर्डर ले लेकर उनके लिए सामान बनाने लगूं... और रुपया मैं वृद्धा को देने लगूं... हां!"

तब उससे लगाम छूट गयी। वह उसे ढूंढ़ने लगा और झुककर उसे उठाना चाहा पर बेकार, उसके हाथ चल नहीं रहे थे...

"कोई बात नहीं," उसने सोचा, "घोड़ी अपने आप चलती जायेगी, वह रास्ता जानती है। अगर मैं अभी एक झपकी ले पाता... जनाज़े और गिरजाघर में दुआ के वक़्त तक मैं आराम कर लेता..."

मिस्तरी ने आंखें मीच लीं और ऊंघने लगा। थोड़ी देर में उसे लगा कि घोड़ी रुक गयी है। आंखें खोलकर उसने देखा कि वह किसी गहरे रंग की झोंपड़ी या चारे के बड़े ढेर के सामने है...

वह समझ रहा था कि उसे स्लेज से उतरकर देखना चाहिए कि वह है कहां, पर उसके अंग अंग में ऐसी थकान, ऐसा आलस्य भरा था कि वह सरदी से जमकर मर जाने से बचने के लिए भी हिलडुल न सकता था... वह आराम से सो गया।

वह एक बड़े कमरे में जागा जिसकी दीवारें सफ़ेदी से पुती हुई थीं। खिड़की से चमकीली धूप भीतर आ रही थी। मिस्तरी ने देखा कि कमरे में लोग मौजूद हैं और उसके दिमाग़ में जो पहली बात आयी वह थी कि उसे विज्ञ और समझदार लगना चाहिए।

उसने कहा: "पादरी को बताना होगा, हमें वृद्धा के लिए दुआ मांगनी चाहिए।"

किसी आवाज़ ने उसे टोका: "ठीक है, ठीक है, तुम ज़रा चुपचाप लेटे रहो!"

यकायक डाक्टर की झलक पा, अचम्भे में वह चिल्ला पड़ा: "अरे, यह तो पावेल इवानिच है, हुज़ूर! माई बाप! हमारे हितचिन्तक!"

उसने बिस्तर से कूदकर चिकित्सा विज्ञान के चरणों में नत मस्तक होने की कोशिश की, लेकिन उसे लगा कि उसके हाथ-पांव उसके बस में नहीं हैं।

"हुज़ूर, मेरे पांव कहां हैं? मेरे हाथ कहां गये?"

"अपने हाथ-पांवों को अलविदा कह लो... तुमने उन्हें सरदी में जमने दिया। हूं हूं बस करो! तुम रो किस लिए रहे हो? ईश्वर को धन्यवाद दो कि तुम्हें पूरी ज़िन्दगी मिली! मैं समझता हूं, तेरी उमर तो साठ हो चुकी है–तुमने भी अपना ज़माना देख लिया!"

"हाय, हाय, हुज़ूर! मन में यह बिथा लिये कैसे मरूं? मुझे माफ़ करें! मैं अगर पांच–छः बरस और रह पाता..."

"काहे के लिए?"

"यह घोड़ी मेरी नहीं थी, मुझे वह वापस करनी होगी... मुझे अपनी बुढ़िया को दफ़न करना होगा... आह, इस दुनिया में हर बात किस तेज़ी से हो जाती है। हुज़ूर! पावेल इवानिच! सबसे बढ़िया लकड़ी का सिगरेट केस! मैं आपको क्रोके खेलने के गेंद बना दूंगा..."

डाक्टर हाथ हिलाकर कमरे के बाहर हो गया—मिस्तरी का सब कुछ समाप्त हो गया।

१८८५

वानका

नौ वर्ष का वानका जूकोव, जो तीन महीने पहले अल्याख़िन मोची के यहां काम सीखने भेजा गया था, बड़े दिन से पहले वाली रात को सोने नहीं गया। वह इन्तज़ार करता रहा और जब उसका मालिक और मालकिन व वहां काम करनेवाले दूसरे लोग गिरजाघर चले गये, तब उसने मालिक की आलमारी से क़लम और दावात निकाली। क़लम की निब में ज़ंग लग गया था; उसने एक मुड़ा-मुड़ाया काग़ज़ का ताव निकाला, उसे फैलाकर रखा और लिखने बैठ गया। पहला अक्षर बनाने के पहले उसने कई बार खिड़की और दरवाज़े की तरफ़ सहमी आंखों से ताका, गहरे रंग की देव मूर्ति की ओर निहारा जिसके दोनों ओर दूर तक जूतों के फ़र्मों से भरी आलमारियां थीं और कांपते हुए गहरी उसांस ली। काग़ज़ बेंच पर फैला हुआ था, वानका बेंच के पास फ़र्श पर घुटनों के बल बैठ गया।

उसने लिखा: "प्यारे बाबा कोंस्तांतिन मकारिच! और मैं तुम्हें एक चिट्ठी लिख रहा हूं। मैं तुम्हें बड़े दिन का सलाम भेजता हूं और आशा करता हूं कि ईश्वर तुम्हें सुखी रखेगा। मेरे बापू और मेरी अम्मा नहीं हैं और मेरे लिए बस तुम ही बाक़ी हो।"

वानका ने सिर उठाकर खिड़की के अंधेरे शीशे की तरफ़ ताका जिस पर जलती मोमबत्ती की परछाई झिलमिला रही थी; कल्पना में उसने अपने बाबा कोंस्तांतिन मकारिच को साफ़ देखा जो जिवरोव नामक किसी धनी आदमी का रात्रि चौकीदार था। वह दुबला-पतला, छोटा-सा, पैंसठ साल का बूढ़ा था, पर बहुत चुस्त और फुर्तीला, उसके चेहरे पर सदा

मुस्कान छायी रहती और उसकी आंखें शराब के नशे से चुंधियायी रहतीं। दिन में वह या तो नौकरों के रसोईघर में सोया करता या बैठा बैठा रसोईदारिनों से मखौल किया करता, रात में वह भेड़ की खाल का बना लबादा ओढ़े, लाठी खटखटाते हुए हवेली के चारों ओर चक्कर काटा करता। उसके पीछे पीछे उसकी बूढ़ी कुतिया काश्तांका व एक दूसरा कुत्ता, जो काले बालों और नेवले जैसे लम्बे शरीर की वजह से व्यून (फुर्तीला – सं०) कहलाता था, सिर झुकाये चला करते। व्यून के ढंग से लगता कि उसमें आदर करने और हर एक से परिचय प्राप्त करने की विलक्षण प्रतिभा है, जान-पहचानवाले और अजनबी हर एक की ओर विनयपूर्ण दृष्टि डालता, पर उस पर विश्वास की भावना नहीं जमती थी। उसकी सिधाई और आदरसूचक बरताव तो दुष्टता की गहरी प्रवृत्तियों को छिपाने के लिए नक़ाब भर थे। अकस्मात् दौड़कर पैर में काट लेने, बर्फ़घर में चुपचाप घुस जाने या किसानों की मुर्ग़ियां झपट लेने में वह उस्ताद था। उसकी इतनी पिटाई होती रहती थी कि वह अधमरा हो जाता था। दो दफ़ा उसे रस्सी से बांधकर लटकाया जा चुका था, हर हफ़्ते उस पर इतनी मार पड़ती थी कि वह अधमरा हो जाता था, पर इस सब के बावजूद वह जैसे का तैसा बना था।

बाबा शायद इस वक़्त फाटक पर खड़े गांव के गिरजाघर की खिड़कियों से आ रही तेज़ लाल रोशनी को चुंधियाती आंखों से देख रहे होंगे और फ़ेल्ट बूट पहने पैर थपथपाते नौकरों-चाकरों से चुहल कर रहे होंगे। उनका डण्डा पेटी में खोंसा हुआ होगा। वह अपनी बांहें फैलाते और सर्दी में सिकुड़ते होंगे और रसोईदारिन या नौकरानी को चुटकी काटते हुए बूढ़ों की तरह ही-ही करते होंगे।

औरतों की तरफ़ हुलास की डिबिया बढ़ाते हुए वह कहते होंगे: "लो, एक चुटकी सुंघनी लो।"

औरतें सुंघनी नाक में डालेंगी और छींकेंगी। बाबा बेहद ख़ुश हो खिल्ली उड़ाते हुए ठट्ठा मारकर हंस पड़ेंगे और चिल्लायेंगे:

"ठंड से जमी नाक के लिए तो अकसीर है!"

कुत्तों को भी सुंघनी दी जायेगी। काश्तांका छींकेगी, सिर हिलायेगी और चुपचाप चली जायेगी, मानो बुरा मान गयी हो। लेकिन व्यून छींकने की अशिष्टता नहीं करेगा और दुम हिलाता रहेगा। मौसम बेहद सुहावना था। हवा थमी-सी, साफ़ और ताज़ी। रात अंधेरी थी पर सफ़ेद छतों,

पाले और बर्फ़ से चमकते पेड़ों, चिमनियों से उठते धुएं वाला पूरा गांव साफ़ साफ़ दिखाई पड़ता था। आसमान में ख़ुशी से चमकते तारे छिटक रहे थे और आकाश गंगा बिल्कुल साफ़ दिखाई पड़ रही थी मानो त्योहार के लिए अभी ही धोयी मांजी गयी हो और उस पर बर्फ़ से रोग़न कर दिया गया हो...

वानका ने गहरी सांस ली, स्याही में क़लम डुबोयी और फिर से लिखने लगा :

"और कल मुझ पर बुरी तरह मार पड़ी। मालिक मेरे बाल पकड़कर घसीटता हुआ बाहर आंगन में खींच ले गया और चमड़े की पेटी से मुझे पीटने लगा क्योंकि ग़लती से मैं उनके बच्चे को झुलाते झुलाते सो गया था। और पिछले हफ़्ते एक दिन मालकिन ने मुझसे हेरिंग मछली साफ़ करने को कहा, मैंने उसकी दुम से सफ़ाई शुरू की तो मालकिन ने मछली छीन ली और उसका सिर मेरे मुंह पर रगड़ डाला। दूसरे काम करनेवाले मेरा मज़ाक़ उड़ाते हैं, शराबख़ाने से वोद्का लाने को भेजते हैं और मुझे मालिक के खीरे चुराने को मजबूर करते हैं और मालिक जो चीज़ भी सामने पड़ जाये, उसी से मेरी ठुकाई करने लगता है। और खाने को कुछ मिलता नहीं। वे मुझे सबेरे रोटी दे देते हैं, दोपहर को दलिया मिलता है और शाम को फिर रोटी दे देते हैं। मुझे चाय या गोभी का शोरबा कभी नहीं मिलता, ये चीज़ें तो वे सारी की सारी ख़ुद ही ढकोस जाते हैं। वे मुझे गलियारे में सुलाते हैं और रात में जब उनका बच्चा रोने लगता है तो मुझे उसे दुलराना-झुलाना पड़ता है और मैं बिल्कुल सो नहीं पाता। प्यारे बाबा, भगवान के लिए तुम मुझे यहां से ले जाओ, मुझे गांव ले जाओ, मुझ से अब यह सहा नहीं जाता... मेरे बाबा, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं, मैं हाथ जोड़ता हूं, पैर पड़ता हूं, तुम मुझे यहां से ले जाओ नहीं तो मैं मर जाऊंगा। मैं हमेशा तुम्हारे लिए भगवान से प्रार्थना करूंगा..."

वानका के होंठ फड़के, काली हुई मुट्ठी से उसने अपनी आंखें मलीं और सिसकी भरी।

"मैं तुम्हारी सुंघनी तुम्हारे लिए पीस दिया करूंगा," उसने पत्र में आगे लिखा। "मैं तुम्हारे लिए भगवान से प्रार्थना किया करूंगा और अगर मैं शरारत करूं तो जितने चाहो उतने बेंत मारना। और अगर तुम समझते हो कि मेरे लिए वहां कोई काम नहीं है तो मैं कारिन्दे से कहूंगा कि

वह मुझ पर रहम खाकर मुझे जूते साफ़ करने का काम दे दे या मैं फ़ेद्या की जगह चरवाहे का काम कर लूंगा। प्यारे बाबा, मैं अब और ज़्यादा बरदाश्त नहीं कर सकता उससे मेरी जान निकली जा रही है। मैंने सोचा था कि मैं पैदल ही गांव भाग आऊंगा पर मेरे पास जूते नहीं हैं और मुझे पाले का डर है। और जब मैं बड़ा हूंगा और आदमी हो जाऊंगा तब मैं तुम्हारी देखभाल करूंगा और मैं किसी को भी तुम्हें तकलीफ़ नहीं पहुंचाने दूंगा और जब तुम मर जाओगे तब मैं तुम्हारी आत्मा के लिए प्रार्थना करूंगा जैसे मैं अम्मा के लिए करता हूं।

"मास्को इतना बड़ा शहर है। बड़े भले लोगों के यहां इतने सारे मकान हैं और इतने ज़्यादा घोड़े हैं और भेड़ें तो बिल्कुल नहीं हैं और कुत्ते बिल्कुल डरावने नहीं हैं। बड़े दिन पर लड़के सितार लेकर नहीं निकलते और गिरजाघर में गाना गाने को उन्हें जाने नहीं दिया जाता है और एक बार मैंने दुकान में मछली पकड़ने के कांटे बिकते देखे और उनमें डोर लगी बंसी थी, जैसी चाहो वैसी मछली पकड़ने की बंसी, और वहां एक बहुत बढ़िया कांटा था जिस पर आध-आध मन के रोहू तक आ जायें। और मैंने दुकानें देखी हैं जहां हर तरह की बंदूक़ें मिलती हैं बिल्कुल वैसी ही जैसी घर पर मालिक के पास हैं। उनकी क़ीमत सौ रूबल तो ज़रूर होगी... और बूचड़ों की दुकानों पर बनकुकरी, कुकल और ख़रगोश मिलते हैं पर वे लोग यह नहीं बताते कि वे इन्हें कहां से मारकर लाते हैं।

"प्यारे बाबा, वहां हवेली में जब बड़े दिन का पेड़ बनाया जाये तब तुम उसमें से मेरे लिए क़लई किया हुआ एक अखरोट निकाल लेना और उसे हरे सन्दूक़ में रख देना। कुमारी ओलगा इग्नात्येव्ना से मांग लेना, कह देना यह वानका के लिए है।"

वानका ने गहरी सांस ली और फिर खिड़की के शीशे की ओर ताकने लगा। उसे याद आया बाबा मालिकों के लिए बड़े दिन का पेड़ लेने जंगल में जाया करते थे और उसे अपने साथ ले गये थे। अहा, वे भी कितने सुख के दिन थे! बाबा खंखारते, पाला भी खंखारता और उनको देखकर वानका भी खंखारता। चीड़ के पेड़ काटने के पहले बाबा पाइप सुलगाते, एक चुटकी हुलास लेते और ठंड से कांपते वानका पर हंसते... चीड़ के पेड़ बर्फ़ पाले से ढंके, स्तब्ध से खड़े यह प्रतीक्षा करने

लगते कि उनमें से कौन मरेगा। और यकायक बर्फ़ के ढेरों पर उछलता कोई ख़रगोश तीर-सा निकल जाता। बाबा चिल्लाने से न चूकते :

"रोक ले, पकड़ ले... ऐ दुमकटे शैतान!"

बाबा पेड़ घसीटते हुए हवेली ले जाते और वहां उसे सजाना शुरू कर देते... वानका की हितकारिणी कुमारी ओल्गा इग्नात्येव्ना सबसे ज़्यादा व्यस्त होतीं। जब तक वानका की मां पेलागेया ज़िन्दा थी और हवेली में चाकरी करती थी, ओल्गा इग्नात्येव्ना वानका को मिठाइयां देती थीं और अपने मनबहलाव के लिए उसे पढ़ना लिखना और सौ तक गिनती करना और "क्वेड्रिल" नाच नाचना भी सिखाया था। पर जब पेलागेया मर गयी, अनाथ वानका फिर अपने बाबा के पास नौकरों के रसोईघर और वहां से मोची अल्याख़िन के यहां मास्को भेज दिया गया...

वानका ने आगे लिखा : "प्यारे बाबा, मेरे पास आ जाओ, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं कि ईसा मसीह के नाम पर तुम मुझे यहां से ले जाओ। मुझ अभागे अनाथ पर दया करो। ये हमेशा मुझे पीटा करते हैं और मैं बराबर भूखा रहता हूं और मैं इतना दुखी हूं कि तुम्हें बता नहीं सकता, मैं बराबर रोया करता हूं। और अभी उस दिन मालिक ने मेरे सिर पर फ़र्मा इतने ज़ोर से मारा कि मैं गिर पड़ा और मुझे लगा कि अब मैं फिर उठ नहीं पाऊंगा। मेरी ज़िन्दगी कुत्ते से भी बदतर है... और अल्योना, काने येगोर और कोचवान को मेरा प्यार कहना और मेरा बाजा किसी को मत देना। मैं हूं तुम्हारा नाती वानका ज़ूकोव, प्यारे बाबा आ जाओ।"

वानका ने काग़ज़ को चौपरता मोड़ा और उसे एक लिफ़ाफ़े में बन्द किया, जिसे वह एक दिन पहले एक कोपेक का ख़रीद लाया था... तब वह ठहरकर सोचने लगा, फिर दवात में क़लम डुबोयी और लिखा : "गांव, बाबा।" फिर सोचा, अपना सिर खुजलाया और जोड़ दिया : "कोंस्तांतिन मकारिच।" इस बात पर ख़ुश कि लिखने में उसे किसी ने नहीं रोका-टोका, उसने टोपी लगायी और क़मीज़ पर कोट पहने बिना गली में दौड़ गया...

एक दिन पहले बूचड़ की दुकान में पूछने पर लोगों ने उसे बताया था कि ख़त डाक के बम्बे में डाले जाते हैं और इन बम्बों से डाक की उन गाड़ियों पर सारी दुनिया में भेजे जाते हैं जिनके तीन घोड़े होते हैं, कोचवान शराबी होते हैं और जिनमें घंटियां बजा करती हैं। वानका पासवाले

बम्बे तक दौड़कर पहुंचा और अपनी अमूल्य चिट्ठी बम्बे की दराज़ में डाल दी...

घण्टे भर बाद, सुनहरी आशाओं की लोरियों ने उसे गहरी नींद में सुला दिया... उसने एक अलावघर का सपना देखा, अलावघर के ऊपर बाबा बैठे थे, उनके नंगे पैर लटक रहे थे, वह रसोईदारिनों को पढ़कर चिट्ठी सुना रहे थे... व्यून अलावघर के सामने आगे-पीछे दुम हिलाते हुए टहल रहा था...

१८८६

वैरी

सितम्बर की एक अंधेरी रात, नौ बजे के थोड़ी देर बाद डाक्टर किरीलोव का इकलौता छः वर्षीय पुत्र आन्द्रेई डिप्थीरिया से मर गया। डाक्टर की पत्नी गहरे शोक व निराशा के पहले दौर में बच्चे के पलंग के पास घुटनों के बल बैठी ही थी जब दरवाज़े की घण्टी कर्कश स्वर में खनखना उठी।

डिप्थीरिया की छूत के कारण घर के नौकर सबेरे ही घर से बाहर भेज दिये गये थे। किरीलोव, जैसा था वैसे ही, सिर्फ़ क़मीज़ पहने वास्कट के बटन खोले, अपना गीला चेहरा और कारबोलिक से झुलसे हाथ पोंछे बिना, दरवाज़ा खोलने चल दिया। ड्योढ़ी में अंधेरा था और डाक्टर आगन्तुक का जो कुछ देख पाया वह था औसत क़द, सफ़ेद गुलूबन्द, बड़ा और इतना पीला पड़ा हुआ चेहरा कि लगता था कमरे में उससे रोशनी आ गयी हो...

"क्या डाक्टर घर पर है?" आगन्तुक ने जल्दी से पूछा।

"हां, मैं घर पर ही हूं," किरीलोव ने जवाब दिया, "आप क्या चाहते हैं?"

"ओह! आपसे मिलकर ख़ुशी हुई!" उस व्यक्ति ने प्रसन्न होकर अंधेरे में डाक्टर का हाथ टटोलते हुए और उसे पाने पर अपने दोनों हाथों से ज़ोर से दबाकर कहा: "बहुत... बहुत ख़ुशी हुई! हम पहले मिल चुके हैं। मेरा नाम है अबोगिन... गर्मियों में ग्नुचेव परिवार में आपसे मिलने का सौभाग्य हुआ था। आपको घर पर पाकर मुझे बहुत ख़ुशी हुई... ईश्वर के लिए कृपा करके फ़ौरन मेरे साथ चलें... मैं आपसे प्रार्थना करता हूं... मेरी पत्नी बहुत सख़्त बीमार पड़ी है... मैं गाड़ी लाया हूं..."

आगन्तुक के हाव-भाव और आवाज़ से लग रहा था कि वह बहुत घबड़ाया हुआ है। उसकी सांस तेज़ी से चल रही थी और वह तेज़ी से कांपती हुई आवाज़ में बोल रहा था, मानो वह कहीं किसी पागल कुत्ते या आग से बचकर भागता आ रहा हो, और उसकी बात में साफ़दिली और बच्चों जैसे सहमेपन का पुट था। वह छोटे अधपूरे जुमले बोल रहा था, जैसा कि आशंकित और अभिभूत लोग करते हैं और बहुत-सी ऐसी फ़ालतू बातें कह रहा था जिनका मामले से कोई सम्बंध नहीं था।

"मुझे डर था कि आप घर पर न मिलेंगे," उसने कहना जारी रखा। "यहां आने तक, सारे रास्ते भर में यंत्रणा और व्यथा से घिरा रहा... ईश्वर के लिए, आप अपना कोट पहन लें और चलें... यह सब हुआ इस तरह कि पापचिंस्की – आप उसे जानते हैं, अलेक्सान्द्र सेम्योनोविच पापचिंस्की मुझसे मिलने आया। थोड़ी देर हम लोग बैठे बातें करते रहे... फिर मेज़ पर जमकर चाय पी। यकायक मेरी पत्नी चीख़ी और दिल पर हाथ रखकर कुरसी पर पसर गयी। हम लोग उसे उठाकर पलंग पर ले गये और ... मैंने उसकी कनपटियों पर अमोनिया मला और उसके मुंह पर पानी छिड़का... पर वह बिल्कुल स्तब्ध पड़ी रही, बिल्कुल मरी सी... मुझे डर है कहीं उसका दिल बढ़ न गया हो... आप चलें... उसके पिता की मौत दिल के बढ़ जाने से हुई थी..."

किरीलोव चुपचाप सुनता रहा मानो वह रूसी भाषा ही न समझता हो।

जब अबोगिन ने फिर पापचिंस्की और अपनी पत्नी के पिता का ज़िक्र किया और अंधेरे में फिर उसका हाथ ढूंढ़ना शुरू किया, तब उसने सिर उठाया और उदासीन भाव से हर शब्द को लंबा खींचते हुए कहा:

"मुझे खेद है कि मैं आपके घर नहीं जा सकूंगा... पांच मिनट पहले मेरा लड़का... मर गया..."

"अरे, नहीं!" पीछे को हटते हुए अबोगिन फुसफुसाया। "हे ईश्वर, मैं किस ग़लत मौक़े पर आया! कैसा अभागा दिन है यह... वाक़ई यह कैसी अजब बात है! कैसा संयोग है यह... कौन सोचता था!"

उसने दरवाज़े का हत्था पकड़ लिया, उसका सिर झुका हुआ था, मानो चिन्तामग्न हो। स्पष्टतः वह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि वह लौट जाये या डाक्टर की आरज़ू-मिन्नत जारी रखे।

किरीलोव की बांह पकड़ वह लालसा से बोला:

"मैं आपकी हालत बख़ूबी समझता हूं! ईश्वर जानता है कि मैं ऐसे वक़्त आपका ध्यान आकृष्ट करने की कोशिश करने के लिए कितना शर्मिन्दा हूं, पर मैं क्या करूं? आप ही सोचें मैं कहां जाऊं? इस जगह आपके सिवा और कोई डाक्टर नहीं है। आप चलें, ईश्वर के लिए चलें! मैं अपने लिए अनुनय नहीं कर रहा... बीमार मैं नहीं हूं!"

ख़ामोशी छा गयी। किरीलोव अबोगिन की ओर पीठ फेरकर एक-दो मिनट चुपचाप खड़ा रहा और फिर ड्योढ़ी से धीरे धीरे बैठक में चला गया। उसकी अनिश्चित यंत्रवत् चाल, बैठक में अनजले लैम्प-शेड की झालर सीधी करने और मेज़ पर पड़ी एक मोटी किताब के पन्ने पलटने के खोये खोये ढंग से लग रहा था कि उस समय न उसकी कोई इच्छा थी, न इरादा था, न वह कुछ सोच रहा था। वह शायद बिल्कुल भूल गया था कि बाहर ड्योढ़ी में कोई अजनबी भी खड़ा है। कमरे के सन्नाटे और धुंध में उसकी विमूढ़ता बढ़ती लगती थी। बैठक से अपने कक्ष की ओर बढ़ते हुए उसने अपना दाहिना पैर ज़रूरत से ज़्यादा ऊंचा उठा लिया और फिर दरवाज़े की चौखट टटोलने लगा; उसकी पूरी आकृति से एक तरह का भौंचक्कापन प्रकट हो रहा था, मानो वह किसी अनजाने मकान में चला आया हो या ज़िन्दगी में पहली बार नशा कर लिया हो और अब नशे में विमूढ़ हो नयी तरंग में बह रहा हो। रोशनी की एक चौड़ी पट्टी कक्ष की एक दीवाल व किताबों की अलमारियों पर पड़ रही थी। यह रोशनी कारबोलिक व ईथर की तीखी व भारी गंध के साथ सोनेवाले कमरे से आ रही थी, जिसका दरवाज़ा ज़रा-सा खुला हुआ था... डाक्टर मेज़ के पासवाली कुरसी में धंस गया। थोड़ी देर वह रोशनी में पड़ी किताबों की ओर उनींदा-सा घूरता रहा, फिर उठकर सोनेवाले कमरे में चला गया।

यहां, सोनेवाले कमरे में मौत का सा सन्नाटा था। यहां की छोटी से छोटी चीज़ भी उस तूफ़ान का सबूत दे रही थी जो बिल्कुल हाल में आया था और अब थककर चूर हो गया था। यहां पूर्ण विश्रान्ति थी। बोतलों, बक्सों व मर्तबानों से भरी तिपाई पर एक मोमबत्ती और अलमारी पर रखा एक बड़ा लैम्प पूरे कमरे को रोशन कर रहे थे। खिड़की के ठीक पास पलंग पर एक बालक लेटा था जिसकी आंखें खुली थीं और चेहरे पर

आश्चर्य का भाव था। वह बिल्कुल हिलडुल नहीं रहा था पर उसकी खुली आंखें क्षण क्षण काली पड़ती और माथे में गहरी धंसती जा रही लगती थीं। उसके शरीर पर हाथ रखे, बिस्तर में मुंह छिपाये मां पलंग के पास झुकी बैठी थी। बच्चे की तरह वह भी निश्चल थी, पर उसके शरीर की गोलाइयों और भुजाओं में कैसी गति छिपी थी! पलंग से वह पूरी तरह से चिपटी हुई थी, सारे शरीर को उससे इस शक्ति व उत्सुकता के साथ दबाये हुए थी मानो थकान भरे शरीर ने जो शान्त तथा विश्राममय मुद्रा अंततः धारण कर ली थी उसमें व्याघात पहुंचाने से वह डर रही हो। कम्बल, कपड़े के टुकड़े, चिलमची, फ़र्श पर पानी, इधर-उधर बिखरे बुरुश और चम्मच, चूने के पानी की सफ़ेद बोतल, घुटी घुटी भारी हवा तक—सभी चीजें गम्भीर शान्ति में लय, विश्राम करती लग रही थीं।

डाक्टर अपनी पत्नी की बग़ल में आ खड़ा हुआ, पतलून की जेबों में हाथ डालकर और सिर एक ओर झुकाकर वह अपने बेटे की ओर ताकने लगा। उसके चेहरे से उदासीनता टपक रही थी और सिर्फ़ दाढ़ी पर चमक रही बूंदें ही इस बात का पता दे रही थीं कि वह अभी रोया है।

सोने के कमरे में मृत्यु के विचार से सम्बद्ध भयानकता और बीभत्सता का सर्वथा अभाव था। वहां छायी हुई निस्तब्धता, मां की मुद्रा, पिता की आकृति पर अंकित उदासीनता के भाव में कुछ बड़ी आकर्षक, मर्मस्पर्शी, मानव शोक की वह बड़ी सूक्ष्म अदृश्य सुन्दरता थी जिसे समझना और वर्णन करना लोग जल्दी नहीं सीखेंगे, जो संभवतः केवल संगीत द्वारा ही अभिव्यक्त की जा सकती है। और उस उदास निस्तब्धता में भी सौन्दर्य था। किरीलोव और उसकी पत्नी ने कुछ नहीं कहा, वे रोये नहीं, मानो दुख की गुरुता के साथ ही उन्हें उस स्थिति के कवित्व का भी आभास हो रहा हो। जैसे अपने समय से उनका यौवन विदा हुआ था वैसे ही इस बालक के साथ उनका सन्तान पाने का अधिकार भी विदा ले गया था। डाक्टर की उम्र चवालीस वर्ष की थी, उसके बाल अभी से सफ़ेद हो गये थे और वह बूढ़ा लगता था। उसकी रुग्ण, मुरझायी हुई पत्नी पैंतीस वर्ष की थी। आन्द्रेई उनका एकमात्र ही नहीं, अन्तिम सन्तान भी था।

अपनी पत्नी के विपरीत, डाक्टर उस स्वभाव के व्यक्तियों में से था जो मानसिक कष्ट के समय कुछ कर डालने की आवश्यकता अनुभव करते हैं। पत्नी के पास कुछ मिनट खड़े रहने के बाद वह सोने के कमरे से

निकल आया, उसी तरह दाहिना पैर ज़रूरत से ज़्यादा उठाते हुए, और एक छोटे से कमरे में गया जो एक सोफ़े से ही आधा भर गया था। वहां से वह रसोई में गया। अलावघर और रसोइये के पलंग के पास टहलते हुए वह झुककर एक छोटे दरवाज़े से होकर ड्योढ़ी में निकल आया।

यहां उसकी सफ़ेद गुलूबन्द और फीके पड़े चेहरेवाले व्यक्ति से फिर मुठभेड़ हो गयी।

"आख़िरकार!" दरवाज़े के हत्थे पर हाथ रखते हुए अबोगिन ने लम्बी सांस लेकर कहा: "चलिये, मेहरबानी करके चलिये!"

डाक्टर चौंक पड़ा, उसकी ओर देखा और उसे याद आ गया...

"लेकिन मैंने आपसे कह दिया था कि मैं जा न सकूंगा!" यकायक फिर इस दुनिया में लौटते हुए उसने कहा, "कैसी अजब बात है..."

अपने गुलूबन्द पर हाथ रखते हुए और मिन्नत भरी आवाज़ में अबोगिन बोला: "डाक्टर! मैं पत्थर की मूरत नहीं हूं, मैं आप की हालत अच्छी तरह समझता हूं... मुझे आपसे सहानुभूति है। पर मैं आपसे अपने लिए अनुनय-विनय नहीं कर रहा हूं। मेरी पत्नी मर रही है! यदि आपने उसकी वह चीख़ सुनी होती, उसका वह चेहरा देखा होता, तो आप मेरे हठपूर्ण अनुरोध को समझ सकते! हे भगवान, और मैं सोच रहा था कि आप कपड़े पहिनने गये हैं। डाक्टर, वक़्त बहुत क़ीमती है! आप चलें, मैं आपके हाथ जोड़ता हूं!"

बैठक की ओर बढ़ते हुए डाक्टर ने एक एक शब्द का स्पष्ट उच्चारण करते हुए कहा: "मैं आपके साथ नहीं जा सकता!"

अबोगिन उसके पीछे पीछे गया और उसकी बांह पकड़ ली।

"आप बहुत दुखी हैं, मैं समझ रहा हूं, पर मामूली दांत के दर्द के इलाज या किसी बीमारी के लक्षण पूछने भर के लिए तो मैं आपसे चलने का अनुरोध कर नहीं रहा," वह याचना भरे स्वर में बोला। "मैं एक इंसान की ज़िन्दगी बचाने के लिए कह रहा हूं, यह ज़िन्दगी व्यक्तिगत शोक के ऊपर है! अब आप चलें, मानवता के नाम पर मैं आपसे धैर्य और वीरता दिखाने को कह रहा हूं!"

"मानवता – वह तो दुधारी तलवार है," किरीलोव ने झुंझलाकर कहा, "इसी मानवता के नाम पर मैं आपसे कहता हूं कि मुझे न ले

जाइये। अजब बात है, सचमुच! यहां मेरे लिए खड़ा होना दुभर हो रहा है और आप हैं कि मुझे 'मानवता' शब्द की धमकी दे रहे हैं। इस वक़्त मैं कोई काम करने के क़ाबिल नहीं हूं... किसी तरह भी मैं जाने को राज़ी नहीं हो सकता; और फिर यहां कोई है भी नहीं, जिसे मैं अपनी बीवी के पास छोड़ जाऊं। नहीं, नहीं..."

किरीलोव एक क़दम पीछे हट गया और हाथ हिलाते हुए इन्कार करने लगा।

"आप मुझे जाने को न कहें," फिर एकदम घबराकर बोला, "मुझे माफ़ करें... आचरण संहिता के तेरहवें खण्ड के अनुसार मैं आपके साथ जाने को बाध्य हूं, और आपको अख़्तियार है कि मेरे कोट का गला पकड़कर मुझे घसीट ले जायें... अच्छी बात है, आप यही करें, पर... मैं कोई भी काम करने के क़ाबिल नहीं हूं... मैं बोल भी नहीं सकता... मुझे माफ़ करें..."

"डाक्टर, आप ऐसा न करें," उसकी बांह से चिपके चिपके ही अबोगिन ने कहा। "मुझे तेरहवें खण्ड से क्या लेना-देना? आपकी इच्छा के विरुद्ध चलने के लिए आपको मजबूर करने का मुझे कोई हक़ नहीं। अगर आप चलने को राज़ी हैं, तो ठीक; अगर नहीं तो मजबूरी है, मेरी अपील आपके दिल से है। एक युवती मर रही है! आप कहते हैं कि आपका बेटा अभी मरा है—तब तो औरों से ज़्यादा आपको मेरी वेदना समझनी चाहिए।"

घबराहट से अबोगिन की आवाज़ कांप रही थी। उसकी आवाज़ की कंपकंपी और लहजे में शब्दों की अपेक्षा मनाने की अधिक शक्ति थी। अबोगिन के शब्दों में सच्चाई थी लेकिन उल्लेखनीय बात यह थी कि उसके सब जुमले ऐंठे, रूखे, ग़ैर ज़रूरी तड़क-भड़क वाले और डाक्टर के घर के वातावरण व कहीं दूर मरती हुई महिला दोनों के लिए खटकनेवाले अनादर से भरे मालूम पड़ते थे। उसे ख़ुद भी यही लग रहा था और इस डर से कि कहीं उसकी बात समझी न जा सके, अपनी आवाज़ को नम्र और अनुनयभरी बनाने की भरसक चेष्टा कर रहा था ताकि यदि शब्दों से काम न चले तो आवाज़ की साफ़दिली ही उसका उद्देश्य पूरा कर दे। यह कहा जा सकता है कि शब्द और वाक्य चाहे कितने सुन्दर व सारगर्भित क्यों न हों, केवल उन्हीं को प्रभावित कर पाते हैं जो उदासीन हैं, जो

प्रसन्न या शोकाकुल हैं उन्हें नहीं। इसीलिए सुख ग्रौर दुख की चरम ग्रभिव्यक्ति बहुधा मौन में होती है। प्रेमी जब मूक होते हैं तभी एक दूसरे को ज़्यादा ग्रच्छी तरह समझते हैं ग्रौर क़ब्र पर दिये गये ग्रोजस्वी भाषण बाहरवालों का ही हृदय स्पर्श कर पाते हैं, मृतक के बच्चों व विधवा को वह निष्प्रेम व तुच्छ ही लगते हैं।

किरीलोव चुपचाप खड़ा रहा। ग्रबोगिन फिर डाक्टरी के पेशे व उसके त्याग तपस्या ग्रादि के सम्बन्ध में बोला। डाक्टर ने रुखाई के साथ पूछा :

"क्या बहुत दूर जाना होगा?"

"बस यही तेरह या चौदह मील। मेरे घोड़े बहुत बढ़िया हैं, डाक्टर! ईसान की क़सम, वे घण्टे भर में ग्रापको वापस पहुंचा देंगे, सिर्फ़ एक घण्टे में!"

डाक्टर पर डाक्टरी के पेशे ग्रौर मानवता के सम्बन्ध में कहे गये जुमलों से ज़्यादा ग्रसर इन ग्राख़िरी शब्दों का पड़ा। एक क्षण सोचने के बाद उसने उसांस भरकर कहा :

"ग्रच्छा! चलो चलें!"

वह तेज़ी से कक्ष में घुसा। ग्रब उसकी चाल स्थिर थी; क्षण भर में ही वह फ़ाक कोट डालकर वापस लौट ग्राया। ग्रबोगिन छोटे छोटे डग भरते हुए उसकी बग़ल चलने लगा ग्रौर कोट पहिनने में उसकी मदद करने लगा, फिर दोनों साथ साथ घर से बाहर निकले।

बाहर ग्रंधेरा था, पर इतना गहरा नहीं जितना भीतर ड्योढ़ी में था। लम्बे, झुके हुए, लंबी टेढ़ी नाक ग्रौर लम्बी, नुकीली दाढ़ीवाले डाक्टर की ग्राकृति ग्रंधेरे की पृष्ठभूमि में भी साकार थी। मुरझाये हुए चेहरेवाले ग्रबोगिन का बड़ा सिर भी जिस पर छात्रोंवाली छोटी टोपी लगी थी ग्रौर जो मुश्किल से उसकी चंदिया ढंक रही थी, दिखाई दे रहा था। गुलूबन्द सिर्फ़ सामने ही सफ़ेद चमक रहा था, पीछे वह उसके लम्बे बालों से ढंका हुग्रा था।

"ग्राप यक़ीन मानें ग्रापकी उदारता की क़द्र करना मैं जानता हूं।" गाड़ी में डाक्टर को बैठाते हुए वह बुदबुदाया, "हम लोग वहां ग्रभी पहुंचते हैं। लुका, प्यारे! तुम जितनी तेज़ी से हांक सकते हो, हांको! मेहरबानी करके, हांको!"

कोचवान ने घोड़े दौड़ा दिये। पहले इन लोगों को अस्पताल के अहाते की बदनुमा इमारतों की कतार मिली। इमारतें अंधेरे में थीं, सिर्फ़ अहाते की बिल्कुल कोनेवाली इमारत के सामने बगीचे में खिड़की से तेज़ रोशनी आ रही थी और अस्पताल की इमारत की ऊपर की मंज़िल की तीन खिड़कियों के शीशे आसपास से ज़्यादा पीले लग रहे थे। अब गाड़ी बिल्कुल अंधकार में चल रही थी; कुकुरमुत्तों की भीगी गंध आ रही थी और पत्तियों की सरसराहट सुनाई पड़ रही थी। पहियों की आवाज़ से जागे कौए शाखों से चौंककर शोकाकुल आवाज़ में कांव कांव कर उठते मानो उन्हें पता हो कि डाक्टर का लड़का मर गया है और अबोगिन की बीवी बीमार है। पर जल्दी ही पेड़ों की क़तारें ख़त्म हो गयीं और इक्का-दुक्का पेड़ और फिर झाड़ियां सपाटे से गुज़रने लगीं। एक पोखरा जिसकी सतह पर बड़ी बड़ी काली परछाइयां पड़ रही थीं, उदासी से झिलमिला रहा था; गाड़ी खुले मैदान में खड़खड़ाती जा रही थी। कौवों की कांव कांव खोखली पड़ती जा रही थी और धीरे धीरे वह भी ख़त्म हो गयी।

क़रीब रास्ते भर किरीलोव और अबोगिन चुप रहे। अबोगिन सिर्फ़ एक बार गहरी सांस लेकर बड़बड़ाया:

"कैसी दारुण परिस्थिति है! जो आत्मीय हैं, उन पर इतना प्रेम कभी नहीं उमड़ता जितना तब जब उन्हें खो बैठने पर डर पैदा हो जाता है।"

फिर जब नदी पार करने के लिए गाड़ी धीमी हुई किरीलोव यकायक चौंक पड़ा मानो पानी की छपछप ने उसे चौंका दिया हो और अपने स्थान से हिलकर उदास लहजे में बोला:

"देखिये, मुझे जाने दीजिये। मैं बाद में आ जाऊंगा। मैं सिर्फ़ अपने सहकारी को अपनी पत्नी के पास भेजना चाहता हूं। वह तो बिल्कुल ही अकेली रह गयी है, न!"

अबोगिन ने कुछ नहीं कहा। नदी के तल में पड़े पत्थरों से पहियों के लड़ने से गाड़ी डगमगायी और रेतीले किनारे पर निकलकर आगे बढ़ गयी। संतप्त किरीलोव बेचैनी से कुलबुलाता और अपने आसपास झांकता। सितारों की हलकी रोशनी में, रास्ता और नदी के किनारे की बेंत के झाड़ अंधेरे में ग़ायब होते दिखाई पड़ते। दाहिनी ओर मैदान फैला था, आकाश की तरह निस्सीम और समतल। वहां दूरी पर छुटपुट रोशनियां झिलमिला रही थीं जो शायद दलदल की सड़ी घास से चमक रही थीं। बायीं ओर,

रास्ते के समानान्तर एक पहाड़ था, जो झाड़ियों के कारण झबरा लग रहा था और जिस के ऊपर बड़ा, लाल हंसिया-सा चांद स्थिर रूप से लटका हुआ था, कुहरे से वह कुछ धुंधला लग रहा था और उसके चारों तरफ़ छोटी छोटी बदलियां घिरी हुई थीं, मानो उसे चारों ओर से देख उस पर पहरा दे रही हों कि वह कहीं चला न जाये।

पूरी प्रकृति निराशा और रोग से व्याप्त मालूम पड़ती थी। अंधेरे कमरे में अकेली बैठी पतित स्त्री की तरह जो अपना विगत भुलाने की कोशिश कर रही हो, पृथ्वी वसन्त और ग्रीष्म की स्मृतियों से परेशान हो अनिवार्य शरद की उपेक्षापूर्ण प्रतीक्षा में थी। जिधर भी निगाह जाती प्रकृति अंधेरा, असीम गहरा, ठंडा गड्ढा मालूम पड़ती जिसमें से न किरीलोव, न अबोगिन और न लाल चांद का हंसिया कभी भी उबर सकेंगे...

गाड़ी जैसे जैसे गन्तव्य स्थान के पास पहुंचती जाती, अबोगिन उतना ही धैर्यहीन होता जाता। वह उठता, बैठता, चौंककर उछल पड़ता, आगे कोचवान के कन्धे के ऊपर से ताकता। अंततः गाड़ी जब धारीदार किरमिच के परदे से रुचिपूर्ण ढंग से सजे ओसारे में जाकर रुकी, उसने जल्दी और ज़ोर से सांसें लेते हुए दूसरी मंज़िल की खिड़कियों की ओर ताका जिनसे रोशनी आ रही थी।

"अगर कुछ हो गया तो... मैं बरदाश्त न कर पाऊंगा," उसने डाक्टर के साथ ड्योढ़ी की ओर बढ़ते और घबराहट में हाथ मलते हुए कहा। "पर परेशानी प्रकट करनेवाली कोई आवाज़ तो सुनाई नहीं पड़ती, इसलिए अब तक सब कुछ ठीक ही होगा," सन्नाटे में कुछ सुन पाने के लिए कान लगाये, वह बोला।

ड्योढ़ी में बोलने या क़दमों की आवाज़ भी नहीं सुनाई पड़ रही थी और पूरा घर तेज़ रोशनी के बावजूद सोया हुआ लग रहा था। अभी तक अंधेरे में रहने के बाद किरीलोव और अबोगिन अब एक दूसरे को अच्छी तरह देख सकते थे। डाक्टर लम्बा, झुके कन्धोंवाला था और बेपरवाही से भोंडे कपड़े पहने था। वह सुन्दर नहीं था। उसके मोटे, कुछ कुछ हबशियों जैसे होंठ, लंबी टेढ़ी नाक और आलस्य व उपेक्षा भरी निगाह में कुछ ऐसा था जो कठोर, रूखा, निष्ठुर लगता था। उसके बेकढ़े बाल, धंसी हुई कनपटी, लम्बी नुकीली दाढ़ी की असमय सफ़ेदी, जिसमें से बीच

बीच में उसकी ठुड्डी झलकती थी, उसकी त्वचा का मिट्टी जैसा फीकापन, उसका बेढंगा और लापरवाही भरा बरताव–सभी जीवन तथा लोगों से ऊब, ग़रीबी और आवश्यकताओं की पूर्तिहीनता प्रकट करते थे। उसकी भावहीन आकृति से यह प्रकट नहीं होता था कि इस शख़्स के भी पत्नी है और वह अपने बच्चे के लिए रो भी सकता है। अबोगिन बिल्कुल भिन्न था। वह हट्टा-कट्टा सुनहरे बालोंवाला आदमी था, उसका सिर बड़ा था और नाक-नक़्शा बड़ा, पर मुलायम था, वह बिल्कुल नये फ़ैशन के कपड़े बड़े सुन्दर ढंग से पहने हुए था। उसकी चाल-ढाल में कुलीनता थी। उसके बड़े बड़े बालों की लटों, उसके चेहरे और कसकर बन्द किये गये फ़ाक कोट से कुछ कुछ शेर जैसी बात लगती थी। वह चलता तो सिर उठाकर, सीना आगे निकालकर और बड़ी भली लगनेवाली भारी आवाज़ में बोलता। जिस ढंग से उसने गुलूबन्द उतारा और बालों पर हाथ फेरा उसमें स्त्रियों जैसी सुघरता और छवि थी। यहां तक कि उसकी उदासी व पीलेपन और ओवरकोट उतारते हुए सीढ़ियों की ओर बच्चों जैसी झिझक से ताकने से भी उसके व्यक्तित्व से समृद्धि, स्वास्थ्य और आत्मविश्वास की छाप बिगड़ नहीं पाती थी।

सीढ़ियां चढ़ते हुए उसने कहा: "न कोई आवाज़ है और न कोई दिखाई ही पड़ता है, कहीं कोई हलचल खलबली भी नहीं है, ईश्वर करे..."

अबोगिन डाक्टर को ड्योढ़ी से होते हुए हाल में ले गया जहां एक पियानो की काली आकृति दिखाई पड़ रही थी और छत से ढीले सफ़ेद आवरण में फ़ानूस लटक रहा था। यहां से वे एक छोटे दीवानख़ाने में गये जो आरामदेह और सुरुचिपूर्ण ढंग से सजा था और जिसमें एक तरह की गुलाबी कान्ति झिलमिला रही थी।

"डाक्टर! आप यहां बैठें और प्रतीक्षा करें," अबोगिन बोला, "मैं अभी एक मिनट में आता हूं। मैं जाकर देख लूं और बता दूं कि आप आ गये हैं।"

किरीलोव अकेला रह गया। दीवानख़ाने की विलासिता, मधुर सांध्य प्रकाश, अजनबी अनजाने घर में उसकी मौजूदगी जो स्वयं अपने में एक उल्लेखनीय घटना थी इन सब का उस पर कोई प्रभाव पड़ता नहीं लग रहा था। वह एक आराम-कुरसी पर बैठ गया और कारबोलिक के निशान पड़ी अपनी उंगलियों की ओर देखने लगा। उसने लाल लैम्प-शेड और

वायलिन के केस की ओर हल्की निगाह दौड़ायी और टिक-टिक करती घड़ी की ओर देखकर उसने एक भेड़िया ज़रूर देख लिया जिसको मारकर खाल भर दी गयी थी और जो अबोगिन की तरह ही भारी भरकम और खाया-पिया मालूम पड़ता था।

सब ओर शान्ति थी... दूर, किसी दूसरे कमरे में किसी ने ज़ोर से आह भरा, किसी अलमारी का शीशे का दरवाज़ा झनझनाया और फिर शान्ति छा गयी। कोई पांचेक मिनट के बाद किरीलोव ने हाथों की ओर निहारना छोड़ उस दरवाज़े की ओर देखा जिससे अबोगिन गया था।

अबोगिन दरवाज़े में खड़ा था, पर वह अब वही अबोगिन नहीं था जो कमरे से गया था। उसकी परिष्कृत सुघरता और खाया-पिया होने की छवि उसे दग़ा दे गयी थी। उसके चेहरे, हाथों व मुद्रा पर एक विरक्ति का भाव अंकित था जो मानो भय था या शारीरिक कष्ट। उसकी नाक, होंठ, मूंछें, उसका सारा चेहरा फड़क रहा था, मानो वे उसके चेहरे से फूटकर अलग निकल पड़ना चाहते हों, उसकी आंखों में पीड़ा की चमक थी...

लम्बे भारी डग भरता हुआ वह दीवानख़ाने के बीच आ खड़ा हुआ, फिर आगे झुककर मुट्ठियां बांधते हुए कराहा।

"वह मुझे दग़ा दे गयी!" 'दग़ा' पर ज़ोर देते हुए वह चिल्लाया। "दग़ा दे गयी! मुझे छोड़कर भाग गयी! बीमार पड़ी और मुझे डाक्टर लाने भेजा सिर्फ़ इसलिए कि वह उस बन्दर पापचिंस्की के साथ भाग जाये! हे भगवान!"

अबोगिन भारी क़दम भरता हुआ डाक्टर के पास तक चला आया और उसके चेहरे के पास अपना भरा, सफ़ेद घूंसा हिलाता हुआ चिल्लाया:

"मुझे छोड़ गयी!! दग़ा दे गयी! यह सब झूठ क्यों?! हे भगवान! हे भगवान! यह गन्दी, फ़रेब भरी चालबाज़ी क्यों, यह शैतानियत भरा, धोखे का खेल क्यों? मैंने उसका क्या बिगाड़ा था? वह मुझे छोड़ गयी!"

आंसू उसके गालों पर छलक आये। वह मुड़ा और दीवानख़ाने में इधर-उधर टहलने लगा। छोटे फ़ाक कोट व फ़ैशनेबिल चुस्त पतलून में जिससे बड़े बालोंवाले भारी सिरवाले उसके जिस्म के मुक़ाबिले उसकी टांगें बहुत पतली मालूम पड़ती थीं, वह अब और भी ज्यादा शेर की तरह लग

4*

रहा था। डाक्टर के उदासीन चेहरे पर जिज्ञासा की झलक श्रायी, वह उठ खड़ा हुश्रा श्रौर श्रबोगिन की श्रोर देखता हुश्रा बोला :

"पर मरीज़ कहां है?"

"मरीज़! मरीज़!" हंसता श्रौर रोता, मुट्ठियां हिलाता श्रबोगिन चिल्लाया, "वह मरीज़ नहीं है, श्रधम दुष्टा है! कितना कमीनापन! कितनी कलुषता! श्राप सोचेंगे शैतान ख़ुद इससे ज़्यादा घिनौनी बात न सोच पाता! मुझे भेज दिया ताकि वह भाग सके, उस बन्दर, उस दलाल, उस भोंड़े भांड के साथ भाग जाये! हे भगवान! इससे श्रच्छा होता कि वह मर जाती! मैं बरदाश्त नहीं कर सकूंगा, कभी नहीं!"

डाक्टर तनकर खड़ा हो गया। उसने श्रांसुश्रों से भरी श्रांखें झपकायीं, उसकी नुकीली दाढ़ी भी जबड़ों के साथ बायें से दायें हिल रही थी। भौंचक्का हो बोला :

"माफ़ कीजिये पर इसका मतलब क्या है? मेरा बच्चा मर गया है, मेरी पत्नी शोक से व्याकुल है, घर में श्रकेली है... ख़ुद मैं मुश्किल से खड़ा हो पा रहा हूं, तीन रात से मैं सोया नहीं हूं... श्रौर यहां मुझे क्या पता लगता है? मैं एक भद्दी भंड़ैत में पार्ट करने को बुलाया गया हूं। एक तरह से स्टेज की सामग्री भर बना दिया गया हूं। मैं... मेरी तो समझ में नहीं श्राता!"

श्रबोगिन ने एक मुट्ठी खोली श्रौर मुड़ा-मुड़ाया पुर्ज़ा फ़र्श पर डालकर उसे कुचल दिया, मानो वह कोई कीड़ा रहा हो जिसे वह नष्ट कर डालना चाहता था। अपने चेहरे के सामने मुट्ठी हिलाते हुए, दांत भींचकर वह बोला :

"श्रौर मैंने कुछ ध्यान नहीं दिया, कुछ समझा नहीं! मैंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि वह रोज़ मेरे यहां श्राता है, इस बात पर ग़ौर नहीं किया कि श्राज वह मेरे घर बग्घी में श्राया था। बग्घी में क्यों? मैं श्रंधा श्रौर मूर्ख था जो इस बात पर सोचा तक नहीं! श्रंधा श्रौर मूर्ख!" उसके चेहरे से लग रहा था मानो किसी ने उसके पैर का घट्टा कुचल दिया हो।

डाक्टर फिर बड़बड़ाया : "मैं... मेरी समझ में नहीं श्राता! इस सब का मतलब क्या है? यह तो किसी इन्सान की हिक़ारत करना हुश्रा, इन्सान के दुख श्रौर वेदना का मज़ाक़ उड़ाना हुश्रा! यह तो बिल्कुल

नामुमकिन बात है... मैंने तो अपनी ज़िन्दगी में कभी ऐसी बात सुनी तक नहीं!"

भारी चौंकाहट की भावना में, उस व्यक्ति की तरह जो अब समझ रहा हो कि उसका बड़ा भारी अपमान किया गया है, डाक्टर ने अपने कंधे झंझोड़े और बेबसी में हाथ फैला दिये, बोलने या कुछ भी कर सकने में असमर्थ वह आराम-कुर्सी में फिर धंस गया।

"तो तुम अब मुझे प्यार नहीं करतीं, किसी दूसरे से प्रेम करती हो–अच्छी बात है, पर यह धोखा क्यों, यह कमीनी दग़ाबाज़ी की हरकत क्यों?" रुआंसे स्वर में अबोगिन बोला। "इससे किसका भला होगा? और यह किया क्यों? मैंने तुम्हारा कब क्या बिगाड़ा था? डाक्टर!" वह आवेग में किरीलोव के पास जाता हुआ चिल्लाया: "आप मेरे दुर्भाग्य के अवश बन गये साक्षी हैं और मैं आपसे सच बात नहीं छिपाऊंगा। मैं क़सम खाता हूं, उस औरत से मैं मुहब्बत करता था, मैं उसकी पूजा करता था, मैं उसका ग़ुलाम था! मैंने उसके लिए हर चीज़ की क़ुरबानी की–अपने रिश्तेदारों से झगड़ा किया, नौकरी छोड़ दी, संगीत का अपना शौक़ छोड़ दिया, उन बातों के लिए उसे माफ़ कर दिया जिनके लिए मैं अपनी मां या बहन को माफ़ न करता... मैंने उसकी ओर कभी कड़ी निगाह से ताका तक नहीं... मैंने कभी उसे बुरा मानने का ज़रा-सा मौक़ा नहीं दिया! यह सब झूठ और फ़रेब है क्यों? अगर तुम मुझे प्यार नहीं करतीं तो ऐसा साफ़ साफ़ कह क्यों नहीं दिया–इन सब मामलों में तुम मेरी राय जानती थीं..."

आंखों में आंसू भरे, कांपते हुए, अबोगिन ने ईमानदारी से अपना दिल डाक्टर के सामने खोलकर रख दिया। वह भावोद्रेक से आवेग में बोल रहा था, सीने से हाथ लगाये हुए, बिना किसी झिझक के वह गोपनीय घरेलू बातें बता रहा था, वास्तव में, एक तरह से आश्वस्त-सा होता हुआ कि आख़िरकार ये गोपनीय बातें अब खुल गयीं। अगर इसी तरह वह घण्टे भर और बोल लेता, अपने दिल की बात कह लेता, ग़ुबार निकाल लेता तो इसमें संशय नहीं कि वह बेहतर महसूस करने लगता। कौन जाने, अगर डाक्टर दोस्ताना हमदर्दी से उसकी बातें सुन लेता, शायद, जैसा कि अक्सर होता है, वह ना-नुकर किये बिना और अनावश्यक ग़लतियां किये बग़ैर ही अपने प्रारब्ध से सन्तुष्ट हो जाता... पर हुआ कुछ

ग्रौर ही। जब ग्रबोगिन बोल रहा था, ग्रपमानित डाक्टर के चेहरे पर एक परिवर्तन होता दिखाई दिया। उसके चेहरे पर जो उदासीनता ग्रौर स्तब्धता का भाव था वह मिट गया ग्रौर उसकी जगह क्रोध, घोर ग्रपमान ग्रौर रोष ने ले ली। उसका चेहरा ग्रौर भी कठोर, ग्रप्रिय व हठपूर्ण हो गया। ग्रबोगिन ने जब उसे घोर धार्मिक पादरिनों जैसे रूखे व भावशून्य चेहरेवाली एक सुन्दर नवयुवती का फ़ोटो दिखाते हुए पूछा कि क्या कोई यक़ीन कर सकता है कि इस चेहरेवाली ग्रौरत झूठ बोल सकती है, डाक्टर यकायक झटके से खड़ा हो गया, उसकी ग्रांखों में एक वहशियाना चमक ग्रा गयी ग्रौर हर लफ़्ज़ पर ज़ोर देते हुए वह रुखाई से बोला :

"ग्राप मुझे यह सब क्यों बता रहे हैं? मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है, मैं यह सब नहीं सुनूंगा!" वह मेज़ पर हाथ पटककर चिल्लाने लगा था, "मुझे ग्रापके ग्रोछे रहस्यों की कोई ज़रूरत नहीं है! बुरा हो उनका! मुझसे ऐसी निजी बातें करने की हिम्मत भी न करना! शायद ग्राप समझते हैं कि मेरा ग्रभी तक काफ़ी ग्रपमान नहीं हुग्रा? ग्राप मुझे ग्रपना नौकर समझते हैं जिसका ग्राप ग्रपमान कर सकते हैं? क्यों, है न?"

ग्रबोगिन किरीलोव के पास से पीछे हट गया ग्रौर स्तम्भित हो उसकी ग्रोर देखने लगा।

"ग्राप मुझे यहां लाये क्यों?" डाक्टर कहता गया, उसकी दाढ़ी हिल रही थी। "ग्रापने शादी की क्योंकि इससे ज़्यादा ग्रच्छा कोई ग्रौर काम ग्रापको था नहीं, ग्रौर इसीलिए ग्राप ग्रपना ग्रोछा नाटक मनमाने ढंग से खेलते रहें, पर मुझे इससे क्या लेना-देना? मुझे ग्रापके प्यार मुहब्बत से क्या सरोकार? मुझे तो चैन से छोड़ दो! ग्राप ग्रपनी सभ्य मुक्केबाज़ी कीजिये, ग्रपने मानवतावादी विचार बघारिये, (वायलिन केस की ग्रोर कनखियों से देखते हुए) ग्रपने बाजे बजाइये, मुर्ग़ों की तरह मुटाइये, लेकिन लोगों का ग्रपमान करने की हिम्मत न कीजिये! ग्रगर ग्राप उनका सम्मान नहीं कर सकते तो उनसे ग्रलग ही रहिये, बस!"

ग्रबोगिन का चेहरा लाल हो गया, उसने पूछा :

"इसका मतलब क्या है?"

"इसका मतलब यह है कि लोगों के साथ यह कमीना ग्रौर कुत्सित खिलवाड़ है! मैं डाक्टर हूं, ग्राप डाक्टरों को, बल्कि हर ऐसा काम

करनेवाले को जिसमें इत्र और वेश्यावृत्ति की गन्ध नहीं आती, नौकर, बदमाश क़िस्म का आदमी समझते हैं, आप समझें पर दुखी व्यक्ति को नाटक की सामग्री समझने का आपको कोई अधिकार नहीं है!"

अबोगिन का चेहरा गुस्से से फड़क रहा था, उसने हलके से पूछा: "मुझसे ऐसी बात करने की आपकी हिम्मत कैसे हुई?"

मेज़ पर फिर घूंसा मारते हुए डाक्टर चिल्लाया: "मेरा दुख जानते हुए, अपनी अनाप-शनाप बातें सुनाने के लिए मुझे यहां लाने की हिम्मत आपको कैसे हुई? दूसरे के दुख का मखौल करने का हक़ आपको किसने दिया?"

अबोगिन चिल्लाया: "आप ज़रूर पागल हैं! कैसी निर्दयता है! मैं ख़ुद कितना अधिक दुखी हूं... और... और..."

नफ़रत से मुस्कराकर डाक्टर ने कहा: "दुखी! आप इस शब्द का प्रयोग न कीजिये, इसका आपसे कोई वास्ता नहीं। जो निकम्मे आवारे क़र्ज़ नहीं ले पाते वे भी अपने को दुखी कहते हैं। मुटापे से परेशान मुर्गा भी दुखी होता है। ओछे आदमी!"

गुस्से से पिपियाते हुए अबोगिन ने कहा: "जनाब, अपने को भूल रहे हैं! ऐसी बातों का जवाब लातों से दिया जाता है। समझें?"

अबोगिन ने जल्दी से अन्दर की जेब टटोलकर उसमें से नोटों की एक गड्डी निकाली और उसमें से दो नोट निकालकर मेज़ पर पटक दिये। नथुने फड़काते हुए उसने कहा:

"यह रही आपकी फ़ीस, आपके दाम अदा हो गये!"

नोटों को ज़मीन पर फेंकते हुए डाक्टर चिल्लाया:

"मुझे रुपये देने की गुस्ताख़ी न कीजिये! अपमान रुपये से नहीं धुल सकता!"

अबोगिन और डाक्टर एक दूसरे से गुस्से में ऐसी अपमानजनक बातें कहने लगे जो अनुचित थीं। उन दोनों ने जीवन भर शायद सन्निपात में भी कभी इतनी अनुचित, निर्दयतापूर्ण और बेहूदी बातें नहीं कही थीं। दोनों में वेदना जन्य अहं जाग गया था। जो वेदना में होते हैं उनका अहं बहुत बढ़ जाता है, वे क्रोधी, नृशंस और अन्यायी हो जाते हैं, वे एक दूसरे को समझने में मूर्खों से भी ज़्यादा असमर्थ होते हैं। दुर्भाग्य लोगों को मिलाने की जगह अलग करता है, और जब कि यह समझा जाता है

कि एक ही तरह का दुख पड़ने पर लोग एक दूसरे के निकट आयेंगे, वास्तविकता यह है कि ऐसे लोग अपेक्षाकृत सन्तुष्ट लोगों से बहुत ज्यादा नृशंस व अन्यायी साबित होते हैं।

डाक्टर चिल्लाया: "मेहरबानी करके मुझे मेरे घर पहुंचा दीजिये!" ग़ुस्से से उसका दम फूल रहा था।

अबोगिन ने ज़ोर से घण्टी बजायी। जब उसकी पुकार पर कोई नहीं आया, तब अपने ग़ुस्से में घण्टी फ़र्श पर फेंक दी। क़ालीन पर एक हलकी खोखली आह सी भरती हुई घण्टी ख़ामोश हो गयी। एक नौकर आया।

घूंसा ताने अबोगिन ज़ोर से चीख़ा: "तुम लोग कहां छिपे थे? तेरा सत्यानाश हो! तू अभी था कहां? जा, इस भले मानस के लिए गाड़ी लाने को कह और मेरे लिए बग्घी निकलवा!" जैसे ही नौकर जाने के लिए मुड़ा, अबोगिन फिर चिल्लाया: "ठहर! कल इस घर में एक भी गद्दार दग़ाबाज़ नहीं रहेगा! सब निकल जायें! मैं नये नौकर रखूंगा, दुष्ट कहीं के!"

गाड़ियों के लिए इन्तज़ार करते समय डाक्टर और अबोगिन ख़ामोश रहे। हृष्ट-पुष्ट और नाज़ुक सुरुचि का भाव अबोगिन के चेहरे पर फिर लौट आया था। बड़े सभ्य लहजे में वह अपना सिर हिलाता हुआ, कुछ योजना-सी बनाता हुआ कमरे में टहलता रहा। उसका क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ था, लेकिन वह ऐसा ज़ाहिर करने की कोशिश कर रहा था मानो कमरे में दुश्मन की मौजूदगी की ओर उसका ध्यान भी न गया हो... डाक्टर एक हाथ से मेज़ पकड़े हुए स्थिर खड़ा अबोगिन की ओर बदनुमा, गहरी हिक़ारत की निगाह से ताक रहा था, ऐसी नफ़रत से देख रहा था जैसी कि संतुष्टि और सुरुचि देखकर केवल निर्धन और दुखी लोगों की नज़रों में आ पाती है।

कुछ देर बाद, जब डाक्टर गाड़ी में बैठा अपने घर जा रहा था, उसकी आंखों में तब भी घृणा की वही भावना क़ायम थी। घण्टे भर पहले जितना अंधेरा था, अब वह उससे ज्यादा बढ़ गया था। दूज का लाल चांद पहाड़ी के पीछे छिप गया था और उसकी रखवाली करनेवाले बादल सितारों के आस-पास काले धब्बों की तरह पड़े थे। पीछे से सड़क पर पहियों की आवाज़ सुनाई दी और बग्घी की लाल रंग की लालटैनों की चमक डाक्टर की गाड़ी के आगे आ गयी। यह अबोगिन था जो था प्रतिवाद करने, झगड़ा करने, ग़लतियां करने पर उतारू...

रास्ते भर डाक्टर अपनी पत्नी या पुत्र आन्द्रेई के बारे में नहीं, अबोगिन और उस घर में रहनेवालों के बारे में सोचता रहा जिसे वह अभी छोड़कर आया था। उसके विचार नृशंस और अन्यायपूर्ण थे। उसने अबोगिन, उसकी बीवी, पापचिंस्की, सुगंधिपूर्ण, गुलाबी उषा में रहनेवाले सभी लोगों के विरुद्ध क्षोभ प्रकट किया और रास्ते भर बराबर वह इन लोगों के बारे में घृणा और नफ़रत की बातें ही सोचता रहा, यहां तक कि उसके दिल में दर्द होने लगा और ऐसे लोगों के प्रति एक ऐसा ही दृष्टिकोण उसके दिमाग़ में स्थिर हो गया।

वक़्त गुज़रेगा और किरीलोव का दुख भी गुजर जायेगा लेकिन यह अन्यायपूर्ण दृष्किोण जो मानवोचित नहीं है, नहीं गुजर पायेगा और डाक्टर के साथ रहेगा ज़िन्दगी भर, उसकी मौत के दिन तक।

१८८७

एक नीरस कहानी

(एक बूढ़े आदमी के संस्मरण)

१

रूस में एक बहुत संभ्रांत प्रोफ़ेसर, प्रिवी कौंसिल का मेम्बर, कई उपाधियों से विभूषित एक व्यक्ति निकोलाई स्तेपानोविच रहता है। उसे इतने रूसी तथा विदेशी पदक मिल चुके हैं कि जब कभी उसे उन सब को लगाने का मौक़ा आता तो छात्र उसे प्रतिभा-स्टैण्ड कहते हैं। वह रईस, अति कुलीन लोगों में उठता-बैठता है। पिछले पच्चीस–तीस साल में रूस में ऐसा कोई प्रसिद्ध विद्वान नहीं रहा जिससे उसके मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध न रहे हों। बड़े लोगों में अब ऐसा कोई नहीं बचा है जिससे उसको दोस्ती करनी बाक़ी हो। विगत की ओर देखें तो पिरोगोव, कवेलिन, कवि नेक्रासोव जैसे लोगों ने उसे अपनी स्नेहपूर्ण सच्ची दोस्ती प्रदान की है। हर रूसी और तीन विदेशी विश्वविद्यालयों का वह सम्मानित सदस्य है और न जाने कितने पद उसे और प्राप्त हैं। इन सब तथा इनसे और भी बहुत ज्यादा बातों से वह नाम बना है जो मेरा है।

यह मेरा नाम बहुत प्रख्यात है। रूस का हर शिक्षित व्यक्ति इससे परिचित है और विदेशों में विश्वविद्यालयों में यह आदर के साथ हमेशा "प्रमुख और सम्मानित" कहकर लिया जाता है। यह नाम उन इने-गिने भाग्यशाली नामों में से है जिसके प्रति खुले आम यों ही या अख़बारों में अनादर दिखाना अशिष्टता समझा जायेगा। और ऐसा होना भी चाहिए। आख़िरकार मेरे नाम का सम्बन्ध एक ऐसे व्यक्ति से है जो मशहूर है, प्रतिभाशाली है और समाज के लिए निश्चय ही उपयोगी है। मैं ऊंट की तरह मेहनती और मज़बूत हूं और यह बड़ी बात है, फिर मैं गुणी और प्रतिभासम्पन्न हूं, जो और भी बड़ी बात है। यहां यह भी कह दूं कि मैं एक ईमानदार, सुसंस्कृत और निरभिमानी व्यक्ति हूं। मैं कभी साहित्य या राजनीति के क्षेत्र में अपनी टांग नहीं अड़ाता, न जाहिलों से बहस

कर लोकप्रियता चाहता, न मैं बड़े बड़े भोजों के अवसर पर या अपने सहयोगियों के मज़ारों पर भाषण देता . . . वैज्ञानिक की हैसियत से मेरा नाम निष्कलंक है, शिकायत की कोई गुंजाइश नहीं है। मेरा नाम भाग्यशाली है।

इस नाम के पीछे जो व्यक्ति है, यानी मैं, बासठ वर्ष का पुरुष हूं। गंजा, नक़ली दांतवाला, और लाइलाज टिक का मरीज़। मैं उतना ही अकिंचन और कुरूप हूं जितना मेरा नाम कीर्तिमान और सुन्दर है। मेरे हाथ और सिर कमज़ोरी के कारण कांपते हैं। मेरी गर्दन तुर्गनेव की एक नायिका की भांति वायलिन के हत्थे की तरह है। मेरा सीना धंसा हुआ, मेरी पीठ पतली है। जब मैं बातचीत करता हूं या भाषण करता हूं तो मेरे होंठ एक तरफ़ लटक जाते हैं। जब मैं मुस्कराता हूं तो मेरे चेहरे पर वृद्धावस्था की स्थायी झुर्रियां पड़ती हैं। मेरे पतले-दुबले शरीर में कोई रोब दबदबेवाली बात नहीं है। हां, यह अवश्य है कि जब टिक का दौरा पड़ता है तो उस समय मेरे चेहरे पर विशेष प्रकार का भाव आता है, जिसे देखकर कोई भी यह कह सकता है कि "यह आदमी बहुत जल्दी ही मर जायेगा"।

मैं अब भी काफ़ी अच्छी तरह से भाषण कर सकता हूं। पहले की तरह अब भी मैं श्रोताओं को दो घंटे तक आकृष्ट किये रह सकता हूं। मेरा उत्साह, मेरी व्यंग चातुरी और भाषा पर अधिकार, मेरी आवाज़ के दोषों को पूरा कर लेते हैं। हालांकि मेरी आवाज़ फटी और चिड़चिड़ी है और कभी कभी तो मैं बगुलाभगत की तरह भुनभुनाने लगता हूं। परन्तु मैं अच्छा लेखक नहीं हूं। मेरे मस्तिष्क का वह भाग जो मेरी लेखन-प्रवृत्तियों का नियन्त्रक है अब काम नहीं देता। मेरी याददाश्त शिथिल पड़ गयी है। मेरे विचारों में क्रम नहीं रहता। जब मैं उन्हें लिखता हूं तो मुझे लगता है कि उनको एक सूत्र में बांधनेवाली क्षमता अब मुझ में नहीं है। मेरी लेखनी ठस है, मेरे मुहावरे अटपटे तथा बचकाने हैं। अक्सर मैं जो चाहता हूं वह लिख नहीं पाता। जब मैं लेख का अन्त करने लगता हूं तो आरम्भ याद नहीं आता। अक्सर सीधे सादे शब्द भी याद नहीं आते और फ़ालतू शब्दों को हटाने और वाक्य-विन्यास के सुधार में ही बड़ी शक्ति ख़र्च हो जाती है। स्पष्ट है कि मेरी मानसिक अवस्था गिर रही है। मार्के की बात यह है कि जितना सादा लेख मुझे लिखना होता है उतना ही अधिक परिश्रम मुझे करना होता है। वैज्ञानिक लेख लिखना मुझे आसान

लगता है, बनिस्बत किसी बधाई के पत्र या काम की बात लिखने के। एक बात और – जर्मन या अंग्रेज़ी में लिखना मैं रूसी के मुक़ाबले ज़्यादा आसान पाता हूं।

मेरे मौजूदा जीवन के बारे में सब से प्रमुख चीज़ है मेरा अनिद्रा रोग जिसका मैं हाल मेंही शहीद हुआ हूं। अगर मुझसे कोई अपनी ज़िन्दगी के बुनियादी तत्त्व पूछे तो मैं उत्तर दूंगा – अनिद्रा। पुरानी आदत के अनुसार मैं ठीक आधी रात को कपड़े उतारकर बिस्तर में घुस जाता हूं। मैं फ़ौरन सो जाता हूं पर रात को एक बजते ही आंख खुल जाती है और लगता है जैसे नींद न आयी हो। मुझे बिस्तर छोड़ देना पड़ता है। मैं बत्ती जलाता हूं; घंटे दो घंटे कमरे में चहलक़दमी करता हूं, जानी-पहचानी फ़ोटो व तस्वीरों को निहारता हूं। चलते चलते ऊबकर अपने डेस्क के सामने आ बैठता हूं, अविचल, विचारहीन और इच्छाहीन। अगर कोई किताब मेरे सामने पड़ी हो, तो यांत्रिक ढंग से उसे खींच, बिना किसी दिलचस्पी के पढ़ने लगता हूं। इसी तरह मैंने हाल में पूरा एक उपन्यास यन्त्रवत ही एक रात में पढ़ डाला था, जिसका अजब नाम था – 'अबाबील का गीत'। कभी कभी दिमाग़ को स्थिर रखने के लिए एक हज़ार तक गिनती गिनने लगता हूं, या अपने किसी दोस्त या परिचित को कल्पना की आंखों से देखता हूं और यह याद करने की कोशिश करता हूं कि किस वर्ष और किस स्थिति में वह काम पर बहाल हुआ था। मैं आवाज़ें सुनना पसन्द करता हूं। कभी दो कमरों के पार सोई हुई बेटी लीज़ा नींद में तेज़ी से बड़बड़ा उठती है या मेरी पत्नी हाथ में मोमबत्ती ले बैठक से गुज़रती है, वह दियासलाई सदैव ही गिरा देती है। कभी कपड़े की आलमारी के सिकुड़ते तख़्ते चूं-चूं करते हैं या लैम्प की बत्ती अकस्मात ही फरफराने लगती है – ये सभी ध्वनियां मुझे अनोखे ढंग से प्रभावित करती हैं।

रात में जागते रहने का अर्थ होता है अपनी असामान्यता के प्रति सचेत रहना, इसी से मैं अरुणोदय का बेचैनी से इन्तज़ार करता हूं, जब जागते रहना स्वाभाविक है। बहुतेरे कठिन घण्टे गुज़ारने के बाद आंगन में मुर्ग़ा बांग देता है। मुझे मुक्ति मिल जाती है। मैं जानता हूं कि अब एक घण्टे में दरबान जग जायेगा और चिड़चिड़ाहट भरी खांसी खांसते अकारण ही ऊपर पहुंचेगा और तब खिड़कियों के शीशे धीरे धीरे रुपहले होने लगेंगे और सड़क से धीरे धीरे शोर-गुल उठने लगेगा...

मेरा दिन शुरू होता है मेरे कमरे में मेरी पत्नी के पदार्पण से। वह स्कर्ट पहने, नहायी धोयी, इत्र से महकती, बाल खोले आती है। अपने व्यवहार से वह दिखाती है कि महज़ इत्तफ़ाक़ से आयी है और सदैव एक ही बात दुहराती है:

"क्षमा करना, मैं यूं ही चली आयी... क्या रात फिर बुरी कटी?"

तब वह बत्ती बुझा देती है, मेज़ के सामने बैठ जाती है और बातचीत शुरू कर देती है। मैं भविष्यद्रष्टा नहीं हूं पर उसकी बात पहले ही से जानता हूं। हर सबेरे वही बात। साधारणतया मेरे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में चिन्तापूर्ण पूछ-ताछ कर उसे एकदम हमारे बेटे की याद आ जाती है जो वार्सा में फ़ौजी अफ़सर है। महीने की हर बीस तारीख़ बीतने पर हम उसे पचास रूबल भेजते हैं। और यही हमारी बातचीत का मुख्य विषय रहता है।

"हां, यह हम पर बोझ तो है ही," मेरी पत्नी उसांस लेती है, "पर जब तक वह ठीक तरह से जम न जाये, उसकी मदद करना हमारा कर्तव्य है। लड़का अजनबियों के साथ रहता है, उसकी तनख़्वाह कम है... पर यदि तुम चाहो तो अगले महीने पचास की जगह चालीस रूबल ही भेज देना, क्या कहते हो?"

दैनिक अनुभव से तो मेरी बीवी को यह मालूम हो जाना चाहिए था कि लगातार बहस से ख़र्च कम नहीं हो जाता, पर मेरी पत्नी के लिए तजुर्बा बेकार सी चीज़ है। वह हर दिन हमारे अफ़सर बेटे की, रोटी की क़ीमत की, जो ईश्वर का धन्यवाद है कि कम हो गयी जबकि शक्कर की क़ीमत दो कोपेक बढ़ गई है, बात करती है, और ऐसे ढंग से जैसे मुझे वह कोई नयी चीज़ बता रही हो।

मैं सब सुनता हूं, यन्त्रवत हां-हूं करता हूं और निस्सन्देह चूंकि रात जागते बीतती है, मेरे दिमाग़ में अजीब से बेमतलब के विचार घुमड़ते हैं। मैं अपनी बीवी की ओर बच्चे की तरह अचम्भे से ताकता रहता हूं। मैं तो ताज्जुब से अपने आपसे सवाल करता हूं कि क्या यह सम्भव है कि यह मोटी, भोंडी, बूढ़ी औरत जिसके चेहरे से रोटी के एक टुकड़े की या ऐसी ही ज़रा-ज़रा-सी बातों की परेशानियां और चिन्ताएं झलकती हैं, जिसकी आंखें क़र्ज़, ग़रीबी की शाश्वत मार में धुंधला गयी हैं, जो सिवा ख़र्च के दूसरी बात करना नहीं जानती, जिसके चेहरे पर तभी मुस्कराहट खेलती है जब बाज़ार में मन्दी आये, यह वही सुकुमार युवती है जिसको मैंने उसकी

प्रखर, स्पष्ट बुद्धि, पवित्र, निश्छल आत्मा के लिए और जैसे कि ओथेल्लो ने डेस्डेमोना को अपने विज्ञान के प्रति "सहानुभूति" रखने के लिए प्रेम किया। क्या यह संभव है कि यह वही मेरी पत्नी वार्या है, जिसने मेरे पुत्र को जन्म दिया?

मैं इस थलथल बुढ़िया के फूले चेहरे को एकटक देखता हूं, उसमें अपनी वार्या को खोजने का प्रयत्न करता हूं पर अतीत का कोई अवशेष नहीं मिलता, सिवा मेरे स्वास्थ्य के प्रति उसकी चिन्ता और मेरी तनख़्वाह को हमारी तनख़्वाह और मेरी टोपी को हमारी टोपी कहने के उसके उस पुराने ढंग के। उसे देखकर मुझे दुख होता है और उसे ज़रा प्रसन्न करने के लिए मैं बातचीत के प्रवाह को रोकता नहीं, मैं तब भी चुप रहता हूं जब वह लोगों की व्यर्थ आलोचना करती है या मुझे खरोंचती है कि मैं प्राइवेट रूप से प्रैक्टिस क्यों नहीं करता, कोई पाठ्यपुस्तक क्यों नहीं छपाता।

हमारी बातचीत हमेशा एक ही ढंग से समाप्त होती है। मेरी पत्नी को यकायक याद आती है कि मैंने अब तक चाय नहीं पी है और वह चौंक पड़ती है।

"मुझे हो क्या गया है?" कुर्सी से उठकर वह कहती है। "समोवार न जाने कब से मेज़ पर रखा है और मैं यहां बैठी बक बक लगाये हूं। न जाने मेरी याददाश्त को क्या हो गया है!"

वह तेज़ी से दरवाज़े की ओर बढ़ती है और दरवाज़े पर रुककर कहती है:

"येगोर की पांच महीने की पगार चढ़ गयी है। तुम्हें मालूम है? कितनी बार मैंने कहा था कि नौकरों की तनख़्वाह चढ़ाना ठीक नहीं! हर महीने दस रूबल देना, पांच महीनों में पचास रूबल देने से कहीं आसान है!"

दरवाज़े से बाहर निकल, वह फिर एक बार रुककर कहती है:

"मुझे लीज़ा बेचारी पर बहुत दया आती है; बेचारी संगीतविद्यालय जाती है; अच्छे सभा-समाज में उठती-बैठती है, पर देखो कपड़े कैसे पहनती है! ऐसे कोट पहन कर सड़क पर निकलना शर्म की बात है। वह किसी और की बेटी होती तो कोई बात नहीं थी, लेकिन हर कोई जानता है कि उसका पिता विख्यात प्रोफ़ेसर है, प्रिवी कौंसिल का मेम्बर है!"

और वह मेरे पद और प्रतिष्ठा पर चोट कर चली जाती है। इस ढंग से हर दिन शुरू होता है और इसी ढंग से बीतता है।

चाय पीते समय मेरी बेटी लीज़ा कमरे में आती है, कोट व टोपी पहने संगीतलिपि लिये संगीतविद्यालय जाने के लिए तैयार। वह बाईस बरस की है पर देखने में कम उम्र मालूम पड़ती है, सुन्दर लड़की है, कुछ कुछ मेरी पत्नी की युवावस्था की झलक उसमें है। वह प्यार से मेरा माथा चूमती है, हाथ चूमती है और कहती है:

"नमस्ते पिता जी! आपकी कैसी तबीअत है?"

जब लीज़ा छोटी थी तो उसे आइस-क्रीम बहुत पसन्द थी और अक्सर मुझे इसी के लिए उसे हलवाई की दुकान में ले जाना पड़ता था। आइस-क्रीम उसके लिए अच्छी चीज़ों का मापदंड था। यदि वह मेरी प्रशंसा करना चाहती तो कहती: "पापा तुम क्रीम के हो।" वह अपनी एक उंगली को पिस्ते की कहती, दूसरी को नींबू की, तीसरी को क्रीम की वग़ैरह। जब वह प्रातःकाल मुझसे मिलने आती तो मैं उसे अपने घुटनों पर बैठाकर उसकी उंगलियां चूमता, उनको अलग अलग नामों से पुकारता: "क्रीम की... पिस्ते की... नींबू की..."

और अब भी मैं पुराने समय की आदत से लीज़ा की उंगलियां चूमता हुआ "पिस्ते की... क्रीम की... नींबू की..." बड़बड़ाता हूं पर वह पुराना असर नहीं होता। मैं स्वयं आइस-क्रीम की तरह ठण्डा हो गया हूं और मुझे शर्म आती है। जब मेरी बेटी मेरे कमरे में आती है, अपने होंठों से मेरा माथा चूमती है तो मैं ऐसे चौंक पड़ता हूं जैसे किसी मक्खी ने मुझे डंक मार दिया हो, बनावटी ढंग से मुस्कराकर अपना मुंह फेर लेता हूं। जब से मैं अनिद्रा से पीड़ित हुआ हूं, दिमाग़ में एक ही ख़्याल चक्कर काटकर मुझे परेशान करता है—मेरी बेटी, मुझ प्रख्यात वृद्ध आदमी को नौकर की तनख़्वाह रुकने पर शर्म से लाल होते देखती है; बराबर देखती है कि छोटे छोटे क़र्ज़ चुकाने की चिन्ता में मैं काम छोड़, कमरे में टहलने लगता हूं। फिर भी वह बिना अपनी मां को कहे मेरे पास आकर कहती नहीं: "पापा मेरी घड़ी ले लो, मेरे कंगने, कनफूल, मेरी फ़्राकें सब ही गिरवी रख दो, तुम्हें रुपये की ज़रूरत है..." वह देखती है किस प्रकार मैं और उसकी मां, झूठी लज्जा के वश में आकर दूसरों से अपनी ग़रीबी छिपाना चाहते हैं, और फिर भी वह संगीत सीखने का ख़र्चीला सुख नहीं छोड़ सकती। ईश्वर न करें कि मैं उसकी घड़ी और कंगने या उसका बलिदान स्वीकार करूं—मैं यह कभी नहीं करना चाहता।

साथ साथ मुझे अपने बेटे का ख़्याल आता है, जो वार्सा में अफ़सर है। वह बुद्धिमान है, ईमानदार है, संतुलित है, पर यह मेरे लिए काफ़ी नहीं है। मुझे लगता है कि यदि मेरा बूढ़ा पिता होता और यदि मैं जानता होता कि कुछ क्षण ऐसे हैं जब वह अपनी ग़रीबी से शर्मसार हो उठता है तो अपनी अफ़सरी की शान छोड़ मज़दूरी करने लगता। अपने बच्चों के बारे में मेरे ऐसे विचार मेरे जीवन को ज़हर बनाये दे रहे हैं। इससे लाभ क्या है? संकीर्ण विचारों का कटु व्यक्ति ही साधारण लोगों के ख़िलाफ़ शिकायत की भावना रखता है कि वे महान नहीं हैं। पर बहुत हो चुका इस सब के बारे में।

पौने दस बजे मुझे अपने प्यारे विद्यार्थियों को पढ़ाने जाना होता है। मैं कपड़े पहन उस सड़क पर चल देता हूं, जिससे पिछले तीस वर्षों से मैं परिचित हूं, जिसका मेरी नज़र में पूरा इतिहास है। आज जहां भूरी बड़ी इमारत की पहली मंज़िल में दवाख़ाना है वहीं एक ज़माने में शराब की एक दुकान थी और उसी में बैठे मैंने अपने थीसिस का नक़शा बनाया था और वार्या को पहला प्रेमपत्र लिखा था। वह पत्र पेंसिल से एक काग़ज़ पर लिखा था जिसपर लैटिन भाषा में छपा हुआ था "बीमारी का इतिहास और सामने जो परचूनिये की दुकान है, वहां उस समय उसका दूसरा मालिक एक यहूदी था जिससे मैं उधार सिगरेट ख़रीदता था; बाद में एक मोटी औरत ने वह दुकान ले ली जो विद्यार्थियों के प्रति विशेष प्रेम रखती थी, क्योंकि जैसे वह कहती थी: "उन सबके घर पर माताएं हैं"। आजकल इस दुकान का मालिक लाल बालों वाला व्यवसायी है जो ग्राहकों के प्रति बिल्कुल लापरवाह है और तांबे के चायदान से अपने लिए चाय ढालता रहता है। अब मैं विश्वविद्यालय के उदास फाटक पर आ पहुंचता हूं जिसकी बहुत दिन पहले मरम्मत होनी चाहिए थी। भेड़ की खाल का कोट पहने अनमना चौकीदार, बरफ़ के ढेर... झाड़ू... यक़ीनन ऐसे फाटक उन लड़कों पर प्रेरणापूर्ण प्रभाव नहीं डाल पाते जो नये ही देहात से आते हैं और सोचते हैं कि विज्ञान-मन्दिर वास्तव में कोई मन्दिर है। विश्वविद्यालय की इमारतों की ख़स्ता हालत, उसके गलियारों का अंधेरा, धुएं से काली दीवारें, धुंधली और नाकाफ़ी रोशनीवाले कमरे, बेंचों, ज़ीने व बाहरी कमरे की दयनीय दशा – शायद रूसी निराशावाद के इतिहास में, उसकी चेतना के स्रोतों में अपना ख़ास रुतबा रखती है... और यह

हमारा पार्क है। जब मैं विद्यार्थी था तब से अब तक इसमें कोई अन्तर नहीं आया। मुझे यह पसन्द नहीं आता। कहीं ज़्यादा बेहतर होता अगर यहां ऊंचे चीड़ के वृक्ष और मज़बूत बलूत लगे होते, बजाय इसके कि क्षय-ग्रस्त पेड़, पीले पीले बबूल और बिखरी हुई बकाइन की तराशी हुई झाड़ियां होतीं। छात्रों के सम्मुख, जिनके मस्तिष्क पर वातावरण का विशेष प्रभाव पड़ता है, पढ़ाई की जगह हर समय ऐसी वस्तुएं हों जो ऊंची हों, शक्तिशाली हों और सुन्दर हों... उन्हें बीमार वृक्षों, खिड़की के टूटे शीशों, मटमैली दीवारों, फटे मोमजामे से मढ़े दरवाज़ों से ईश्वर बचाये।

जैसे ही मैं इमारत के उस हिस्से के पास पहुंचा हूं जहां मैं काम करता हूं, दरवाज़ा खट से खुल जाता है और मेरा एक पुराना सहयोगी, दरबान मेरा स्वागत करता है। उसका और मेरा जन्म एक ही वर्ष हुआ था, नाम भी एक सा ही – निकोलाई है। मेरे दरवाज़े में दाख़िल होते ही वह घुरघुराते हुए कहता है:

"बड़ी ठण्ड है, हुज़ूर!"

या अगर मेरा कोट भीगा हो, तो:

"बारिश हो रही है, हुज़ूर!"

फिर वह मेरे आगे दौड़ उन सब दरवाज़ों को खोलता है जिनमें से मुझे गुज़रना है। जब मैं अपने कक्ष में पहुंचता हूं, तो वह सावधानी से मेरा कोट उतारता है और हमेशा विश्वविद्यालय की कुछ न कुछ ख़बरें दिया करता है। पहरुओं और दरबानों की घनिष्ठ मैत्री के फलस्वरूप उसको चारों फ़ैकल्टियों, दफ़्तर, कुलपति के कक्ष और पुस्तकालय में क्या हो रहा है, सब मालूम रहता है। ऐसा कुछ भी नहीं जो उसे मालूम न हो! जब कभी कुलपति या किसी डीन के त्यागपत्र की बात उठती है मुझे उसकी जवान पहरेदारों से बातचीत सुनाई पड़ती है कि इन जगहों के लिए किस उम्मीदवार के लिए जाने की सबसे अधिक सम्भावना है। किस उम्मीदवार को मंत्री की स्वीकृति प्राप्त नहीं होगी, कौन ख़ुद ही इसे लेने से इनकार कर देगा, बाद में इस सिलसिले में वह अजीबोग़रीब ब्यौरे बताता है कि दफ़्तर में कोई रहस्यमय दस्तावेज़ आया है और मंत्री व विश्वविद्यालय के संरक्षक की गुप्त बातचीत हुई, आदि, आदि। ब्यौरे की इन बातों के अलावा उसका कहा आम तौर से सही भी उतरता है। उम्मीदवारों का वर्णन वह बिल्कुल विलक्षण ढंग से करता है, लेकिन सही। अगर आपको यह जानने

की आवश्यकता है कि फ़लां आदमी ने कब अपना थीसिस पेश किया था या विश्वविद्यालय में नौकरी पायी या इस्तीफ़ा दिया या मरा तो आपको केवल इस सिपाही की असाधारण याददाश्त का सहारा लेना काफ़ी होगा ; वह आपको केवल वर्ष, महीना या तिथि बताकर ही सन्तोष नहीं करेगा बल्कि आपको यह भी बतायेगा कि अमुक घटना किन परिस्थितियों में हुई थी। इतनी तफ़सील से याद कर सकता है सिर्फ़ आशिक।

वह विश्वविद्यालय की दंतकथाओं का रक्षक है। उसने अपने पहले आये और गये दरबानों से विश्वविद्यालय के जीवन के बारे में क़िस्सों का एक ख़ज़ाना विरासत में पाया है। इस संचित पूंजी में उसने भी अपना योग दिया है, अपनी नौकरी के दौरान में सम्मिलित क़िस्सों द्वारा ; अगर आप चाहें तो वह आपको बहुत-सी छोटी-बड़ी दोनों तरह की कहानियां सुनाया करेगा। वह आपको ऐसे असाधारण ज्ञानियों के बारे में बतायेगा जो सब कुछ जानते थे, ऐसे श्रमिकों के बारे में बतायेगा जो हफ़्तों बिना सोये काम करते थे, ऐसे असंख्य लोगों के बारे में बतायेगा जो विज्ञान पर शहीद हो गये या विज्ञान का शिकार हो गये। क़िस्सों में भले की हमेशा बुरे पर विजय होती है, कमज़ोर सदैव ताक़तवर से बाज़ी जीतता है, ज्ञानी हमेशा मूर्ख पर हावी होता है, नम्र घमण्डी से ऊपर उठ जाता है और जवान बूढ़ों पर... इन सभी क़िस्सों व अचम्भों को सच मान लेना ज़रूरी नहीं है। पर जब वे आपके दिमाग़ की छलनी से छनकर निकलते हैं तब तथ्य की कुछ बातें रह ही जाती हैं—हमारी उज्ज्वल परम्पराएं और उन सच्चे बड़े लोगों के नाम जो सर्वमान्य हैं।

हमारे समाज में विज्ञान की दुनिया की जो भी जानकारी है, वह उन भुलक्कड़पन के असाधारण क़िस्सों तक सीमित है जो बूढ़े प्रोफ़ेसरों से जुड़े हैं, और कुछ उन चुटकीली पुरमज़ाक़ बातों तक जो ग्रूबेर, या बाबूख़िन या मेरी कहकर बतायी जाती हैं। सुसंस्कृत समाज के लिए यह काफ़ी नहीं है। यदि समाज विज्ञान, वैज्ञानिकों और विद्यार्थियों से सच्चा प्रेम करता जैसे निकोलाई करता है तो हमारा साहित्य बहुत पहले से क़िस्सों, कहानियों व खण्ड काव्यों से अलंकृत हो उठता जिनका दुर्भाग्यवश अभी अभाव है।

ख़बरें बताने के पश्चात निकोलाई के चेहरे पर गम्भीरता छा जाती है और हम काम की बातें आरम्भ कर देते हैं। अगर कोई बाहरी व्यक्ति निकोलाई को वैज्ञानिक भाषा का इस सुगमता से प्रयोग करते सुने तो

निश्चित ही वह उसे फ़ौजी पोशाक पहननेवाला एक वैज्ञानिक मान ले। पर, असलियत यह है कि विश्वविद्यालय के चौकीदारों के बृहत् ज्ञान की चर्चा में अतिशयोक्ति बहुत होती है। यह सच है कि निकोलाई सौ से ऊपर लैटिन शब्द जानता है, मनुष्य के अस्थिपंजर को ठीक ढंग से तरतीबवार रख सकता है, कभी कभी वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए सामान ठीक से इकट्ठा कर सकता है। लम्बे उद्धरण देकर छात्रों का मनोरंजन कर सकता है, पर ऐसी मामूली चीज़ें भी, जैसे उदाहरण के लिए, शरीर का रक्तसंचार सम्बन्धी सिद्धांत, आज भी उसके लिए उतनी ही गूढ़ हैं, जैसे बीस बरस पहले थीं।

कक्ष में किसी किताब या घोल पर झुका बैठा शव-विच्छेदक प्योत्र इग्नात्येविच है। मेहनती, निरभिमानी पर बहुत मामूली बुद्धि का पैंतीस वर्ष का व्यक्ति है, जो अभी से गंजा हो रहा है और जिसके तोंद निकलने लगी है। वह सवेरे से रात तक काम में जुटा रहता है, अथक रूप से बराबर पढ़ा करता है, और जो कुछ भी पढ़ता है, उसे याद रहता है। इससे मेरे लिए तो वह बहुत ही उपयोगी व्यक्ति है, सोने से तौलने योग्य। पर दूसरे विषयों में वह बिल्कुल लद्दू घोड़ा, या यूं कहें कि पढ़ा-लिखा बुद्धू है। प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति और इंसानी लद्दू घोड़े में फ़र्क़ यह है कि उसका दृष्टिकोण संकुचित है और अपनी विशेषज्ञता तक सीमित है। अपनी विशेषज्ञता के क्षेत्र के बाहर वह बच्चों की तरह सरल व सीधा है। मुझे याद है कि एक दिन सवेरे मैं जब कक्ष पहुंचा तो मैंने कहा:

"कैसे दुर्भाग्य की बात है! ख़बर है कि स्कोबेलेव की मृत्यु हो गयी।"

निकोलाई ने तो सलीब का चिन्ह अपने सीने पर बनाया पर प्योत्र इग्नात्येविच मेरी तरफ़ मुड़कर पूछने लगा:

"स्कोबेलेव कौन हैं?"

एक बार पहले भी जब मैंने उसे बताया कि प्रोफ़ेसर पेरोव मर गये तब भी उसने पूछा था:

"उसका विषय क्या था?"

मैं सोचा करता हूं कि प्रख्यात इतालवी गायिका पात्ति आकर उसके कान में गाया करे, चीनियों का टिड्डीदल रूस पर हमला बोल दे, भूकम्प आ जाये, पर उसके कान पर जूं तक न रेंगेगी और वह एक आंख बन्द किये अपनी ख़ुर्दबीन में घूरता रहेगा। संक्षेप में, उसके लिए सुन्दर से

सुन्दर स्त्री का भी कोई महत्व नहीं था। यह ठूंठ अपनी बीवी के साथ सोता कैसे है, यह जानने के लिए मैं बहुत ख़र्च करने को तैयार हो जाता।

उसका दूसरा लक्षण है, विज्ञान के, विशेषकर उन सब बातों के जो जर्मनों ने लिखी हैं सच्चाईपूर्ण और अचूक होने में उसकी अटूट और अगाध निष्ठा। उसमें आत्मविश्वास है और अपने घोलों पर भरोसा है, जीवन का लक्ष्य क्या होना चाहिए यह उसे मालूम है और कुशाग्र बुद्धिवालों के बाल जिन चिन्ताओं, संदेहों और निराशाओं से सफ़ेद हो जाते हैं, उनसे वह बिल्कुल बचा हुआ है। विशेषज्ञों की सम्मतियों को वह श्रद्धा की दृष्टि से देखता है और स्वतंत्र विचारों की उसे आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती। उसका विश्वास डिगा देना कठिन है, उससे बहस करना असम्भव है। ऐसे आदमी से कोई बहस करे भी कैसे जिसका अडिग विश्वास है कि चिकित्सा विज्ञान, सभी विज्ञानों से ज़्यादा अच्छा है; डाक्टर – दुनिया के सब से अच्छे लोग होते हैं और डाक्टरी परम्पराएं दुनिया की सब से अच्छी परम्पराएं हैं। डाक्टरी की परम्पराओं में जो अकेली पुरानी बात बाक़ी बची है, वह है डाक्टरों का अब भी सफ़ेद टाई लगाना। वैज्ञानिक व साधारणतः पढ़े-लिखे लोग श्रद्धा करते हैं तो पूरे विश्वविद्यालय की परम्पराओं की, चिकित्सा, क़ानून या ऐसे किसी एक विभाग की परम्पराओं की नहीं, पर प्योत्र इग्नात्येविच को आप यह बात नहीं मनवा सकते, वह इस पर ताक़यामत बहस करने को तैयार होगा।

उसके भविष्य की मैं स्पष्ट कल्पना कर सकता हूं। अपने जीवन में वह सैकड़ों घोल जो राई रत्ती से ठीक होंगे, तैयार करेंगे, बहुत से रूखे पर प्रशंसनीय निबंध लिखेगा, क़रीब एक दर्जन किताबों के बिल्कुल ठीक अनुवाद करेगा, पर ऐसा कुछ वह कभी नहीं करेगा जो साधारण न हो। साधारण से ऊपर उठने के लिए कल्पना, अन्वेषक बुद्धि, अन्तर-ज्ञान चाहिए जिनका प्योत्र इग्नात्येविच में सर्वथा अभाव है। संक्षेप में कहें तो वह विज्ञान का मालिक नहीं, कामगार है।

वह, निकोलाई और मैं, मन्द स्वर में बोलते हैं। हम लोग कुछ घबराये से रहते हैं। इस बात का ज्ञान कि दरवाज़े के उस तरफ़ श्रोता समुद्र की भांति मर्मर स्वरों में बोल रहे हैं, हृदय में एक विशेष भाव उत्पन्न कर देता है। तीस वर्ष का अभ्यास भी मुझे इस अनुभूति का आदी नहीं बना सका है और प्रति दिन सबेरे मुझे इसका अनुभव होता है। मैं

घबराया हुआ अपने सूट के बटन बन्द करता हूं, निकोलाई से कोई अनावश्यक प्रश्न करता हूं, तेवर दिखाता हूं... कोई सोचेगा कि मैं डर जाता हूं, लेकिन यह भीरुता नहीं है, यह कोई भिन्न भावना है जिसका मैं न वर्णन ही कर सकता हूं और न जिसे मैं कोई नाम ही दे सकता हूं।

बिना जरूरत मैं घड़ी देखता हूं और कहता हूं:

"अच्छा, समय हो गया।"

हम लोग इस प्रकार चलते हैं – आगे निकोलाई, घोल, नक़्शे आदि प्रदर्शनार्थ लेकर चलता है, फिर मैं होता हूं और मेरे पीछे नम्रतापूर्वक सिर झुकाये वह लद्दू घोड़ा होता है। या, जब कभी ज़रूरी होता है, एक स्ट्रेचर में लाश जाती है, फिर निकोलाई होता है, फिर वही तरतीब। मेरे पहुंचते ही छात्र खड़े हो जाते हैं, समुद्र की गम्भीर मर्मर अकस्मात् बन्द हो जाती है। गम्भीर शान्ति छा जाती है।

मैं जानता हूं कि मैं किस विषय पर बोलूंगा, पर यह नहीं जानता कि व्याख्यान शुरू कैसे करूंगा, कैसे बोलूंगा, कैसे अन्त करूंगा। मेरे दिमाग़ में एक भी जुमला नहीं है। लेकिन जैसे ही ढलावदार वृत्ताकार व्याख्यान-हाल में लगी कुरसियों में अपने सामने बैठे श्रोताओं पर निगाह डालता हूं और पुराना, पिटा हुआ जुमला कहता हूं: "पिछली बार हम... पर जाकर रुके थे", जुमले कभी न ख़त्म होनेवाले सिलसिले में आने लगते हैं और मैं बोलता चलता हूं। मैं तेज़ी से, उत्साह के साथ बोलता हूं और लगता है कि कोई ऐसी शक्ति नहीं जो भाषण के प्रवाह को रोक सके। बढ़िया व्याख्यान देने के लिए, अर्थात् श्रोताओं का ध्यान आकर्षित किये रहने और उन्हें लाभान्वित करने के लिए प्रतिभा के अलावा अभ्यास व अनुभव भी चाहिए, वक्ता को अपनी और अपने श्रोताओं की योग्यता का पूरा ज्ञान होना चाहिए और विषय की पूरी जानकारी होनी चाहिए। इन सब के अलावा उसमें एक तरह का छल या सयानापन भी होना चाहिए, और उसे एक क्षण के लिए भी अपने श्रोताओं से निगाह न हटानी चाहिए।

संगीत में, किसी अच्छे आर्केस्ट्रा-संचालक को संगीतकार का आशय समझाने के लिए दर्जनों काम एकसाथ करने होते हैं – संगीतलिपि पढ़ना, अपना बेंत हिलाना, गवैये पर निगाह रखना, अब ढोल और अब तुरही बजानेवाले की ओर संकेत करना, आदि, आदि। व्याख्यान करते समय यही दशा मेरी होती है। मेरे सामने डेढ़ सौ चेहरे होते हैं, सब भिन्न,

तीन सौ आंखें मेरे चेहरे की ओर ताकती होती हैं। इस शतशिर दानव को जीतना मेरा लक्ष्य होता है। जब तक मैं भाषण देते समय सचेत रहता हूं कि यह दैत्य कितना ध्यानमग्न है और उसमें कितनी तर्क बुद्धि है, मेरा उसपर नियन्त्रण रहता है। मेरा दूसरा शत्रु मेरे भीतर है। यह शत्रु नाना आकारों, परिघटनाओं, क़ानूनों की अनन्त विविधता तथा मेरे व दूसरों के विचारों की भीड़ में छिपा रहता है। सामग्री के इस विशाल भण्डार से मुझे बराबर और कुशलतापूर्वक वह खोज निकालना पड़ता है जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक हो, और अपने शब्दों के प्रवाह के साथ विचार उस रूप में पेश करते रहने पड़ते हैं जो इस दैत्य के मस्तिष्क में सबसे अधिक आसानी से प्रवेश पा सकें, उसमें दिलचस्पी पैदा कर सकें, साथ ही मुझे इस बात का भी ध्यान रखना होता है कि मेरे विचार उस तरतीब से व्यक्त न हो जिसमें वे मेरे दिमाग़ में आते हैं, बल्कि, उस तरतीब से हों जिनसे वह चित्र बने जो बनाना मेरा इष्ट है। साथ ही मुझे संस्कृत और सुरुचिपूर्ण ढंग से बोलने का प्रयास करना होता है, परिभाषाएं संक्षिप्त और ठीक सटीक देनी होती हैं, अपने वाक्य इतने सरल व सुन्दर रखने होते हैं, जितना कि सम्भव हो। हर क्षण मुझे संयम से काम लेना पड़ता है और याद रखना होता है कि मेरे पास कुल एक घण्टा और चालीस मिनट हैं। संक्षेप में, मुझे अनेक काम एकसाथ करने होते हैं। मुझे वैज्ञानिक, वक्ता और अध्यापक तीनों एकसाथ बनना होता है; और ईश्वर न करे कि मेरे भीतर का वक्ता, अध्यापक व वैज्ञानिक पर हावी हो जाये या अध्यापक और वैज्ञानिक वक्ता पर।

मैं पन्द्रह मिनट तक या शायद आध घण्टे तक बोलता हूं और देखता हूं कि छात्र छत की ओर देखने लगे या प्योत्र इग्नात्येविच की ओर ताक रहे हैं, कोई अपना रूमाल जेब से निकाल रहा है, कोई अपनी कुर्सी पर आसन बदल रहा है, कोई अपने ही विचारों में मग्न मुस्करा रहा है... इसका अर्थ यह है कि उनका चित्त अब लग नहीं रहा। इसके लिए कोई कार्रवाई होनी चाहिए। मैं पहले ही मौक़े पर कोई मज़ाक़ कर देता हूं, किसी श्लेष का प्रयोग कर देता हूं और सभी डेढ़ सौ चेहरे गहरी मुस्कराहट से फैल जाते हैं, उनकी आंखें चमक उठती हैं, एक क्षण के लिए समुद्र की मर्मर ध्वनि मुखर हो उठती है... मैं भी हंसी में शामिल हो जाता हूं। उनका ध्यान फिर केन्द्रित हो जाता है और मैं आगे बढ़ता हूं।

किसी भी मनोरंजन, खेलकूद, वाद-विवाद ग्रादि में मुझे कभी इतना ग्रानन्द नहीं ग्राया जितना व्याख्यान देने में ग्राता है। भाषण करते समय ही मैं पूरी उमंग से रस विभोर हो पाता हूं, तभी मैं जान पाता हूं कि प्रेरणा कवियों की कल्पना नहीं, बल्कि उसका वास्तव में ग्रस्तित्व है। ग्रपनी प्रणय-लीलाग्रों के बाद हरकुलीज़ को भी ऐसी सुन्दर क्लान्ति न होती होगी जैसी मधुर थकावट मुझे भाषण के बाद होती है।

ऐसा हुग्रा करता था पहले। ग्रब भाषण करना मेरे लिए एक यातना के सिवा कुछ नहीं है। ग्राधा घण्टा नहीं हो पाता ग्रौर मुझे टांगों ग्रौर कन्धों में बेहद कमज़ोरी मालूम होने लगती है। मैं बैठ जाता हूं, पर बैठकर व्याख्यान देने की मुझे ग्रादत नहीं है। ग्रगले क्षण ही मैं उठ खड़ा होता हूं ग्रौर खड़े खड़े भाषण जारी रखता हूं, फिर बैठ जाता हूं। मेरा गला सूख जाता है, ग्रावाज़ भारी हो जाती है, सिर चकराने लगता है... ग्रपनी हालत ग्रपने श्रोताग्रों से छिपाने के लिए मैं बारबार पानी का घूंट लेता हूं, खांसता हूं, नाक साफ़ करता हूं, मानो ज़ुकाम से दिक़्क़त हो रही हो, यूं ही मज़ाक़ करता हूं ग्रौर ग्रन्त में समय से पहले ग्रन्तरविराम कर देता हूं। पर मेरी प्रमुख भावना शर्म की होती है।

मेरी ग्रंतरात्मा ग्रौर दिमाग़ मुझसे कहते हैं कि मेरे लिए बेहतर यही होगा कि मैं लड़कों को ग्रंतिम व्याख्यान दूं, ग्रंतिम बातें बता दूं, उन्हें ग्राशीर्वाद दूं ग्रौर ग्रपना पद किसी दूसरे ऐसे व्यक्ति के लिए रिक्त कर दूं जो उम्र में कम हो, मुझसे ज्यादा मज़बूत हो। किन्तु, भगवान माफ़ करे! मुझमें ग्रपनी ग्रंतरात्मा की ग्रावाज़ सुनने का साहस नहीं है।

दुर्भाग्यवश, मैं न दार्शनिक हूं ग्रौर न धर्मज्ञानी। मैं बख़ूबी जानता हूं कि मुझे छः महीने से ज़्यादा ज़िन्दा नहीं रहना है। सोचा जा सकता है कि मुझे पारलौकिक चिन्तन, उस मृत्युनिद्रा में ग्रानेवाले स्वप्नों में व्यस्त होना चाहिए। पर जो भी कारण हो, मेरी ग्रात्मा उन समस्याग्रों पर विचार करने के लिए तैयार नहीं यद्यपि मेरा दिमाग़ कहता है कि ये समस्याएं ग्रधिक महत्वपूर्ण हैं। मृत्युद्वार पर खड़े ग्रब भी मुझे जिस एक चीज़ में दिलचस्पी है, वह वही है जिससे बीस – तीस वर्ष पहले दिलचस्पी थी, ग्रर्थात् विज्ञान। मुझे विश्वास है कि जब मैं ग्राख़िरी सांस ले रहा हूंगा, तब भी मेरी निष्ठा यही होगी कि मनुष्य के जीवन में सबसे ग्रधिक महत्त्वपूर्ण, सबसे ग्रधिक सुन्दर व परमावश्यक वस्तु विज्ञान ही है, कि प्रेम

का सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन विज्ञान में ही होता रहा है और होता रहेगा, कि विज्ञान द्वारा ही मनुष्य स्वयं अपने पर और प्रकृति पर विजय पायेगा। यह विश्वास बुनियादी तौर पर ग़लत और भोला हो सकता है, पर यदि मेरा ऐसा ही विश्वास है तो मैं क्या करूं? मैं अपना यह विश्वास मिटा नहीं सकता।

पर मुख्य बात यह नहीं है। मैं सिर्फ़ अपनी कमज़ोरी के लिए रिआयत चाहता हूं और चाहता हूं कि लोग समझ लें कि जिस व्यक्ति को विश्व-सृष्टि के अंतिम लक्ष्य में उतनी दिलचस्पी नहीं है जितनी गूदे के विकास के भविष्य की, उसे प्रोफ़ेसरी और छात्रों से अलग खींचकर ज़िन्दा ही क़ब्र में दफ़न कर देने के बराबर होगा।

मेरे अनिद्रा रोग और तज्जनित निर्बलता से मेरे कठिन संघर्ष ने एक अजब बात को जन्म दिया है। भाषण करते करते मेरा गला रुंध जाता है, मेरी पलकों में खुजली होने लगती है और मुझे विलक्षण और अति प्रबल इच्छा हाथ उठाकर ज़ोर ज़ोर से शिकायत करने की होती है। मैं ज़ोर से चिल्लाना चाहता हूं कि प्रारब्ध ने मेरे जैसे प्रख्यात व्यक्ति को प्राणदण्ड दे दिया है, कि कोई छः महीने में मेरी जगह कोई दूसरा मेरे श्रोताओं को प्रभावित करता होगा। मैं चिल्लाना चाहता हूं कि मुझे ज़हर दिया गया है। ऐसे नये विचार, जो अब तक मेरे लिए बिल्कुल अनजाने थे मेरे जीवन के अंतिम दिनों को विषाक्त बना रहे हैं, मेरे दिमाग़ में मच्छड़ों की तरह काटते रहते हैं। ऐसे मौक़ों पर मैं अपनी स्थिति से इतना आतंकित हो उठता हूं कि मैं चाहता हूं कि मेरे श्रोता भी आतंकित हो उठें, अपनी कुरसियों से उछलकर डर के मारे चिल्लाते हुए दरवाज़े की ओर भागने लगें।

ऐसा क्षण बरदाश्त करना कठिन होता है।

२

भाषण के उपरान्त मैं घर पर रहकर काम करता हूं। मैं पत्रिकाएं या थीसिस पढ़ता हूं या अपने अगले व्याख्यान की तैयारी करता हूं, कभी कभी मैं थोड़ा बहुत लिखता हूं। मैं रुक रुककर काम करता हूं क्योंकि मिलने-जुलनेवाले आते रहते हैं।

दरवाज़े की घण्टी बजती है। कोई सहयोगी किसी काम की बात में

मेरी सलाह लेने आता है। टोप और छड़ी हाथ में लिये और ये दोनों चीज़ें मेरी तरफ़ बढ़ाते हुए वह कहता है :

"एक मिनट के लिए मैं आया हूं, सिर्फ़ एक मिनट के लिए! आप उठें नहीं, मैं सिर्फ़ दो बातें करके चला जाऊंगा!"

असाधारण शिष्टता के प्रदर्शन के साथ, एक दूसरे से भेंट पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए हम बातचीत शुरू करते हैं। मैं उसे आराम-कुरसी पर बैठाने की कोशिश करता हूं और वह मुझे बैठा रहने देने की कोशिश करता है। साथ ही हम लोग एक दूसरे की कमर को सावधानी से थपथपाते हैं, सूट के बटन छूते हैं, मानो एक दूसरे को टटोल रहे हों और उंगली जल जाने से बचा रहे हों। हालांकि मज़ाक़ की कोई बात कही नहीं गयी होती, हम दोनों हंसते हैं। बैठने के बाद एक दूसरे की ओर झुककर हम लोग मन्द स्वर में बातचीत शुरू करते हैं। हमारे सम्बन्ध चाहे जितने घनिष्ठ हों हम चीनियों जैसी शिष्टताचारपूर्ण और सजावटवाली भाषा बोलने की मजबूरी महसूस करते हैं : "आपने बिल्कुल ठीक ही फ़र्माया" या "जैसा कि मुझे बताने का सौभाग्य प्राप्त हुआ" आदि कहने व अनुपयुक्त होते हुए भी एक दूसरे के मज़ाक़ों पर हंसने की मजबूरी। काम की बात ख़त्म होने पर मेरा दोस्त यकायक उठ खड़ा होता है और मेरी मेज़ की ओर अपने टोप से इशारा करते हुए, विदा लेने को उद्यत होता है। हम फिर एक दूसरे को टटोलते और हंसते हैं। मैं ड्योढ़ी तक उसके साथ आता हूं जहां उसे फ़र का ओवरकोट पहनने में मदद देता हूं और वह बराबर इस सम्मान के लिए अपनी अयोग्यता बताता हुआ ओवरकोट अपने आप पहनने की कोशिश करता है। फिर जब येगोर उसके लिए सामने का दरवाज़ा खोलता है, तो मेरा दोस्त मुझे यक़ीन दिलाता है कि मुझे ठंड लग जायेगी और मैं बराबर उसके साथ बाहर निकलने की तैयारी का बहाना करता हूं। आख़िर, जब मैं अपने कक्ष में वापस लौटता हूं तो मेरे चेहरे पर मुस्कराहट जमी रहती है, जैसे यह हटेगी ही नहीं।

थोड़ी देर बाद फिर घण्टी बजती है। कोई ड्योढ़ी में आता है और कोट उतारने और गला साफ़ करने में बहुत देर लगाता है। येगोर आकर बताता है कि कोई छात्र मुझसे मिलना चाहता है। मैं कहता हूं : "उसे भीतर आने दो।" कुछ ही क्षण में एक हंसमुख नवयुवक मेरे कमरे में आता है। क़रीब एक साल से हमारे व उसके सम्बन्ध कुछ खिंचे से रहे

हैं। मेरी परीक्षाओं में वह बिल्कुल कच्चा उतरता है और मैं उसे सबसे कम नम्बर देता हूं। हर वर्ष लगभग सात नवयुवक ऐसे होते हैं, जिन्हें छात्रों की भाषा में मैं लथेड़ डालता हूं या फ़ेल कर देता हूं। जो छात्र परीक्षा में बीमारी या अयोग्यता के कारण फ़ेल होते हैं, वे अपना दुर्भाग्य चुपचाप बरदाश्त कर लेते हैं और मुझसे सौदा करने नहीं आते। सिर्फ़ जिंदादिल, लापरवाह लोग ही मुझसे मोलभाव करने की कोशिश करते हैं जिनकी भूख और ओपेरा में हाज़िरी में अकेला व्याघात परीक्षा में फ़ेल होने से आता है। पहली तरह के लोगों से मैं नरमी से पेश आता हूं, पर दूसरी तरह के लोगों को मैं साल भर बराबर बेरहमी से लथेड़ता रहता हूं।

अभ्यागत से मैं कहता हूं: "बैठ जाओ! तो क्या कहना है?"

"प्रोफ़ेसर, आपको कष्ट देने के लिए मैं क्षमा चाहता हूं," वह हकलाता तुतलाता, दूसरी ओर ताकता हुआ कहता है, "मैं आपको कष्ट देने कि हिम्मत न करता, पर... मैं पांच बार आपकी परीक्षा में बैठा हूं, और... फिर फ़ेल हो गया। कृपा कर इस बार मुझे पास कर दें, क्योंकि..."

अपने पक्ष में काहिल लोग हमेशा एक ही तर्क पेश करते हैं – दूसरी सभी परीक्षाओं में वे अच्छे नम्बरों से पास हुए हैं और सिर्फ़ मेरी परीक्षा में फ़ेल हुए हैं और यह और भी ज्यादा ताज्जुब की बात है क्योंकि उन्होंने बहुत लगन से मेरा विषय पढ़ा था और उसका उन्हें पूर्ण ज्ञान है। अगर वे फ़ेल हो गये तो किसी बेबूझ ग़लतफ़हमी की वजह से।

मैं अपने अतिथि से कहता हूं: "मेरे दोस्त! मुझे अफ़सोस है कि मैं तुम्हें पास नहीं कर सकता। जाकर फिर से पढ़ो और तब मेरे पास आओ। तब देखा जायेगा।"

थोड़ी देर मौन रहता है। विज्ञान से ज्यादा बीयर और ओपेरा में दिलचस्पी रखनेवाले छात्र को कुछ परेशान करने में मुझे मज़ा आता है और गहरी सांस लेकर मैं कहता हूं:

"मेरी राय में तो, तुम्हारे लिए अब बेहतर यही होगा कि तुम चिकित्सा विज्ञान की पढ़ाई ही छोड़ दो। अगर अपनी योग्यता के बावजूद तुम इम्तिहान पास नहीं कर सकते तो इसकी सिर्फ़ यह वजह हो सकती है कि तुम्हें न तो डाक्टर बनने की इच्छा है और न तुममें उसके लिए आवश्यक अन्तःप्रवृत्ति ही है।"

ज़िंदादिल व्यक्ति का मुंह लटक आता है। घबराहट भरी हंसी के साथ वह कहता है: "मुझे माफ़ करें, प्रोफ़ेसर, पर मेरे लिए यह बड़ी अजब बात होगी, पांच वर्ष तक पढ़ने के बाद अकस्मात... छोड़ दूं!"

"हां बिल्कुल! ऐसे पेशे में ज़िन्दगी बिताने से जिसमें तुम्हारी रुचि न हो, पांच साल बरबाद करना कहीं ज़्यादा अच्छा है।"

पर अगले ही क्षण मुझे उस पर रहम आ जाता है और मैं कहता हूं: "ख़ैर, अपने बारे में तुम ख़ुद सबसे ज़्यादा समझ सकते हो। जाओ और थोड़ा और पढ़ो, तब मेरे पास आना।"

काहिल खोखली आवाज़ में पूछता है: "कब?"

"जब तुम चाहो। चाहो तो कल ही।"

उसकी भली आंखों का सन्देश मैं साफ़ पढ़ सकता हूं: "मैं आ सकता हूं पर तुम फिर फ़ेल कर दोगे, बेरहम जानवर!"

मैं अपनी बात जारी रखता हूं: "यह ज़रूर है कि मेरे इम्तिहान में पन्द्रह बार बैठ लेने से तुम्हारी योग्यता नहीं बढ़ेगी पर इससे तुम्हारी इच्छाशक्ति शायद मज़बूत हो जाये। यही क्या कम है?"

फिर सन्नाटा हो जाता है। मैं खड़ा हो जाता हूं और अपने मेहमान के जाने का इन्तज़ार करने लगता हूं, पर वह वहीं सोचता खिड़की की ओर ताकता अपनी दाढ़ी उंगली से सुलझाता हुआ खड़ा रहता है। मैं ऊबने लगता हूं।

ज़िंदादिल व्यक्ति की आवाज़ मधुर और पकी हुई है, उसकी आंखों से कुशाग्रता और हंसोड़ स्वभाव प्रकट होता है, आत्मतुष्टि की उसकी मुद्रा बहुधा बीयर पीने और सोफ़े पर पड़े आराम करने से कुछ धुंधला गयी है। इसमें सन्देह नहीं कि ओपेरा, अपनी प्रेमलीलाओं और अपने साथियों के बारे में जिनसे उसका लगाव बहुत गहरा है, वह बहुत-सी दिलचस्प बातें बता सकता है, पर दुर्भाग्यवश ऐसी बातों की चर्चा हमारे बीच होती नहीं। लेकिन मैं उसकी बातें बख़ूशी सुनूं।

"प्रोफ़ेसर! मैं आपको विश्वास दिलाता हूं, मैं ईमान की क़सम खा सकता हूं कि अगर आप मुझे पास कर दें तो मैं..."

जब बात "ईमान की क़सम" तक पहुंचती है, मैं हाथ हिलाता हूं और फिर मेज़ पर आ बैठता हूं। छात्र थोड़ी देर और सोचता खड़ा रहता है, फिर निराशा से कहता है:

"तो फिर नमस्कार... मुझे क्षमा कीजिये।"

"नमस्कार, मेरे दोस्त। भाग्य तुम्हारा साथ दे।"

हिचकिचाहट के साथ वह कमरे के बाहर जाता है, ड्योढ़ी में धीरे धीरे अपना कोट पहनता है और बाहर निकलकर शायद फिर एक बार सोचता है। वह "खूसट शैतान" कहकर मुझे अपने दिमाग़ से निकाल देता है, किसी सस्ते रेस्तरां में जाकर बीयर पीता है और खाना खाता है और फिर घर जाकर सो जाता है। ईमानदार परिश्रमी, तेरी अस्थियों को शान्ति मिले!

तीसरी बार घण्टी बजती है। कोई जवान डाक्टर नया काला सूट, सुनहरी कमानी का चश्मा और अनिवार्य सफ़ेद टाई लगाये आता है। वह अपना परिचय देता है। मैं उससे बैठने को कहता हूं और उसके काम की बाबत पूछता हूं। विज्ञान का यह युवा पुजारी आवेग के साथ मुझे बताता है कि उसने इसी वर्ष डाक्टरी की परीक्षा पास की है और अब उसे सिर्फ़ थीसिस लिखना बाक़ी रह गया है। वह मेरे साथ, मेरे पथ-प्रदर्शन में काम करना चाहता है और चाहता है कि थीसिस का कोई विषय बताकर मैं उसपर अनुग्रह करूं।

मैं कहता हूं: "तुम्हारी सहायता करने में मुझे ख़ुशी होगी, सहयोगी। पर हम साफ़ साफ़ समझ लें कि थीसिस होता क्या है। यह शब्द आम तौर पर मौलिक रूप से किये गये काम पर लिखे गये लेख के लिए प्रयुक्त होता है। है कि नहीं? दूसरे के बताये विषय और दूसरे के पथ-प्रदर्शन में किये गये काम पर लिखे गये लेख का नाम दूसरा होता है..."

थीसिस का अभिलाषी जवाब नहीं देता। मैं झल्लाहट के साथ अपनी कुरसी से उठ खड़ा होता हूं।

"मुझे ताज्जुब है, आख़िर तुम सब लोग क्या समझकर आते हो?" मैं ग़ुस्से में भरा उसे संबोधित करता हूं, "क्या मैं कोई दुकान खोले हुए हूं? मैं विषयों का व्यापार तो नहीं करता! सौ मरतबे मैं तुम सब लोगों के हाथ जोड़ता हूं कि मुझे बख़्श दो! मुझे माफ़ करना अगर मेरी बातें असभ्य लगें, पर सचमुच मैं इस सबसे परेशान हो उठा हूं!"

अभिलाषी अब भी एक शब्द नहीं बोलता, पर उसके गालों पर हलकी लाली छा जाती है। मेरी विद्वत्ता और प्रसिद्धि के लिए श्रद्धा का भाव उसके चेहरे से झलकता है, पर उसकी आंखों में मुझे दिखाई देता

है कि वह मेरी आवाज़, मेरे दयनीय शरीर और मेरे उत्तेजित हाव-भावों से घृणा करता है। उसे लगता है कि मैं क्रोध में अजब सनकी मालूम लगने लगता हूं।

मैं क्रोध में फिर दोहराता हूं: "मैं दुकान नहीं लगाता! सचमुच यह तो अजब बात है कि तुम स्वावलंबी क्यों नहीं होना चाहते? तुम्हें स्वाधीनता इतनी बुरी क्यों लगती है?"

मैं बोलता रहता हूं और वह बराबर मौन धारण किये रहता है। अंत में मेरा क्रोध ख़त्म होने लगता है और अन्त में मैं हार मान ही लेता हूं। अभिलाषी को थीसिस के लिए मुझसे कोई पिटा-पिटाया विषय मिल जायेगा, मेरे पथ-प्रदर्शन में वह एक थीसिस लिखेगा जो दुनिया में किसी के कोई काम नहीं आयेगा, ऊबा देनेवाले वाद-विवाद में वह विजयी होगा और उसे विज्ञान की एक डिग्री मिल जायेगी जो उसके किसी काम नहीं आयेगी।

घण्टी बराबर बजती रहती है, पर मैं चार मेहमानों का वर्णन करके ही सन्तोष कर लूंगा। चौथी बार जब घण्टी बजती है तो मुझे जानी-पहचानी आहट सुनाई पड़ती है। कपड़ों की सरसराहट सुनाई पड़ती है, प्रिय आवाज़ आती है...

अठारह वर्ष पहले मेरा एक दोस्त जो आंखों की बीमारियों का विशेषज्ञ था, सात वर्ष की पुत्री, कात्या, और लगभग साठ हज़ार रूबल छोड़कर मरा था। अपनी वसीयत में उसने मुझे अपनी पुत्री का अभिभावक नियुक्त किया था। कात्या दस वर्ष की उम्र तक मेरे परिवार में रही, फिर वह एक बोर्डिंग स्कूल में भेज दी गयी और सिर्फ़ गरमियों की छुट्टी में हमारे यहां आती थी। उसकी देखभाल और पालन-पोषण के लिए मुझे समय नहीं मिलता था और उसे देखने के मुझे अवसर भी कम मिलते थे, इसलिए मैं उसके बचपन के बारे में बहुत कम बता सकता हूं।

उसकी पहली याद मुझे तब की है, और यह याद मुझे बहुत प्यारी है, जब वह अगाध विश्वास के साथ मेरे घर रहने आयी और बीमारी में उसने डाक्टरों को इलाज करने दिया, ऐसा विश्वास जो उसके चेहरे को जगमगा देता था। सूजे और पट्टी बंधे गाल के साथ वह सबसे अलग बैठी होती, पर अपने आसपास हो रहे हर काम में हमेशा पूरी दिलचस्पी लेती रहती; चाहे मुझे लिखते और किताब के पन्ने पलटते देखती हो,

चाहे मेरी बीवी को घर के काम में संलग्न देखती हो, चाहे रसोइये को आलू छीलते या कुत्ते को उछलकूद मचाते देखती हो, उसकी आंखों से हमेशा एक ही विचार प्रकट होता था कि "जो कुछ भी इस दुनिया में हो रहा है वह सुंदर और बुद्धिमत्तापूर्ण है"। उसमें प्रबल जिज्ञासा थी और वह मुझसे बात करना बहुत पसन्द करती थी। वह मेरे सामने कुर्सी पर बैठ जाती और मुझे काम करते देखती और सवाल करती जाती। वह जानना चाहती थी कि मैं क्या पढ़ता हूं? मैं विश्वविद्यालय में क्या करता हूं? मुझे मुरदों से डर लगता है या नहीं? मैं अपनी तनख़्वाह का क्या करता हूं?

कभी वह पूछती: "क्या विश्वविद्यालय में छात्र आपस में लड़ते हैं?"

"हां, लाड़ली, वे लड़ते हैं।"

"और तुम उन्हें घुटने के बल खड़ा करवा देते हो?"

"हां।"

छात्रों की लड़ाई और मेरा उन्हें कोने में खड़ा कर देना उसे इतना हास्यास्पद लगता कि वह हंसने लगती। वह बहुत विनम्र, सहिष्णु और दयालु लड़की थी। अक्सर जब उससे कोई चीज़ छिन जाती, उसे ग़लत सज़ा मिल जाती या उसकी जिज्ञासा शान्त हुए बिना रह जाती तब उसके चेहरे पर झलकती विश्वास की स्थायी भावना में उदासी भी मिल जाती, पर बस, इससे ज्यादा कुछ नहीं। मैं नहीं जान पाता कि उसका समर्थन और पक्षपोषण कैसे करूं पर जब भी मैं उसे उदास पाता तो मेरी उत्कट इच्छा यह होती कि बूढ़ी आया की तरह उसे चिपका लूं और "मेरी प्यारी अनाथ बच्ची" कहकर दया प्रकट करूं।

मुझे यह भी याद है कि वह अच्छे कपड़े पहनने और ख़ुशबू लगाने की कितनी शौक़ीन थी। इस बात में वह मेरी तरह थी। मुझे भी अच्छे कपड़े और बढ़िया इत्र बहुत पसन्द हैं।

मुझे यह कहते खेद होता है कि चौदहवें–पन्द्रहवें वर्ष से कात्या के मुख्य चाव के विकास को समझने का मुझे न समय मिला और न मेरा रुझान ही उस ओर रहा। मेरा आशय उसके तीव्र नाट्य प्रेम से है। गरमियों में वह जब बोर्डिंग स्कूल से घर आती तो इतने उत्साह और उमंग से वह किसी चीज़ की बात न करती जितनी कि नाटकों और अभिनेताओं की।

नाटकों के बारे में लगातार बकबक कर वह हमें थका डालती। मेरी पत्नी और बच्चे उसकी बातें सुनते नहीं थे। घर में मैं ही अकेला ऐसा था जिसे उसकी बात पर ध्यान न देने की हिम्मत नहीं होती थी। जब भी उसे इच्छा होती कि वह अपने उत्साह में किसी और को भी शामिल करे, वह मेरे कक्ष में चली आती और अनुनयभरी आवाज़ में कहती :

"निकोलाई स्तेपानिच! क्या मैं तुमसे नाटकों के बारे में बात कर सकती हूं?"

मैं घड़ी की ओर इशारा कर कहता : "मैं तुम्हें आधा घण्टा दे सकता हूं, बात शुरू कर दो।"

बाद में वह दर्जनों अभिनेताओं व अभिनेत्रियों की तसवीरें घर लाने लगी। इन अभिनेता-अभिनेत्रियों की वह पूजा-सी करती। फिर शौक़िया नाटकों में भाग लेने लगी और अंततः जब वह सभी परीक्षाएं पास कर चुकी तो उसने मुझसे कह दिया कि वह अभिनेत्री बनने के लिए ही पैदा हुई थी।

थियेटर के बारे में उसका उत्साह मुझे बहुत पसन्द नहीं था। मेरी राय में तो, अगर नाटक अच्छा है तो वांछित प्रभाव डालने के लिए अभिनेताओं को कष्ट देने की कोई ज़रूरत नहीं है, उसे पढ़ लेना ही काफ़ी है, और अगर नाटक बुरा है तो अभिनेता चाहे जितने अच्छे हों, नाटक अच्छा नहीं बन सकता।

अपनी जवानी में मैं अक्सर नाटक देखने जाता था और मेरे परिवारवाले अब भी साल में दो बार थियेटर में बाक्स सुरक्षित कर मुझे दिल-बहलाव के लिए ले जाते हैं। बेशक इतने भर से मुझे थियेटर पर राय ज़ाहिर करने का अधिकार नहीं मिल जाता फिर भी मैं कुछ कहूंगा ही। मेरी राय में पिछले तीस–चालीस सालों में थियेटर में कोई सुधार नहीं हुआ है। पहले की तरह अब भी वहां थियेटर के भीतर, उसके गलियारों में मुझे पीने को भी एक गिलास साफ़ पानी नहीं मिल पाता। टिकट चेक करनेवाला व्यक्ति अब भी मुझपर मेरे फ़र कोट के लिए बीस कोपेक का जुरमाना ठोकता है, हालांकि जाड़ों में गरम कपड़े पहनने में कोई दोष समझ में नहीं आता। मध्यान्तर में अब भी अनावश्यक वाद्य संगीत होता है, जिससे नाटक से पड़े प्रभाव से भिन्न, नया और अनावश्यक प्रभाव पड़ता है। लोग अब भी मध्यान्तर में शराब पीने बुफ़े में जाते हैं। और

चूंकि छोटी चीज़ों में कोई तरक्क़ी नहीं हुई है, इसलिए बड़ी बातों में भी सुधार ढूंढ़ने की मेरी कोशिश बेकार ही होगी। जब सिर से पैर तक रंगमंच की परम्पराओं और पक्षपातों से लदा कोई अभिनेता सीधा-सादा, साधारण स्वगत संवाद "टु बी आर नाट टु बी" को चीख़ चीख़कर बोलता है, जिससे सादगी ख़त्म हो जाती है, बेमतलब की सिसकारी और शरीर-कंपन होने लगता है, या जब वह मुझे यह समझाने पर तुल जाता है कि चात्स्की, मूर्खों से बात करने और एक मूर्ख लड़की से प्रेम करने के बावजूद बुद्धिमान व्यक्ति था और 'अक़्लमंदी की मुसीबत' ऊबा देनेवाला नाटक नहीं है, मुझे लगता है कि पुराना ढर्रा, जो चालीस वर्ष पहले मुझे ऊबा देता था, जब मैं शास्त्रीय ढंग के रोने और छाती पीटने को मनोरंजन मानने के लिए बाध्य था, थियेटर में अब भी चालू है। और हर बार थियेटर से वापसी पर मैं पहले से ज्यादा बड़ा दक़ियानूस हो जाता हूं।

भावुक और विश्वासी भीड़ भले ही मान ले कि आधुनिक नाटक शिक्षाप्रद होते हैं, पर शिक्षा क्या और कैसी होनी चाहिए इस सम्बन्ध में ठीक विचार रखनेवाले इस चाल में न आयेंगे। मैं नहीं जानता कि पचास या सौ वर्ष बाद हालत क्या होगी लेकिन आज की परिस्थितियों में तो थियेटर मनोरंजन के सिवा और किसी चीज़ का साधन बन नहीं सकता। हां, हमारे लिए यह मनोरंजन इतना महंगा है कि हम इसका उपयोग जारी नहीं रख सकते। हजारों नौजवानों, तंदुरुस्त तथा प्रतिभासंपन्न पुरुषों और स्त्रियों की सेवा से राज्य, इस थियेटर के कारण, वंचित हो जाता है और यदि वे थियेटर से ऐसी लगन न रखते होते तो बढ़िया डाक्टर, किसान, अध्यापिकायें और अफ़सर बनते। दर्शकों से थियेटर उनके शाम के घण्टे लूट लेता है जोकि बौद्धिक कार्य व मैत्रीपूर्ण संभाषण का सबसे उपयुक्त समय होता है। मैं आर्थिक ख़र्च और दर्शकों पर होनेवाले उस नैतिक आघात की बात करता नहीं जो मंच पर हत्या, व्यभिचार या बदनामी के ग़लत ढंग के चित्रण से होता है।

किन्तु कात्या की राय बिल्कुल दूसरी थी। वह मुझे विश्वास दिलाती थी कि आज की हालत में भी थियेटर किताबों और व्याख्यानों से ज़्यादा महत्वपूर्ण है, दुनिया की हर वस्तु से अधिक महत्वपूर्ण है। थियेटर वह शक्ति है जिसमें सभी कलाएं निहित हैं और अभिनेता धर्म-प्रचारक होते हैं। मनुष्य की आत्मा पर इतना गहरा और असंदिग्ध प्रभाव किसी कला या

विज्ञान का नहीं पड़ता जितना कि नाटक का और यह बिल्कुल यूं ही थोड़े ही है कि मामूली से अभिनेता भी बड़े से बड़े वैज्ञानिक या कलाकार से अधिक जनप्रिय होता है। अभिनेताओं को अभिनय से जितना संतोष और सुख मिलता है उतना किसी सार्वजनिक कार्य से किसी को भी प्राप्त नहीं होता।

फिर एक दिन कात्या एक नाटक मंडली में भरती होकर अपने साथ ढेर सारा रुपया, अनेक सुनहली आशाएं और नाटक के प्रति कुलीन दृष्टिकोण लेकर चली गयी। मेरा ख़्याल है वह उफ़ा नगर गयी।

रास्ते में लिखे गये उसके पहले पत्र बहुत आश्चर्यजनक रूप से सुन्दर थे। मैं उन्हें पढ़ता और प्रशंसा में डूबा सोचा करता कि काग़ज़ के इन टुकड़ों में इतना यौवन, ऐसी आध्यात्मिक पवित्रता, ऐसे धन्य भोलेपन और अत्यन्त मेधावी पुरुषों के लिए भी प्रशंसनीय गूढ़ व्यावहारिक निर्णयबुद्धि एकसाथ कैसे भर गयी। वोल्गा, प्राकृतिक दृश्यावली, उन नगरों जहां वह गयी, अपने साथियों, अपनी सफलताओं-असफलताओं का वह इन पत्रों में वर्णन नहीं करती बल्कि उन पर कविता-सी लिखती। हर पंक्ति से वह विश्वास झलकता जो मैं उसके चेहरे में देखने का आदी था और तिस पर भी पत्र व्याकरण की अशुद्धियों से भरे होते और विरामचिन्हों का तो उनमें सर्वथा अभाव होता।

मुश्किल से छः महीने गुज़रे होंगे कि मुझे कवित्व और उत्साह भरा एक पत्र मिला जो शुरू ही इन शब्दों से हुआ था: "मुझे प्रेम हो गया है।" इस पत्र के साथ एक युवक का फ़ोटो भी नत्थी था जिसकी दाढ़ी मूंछ मुंडी हुई थीं, जो चौड़े किनारे का हैट लगाये हुए था और एक कन्धे पर जिसके चारख़ाने का दुशाला पड़ा था। बाद के कुछ पत्र भी ऐसे ही सुन्दर थे, पर उनमें अब विरामचिन्ह दिखाई पड़ने लगे थे और व्याकरण की भी ग़लतियां नहीं होती थीं। उनसे पुरुष प्रभाव बहुत स्पष्ट दृष्टिगोचर होता था। कात्या ने अब मुझे लिखा कि वोल्गा के किनारे कहीं, सहकारिता के आधार पर, एक बड़ा-सा थियेटर खोलना कितना अच्छा होगा, इसके लिए बड़े व्यापारियों और जहाज़ों के मालिकों से रुपया लिया जायेगा, दर्शकों से ही ढेरों रुपया मिलेगा, बहुत धन आयेगा, अभिनेता साझे में काम करेंगे... मैंने सोचा कि शायद यह सब ठीक है पर ऐसे विचार पुरुषों के दिमाग़ में ही आते हैं।

जैसा भी हो, एक–दो वर्ष बाद भी सब ठीक-ठाक चलता लग रहा था। कात्या प्रेम में थी, अपने उद्देश्य में उसे विश्वास था और वह सुखी थी। किन्तु इसके बाद ही मुझे उसके पत्रों में थकान के लक्षण दिखाई देने लगे। पहले तो कात्या अपने साथियों के संबंध में शिकायतें लिखने लगी। यह पहला और सबसे अशुभ लक्षण था – यदि कोई युवा वैज्ञानिक या लेखक अन्य वैज्ञानिकों या लेखकों की शिकायत से काम शुरू करे तो समझ लेना चाहिए कि वह थक चुका है और अपने काम के योग्य नहीं रह गया है। कात्या मुझे लिखती कि उसके साथी रिहर्सलों में नहीं आते, उन्हें अपने पार्ट कभी याद नहीं होते; जो नाटक खेले जाते हैं उनके फूहड़पन और मंच पर अभिनेताओं के रवैये से लगता है कि उनमें से हर एक की दर्शकों के प्रति हद से ज़्यादा अवज्ञा है। आमदनी के लिए, और यह आमदनी ही हमेशा चर्चा का विषय होती, अभिनेत्रियां अपने को गिराती हुई भोंडे गीत गाती और दुःखान्त नाटकों के अभिनेता उन व्यक्तियों पर जिनकी बीवियां उन्हें दग़ा दे गयीं और शीलहीन स्त्रियों के गर्भिणी होने पर फबतियां कसते हुए दोहे गाते। ऐसे में यह ताज्जुब की ही बात है कि ऐसे भ्रष्ट रंग-ढंग और सीमित साधनों में भी प्रांतीय थियेटर अब भी टिका हुआ है।

जवाब में मैंने कात्या को एक लम्बा और उकता देनेवाला पत्र लिखा। दूसरी बातों के अलावा मैंने यह भी लिखा: "बूढ़े अभिनेताओं से मेरी अक्सर बात हुई है जिन्होंने मुझसे दोस्ती करने की कृपा की है। उनसे हुई बातचीत से मुझे ज्ञात हुआ कि उनके काम का नियंत्रण ख़ुद उनके विचारों और संकल्पों से नहीं, प्रचलित फ़ैशन और समाज के मनोभावों से होता है। उनमें से श्रेष्ठ अभिनेताओं ने अपने समय में दुःखान्त नाटकों, गीति-नाटिकाओं, फ़्रांसीसी प्रहसनों व मूक अभिनय तक के स्वांगों में काम किया और हर बार यह समझकर कि वे ठीक रास्ते पर हैं और लोगों की सेवा कर रहे हैं। तो, तुम देखो कि बुराई की जड़ अभिनेताओं में नहीं, बल्कि गहरे जाकर, स्वयं कला और कला के प्रति समाज के दृष्टिकोण में ढूंढ़नी होगी।" मेरे इस पत्र ने कात्या को सिर्फ़ खिजा दिया। उसने जवाब दिया: "हम बिलकुल भिन्न बात कर रहे हैं। मैंने उन लोगों के बारे में नहीं लिखा था जो ऊंचे विचारों के थे, जिन्होंने तुम पर अपना स्नेह बिखेरा था, बल्कि उन लोगों के बारे में लिखा था जो लफ़ंगों के गिरोह के अलावा

श्रौर कुछ नहीं है श्रौर जिनमें उच्च विचारों का नाम-निशान भी नहीं है। यह जंगलियों का दल है जो थियेटर में है क्योंकि कहीं श्रौर उसे नौकरी नहीं मिलती, वे श्रपने को श्रभिनेता कहते हैं केवल उद्दण्डतापूर्वक। किसी में प्रतिभा नहीं है, पर शराबियों, चुगलख़ोरों, हिकमतबाज़ तिकड़मियों, श्रौसत से कम श्रक़्लवाले लोगों की भरमार है। मैं तुम्हें बता भी नहीं सकती कि मेरे लिए यह कितने दुःख की बात है कि जिस कला से मैं इतना प्रेम करती हूं वह ऐसे व्यक्तियों के हाथों में है जिनसे मैं नफ़रत करती हूं, कि उच्चाशय व्यक्ति इस बुराई को सिर्फ़ दूर से देखते हैं श्रौर इसके पास श्राने की उनकी प्रवृत्ति नहीं होती श्रौर श्रमल करने की जगह क्लिष्ट भाषा में फ़ालतू बातें लिखते हैं श्रौर बिल्कुल श्रनावश्यक नैतिक उपदेश देते हैं..." श्रौर ऐसे ही, इसी ढंग की बातों से पत्र भरा था।

कुछ श्रौर समय गुज़रा श्रौर मुझे निम्नलिखित पत्र मिला: "मुझे बहुत बेरहमी से दग़ा दी गई। मैं ज़िन्दा नहीं रह सकती। मेरे रुपये का तुम जो चाहो, उपयोग करना। मैंने तुम्हें पिता श्रौर श्रपने श्रकेले मित्र की भांति प्रेम किया है। क्षमा करना।"

श्रौर इससे पता लगा कि वह भी "जंगलियों के गिरोह" का निकला। इसके बाद जहां तक मैं संकेतों को समझ सका, श्रात्महत्या की भी कोशिश हुई। लगता है कि कात्या ने विष खाने की कोशिश की। इसके बाद वह बहुत बीमार पड़ गयी होगी, क्योंकि जो दूसरा पत्र मिला वह याल्ता से श्राया था, जहां शायद वह डाक्टरी राय पर गयी होगी। मुझे उसने जो श्रंतिम पत्र लिखा उसमें उसने जल्दी से एक हज़ार रूबल याल्ता भेज देने को कहा था श्रौर श्रंत में लिखा था: "यदि मेरे पत्र में उदासी हो तो मुझे माफ़ करना। कल मैं श्रपने बच्चे को दफ़न कर चुकी हूं।" वह लगभग एक वर्ष तक क्रीमिया में रही श्रौर फिर घर वापस श्रा गयी।

वह चार वर्ष तक बाहर रही थी श्रौर मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि इस पूरे समय उसके प्रति मेरा रवैया श्रजब श्रौर ऐसा रहा जो प्रशंसनीय नहीं था। शुरू में जब उसने श्रभिनेत्री बनने का फ़ैसला किया, फिर जब मुझे श्रपने प्रेम के सम्बन्ध में लिखा, फ़िज़ूलख़र्ची का एक दौरा-सा उसपर श्राया श्रौर कभी एक कभी दो हज़ार रूबल मंगाने लगी, फिर जब मर जाने की श्रपनी इच्छा उसने व्यक्त की श्रौर फिर जब श्रपने बच्चे की मौत के सम्बन्ध में लिखा, मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ रहा। उसकी ज़िन्दगी में मेरा

केवल इतना ही हाथ था कि मैं बराबर उसी के बारे में सोचा करता और उसे लम्बे, उकता देनेवाले पत्र लिखा करता जो न भी लिखे जाते तो बुरा न होता। और तब भी क्या मैं उसके पिता की जगह पर न था और क्या मैं उसे अपनी ही बेटी की तरह प्यार न करता था!

आजकल कात्या मुझसे कोई दो फर्लांग की दूरी पर रहती है। उसने पांच कमरों वाला एक मकान भाड़े पर ले रखा है और उसे बहुत आरामदेह ढंग और ऐसी सुरुचि से सजाया है जो बिल्कुल उसकी अपनी है। यदि कोई उस वातावरण का वर्णन करने की कोशिश करे जिसमें वह रहती है तो उस वर्णन में ज़ोर आलस्य पर ही होगा। मुलायम कोच और मुलायम कुरसियां अलस शरीर के लिए, मुलायम क़ालीन अलस पांवों के लिए, मन्द, धुंधले उड़े-उड़े-से रंग अलसायी आंखों के लिए। अलस आत्मा के लिए दीवारों पर ढेरों सस्ते पंखे, छोटी तसवीरें जिनमें विषय पर अभिव्यक्ति का नवीन ढंग हावी है, छोटी मेज़ों, आलमारियों, हर जगह बिल्कुल फ़ालतू और फ़िज़ूल चीज़ों का अम्बार, कपड़े के बेढंगे टुकड़े परदे की जगह... यह सब और चटकदार रंगों, क़रीने, खुली जगह से बचने के स्पष्ट प्रयास से आत्मा का आलस्यपूर्ण होना प्रकट होता है और साथ ही स्वाभाविक सुरुचि का दूषित होना भी। कात्या दिन भर कोच पर लेटी पढ़ा करती है – मुख्यतः उपन्यास और कहानियां। वह घर से सिर्फ़ एक बार निकलती है, तीसरे पहर, जब वह मुझसे मिलने आती है।

मैं काम करता रहता हूं और कात्या पास ही सोफ़े पर बैठी चुपचाप शाल को खींच खींचकर ओढ़ती रहती है, मानो उसे सरदी लग रही हो। या तो इसलिए कि मैं उसे प्यार करता हूं या इसलिए कि मैं उसके बचपन के समय से ही उसके बारबार आने का आदी हो चुका हूं, उसकी उपस्थिति मेरी एकाग्रता में बाधा नहीं पहुंचाती। बीच बीच में मैं कोई फ़ालतू सवाल उससे कर लेता हूं और वह मुझे संक्षिप्त-सा उत्तर दे देती है। या क्षण भर के लिए थकावट दूर करने के ख़्याल से मैं मुड़कर उसकी ओर देखता हूं। वह अन्यमनस्क भाव से किसी अख़बार या डाक्टरी की पत्रिका के पन्ने पलटती होती है। तब मैं देखता हूं कि उसके चेहरे पर पहलेवाला विश्वास का वह भाव अब नहीं है। अब उसका चेहरा उदासीन, सूनासूना और खोया हुआ सा लगता है, जैसे उन यात्रियों के चेहरे जिन्हें ट्रेन का बहुत देर तक इन्तज़ार करना पड़ा हो। कपड़े वह अब भी अच्छे पहनती है,

पुरानी सुरुचिपूर्ण सादगी से, पर अब वह सुघरता नहीं है, उसके वस्त्रों और बालों में सोफ़ों और झूलनेवाली कुरसियों की छाप रहती है जिन पर वह दिन भर पड़ी आराम करती है। और अब उसमें जिज्ञासा भी नहीं है जैसी कि पहले थी। अब वह मुझसे कोई सवाल नहीं करती मानो जीवन से जो कुछ नाता था, उसका अनुभव कर चुकने पर अब वह कोई नयी बात सुनने की आशा नहीं करती।

चार बजने से कुछ पहले बैठक और हाल में जीवन आने लगता है। इसका अर्थ है कि लीज़ा संगीत विद्यालय से लौट आयी है और अपने साथ कुछ सखियों को ले आयी है। किसी के पियानो बजाने की आवाज़ सुनाई देती है, कोई एक दो टुकड़े गा भी देती है, हंसी गूंज जाती है। भोजन के कमरे में येगोर मेज़ सजाता है और तश्तरियों की खड़खड़ाहट सुनाई देती है।

कात्या कहती है: "नमस्कार! आज मैं उन लोगों से मिल न सकूंगी, वे मुझे माफ़ कर दें। मुझे समय नहीं है। मेरे पास आओ।"

जब मैं उसे बाहर के दरवाज़े तक छोड़ने जाता हूं वह मुझे सिर से पैर तक जांचती है और फिर चिड़चिड़ाकर कहती है:

"तुम रोज़ दुबले होते जा रहे हो! इलाज क्यों नहीं कराते? मैं सेर्गेई फ़ेदोरोविच को तुम्हारे पास भेजूंगी। तुम उसे अपनी जांच कर लेने देना।"

"नहीं, कात्या।"

"मेरी समझ में नहीं आता कि तुम्हारे घरवाले क्या सोच रहे हैं! तुम्हारा परिवार भी ख़ूब है!"

वह झटककर अपना कोट पहन लेती है, लापरवाही से बंधे उसके जूड़े से दो एक पिनें हमेशा गिर जाती हैं। काहिली और हड़बड़ी के कारण वह बाल नहीं संवारती, सिर्फ़ एकाध लट को टोपी के भीतर ठूंसकर चल देती है।

जब मैं खाने के कमरे में पहुंचता हूं, मेरी बीवी मुझसे पूछती है:

"क्या कात्या आयी थी? वह हमसे मिलने क्यों नहीं आयी? यह ऐसी अजब बात..."

लीज़ा झिड़कती हुई कहती है: "अरे, अम्मा! अगर वह नहीं आना चाहती तो वह रहे अलग! हमें उसके पैर पड़ने की ज़रूरत नहीं है।"

"तुम चाहे जो कहो, है यह उपेक्षा। कक्ष में तीन घण्टे बैठी रहे और हमारा उसे ख़्याल तक न आये। लेकिन, जैसी उसकी मरज़ी हो।"

वार्या और लीज़ा दोनों कात्या से नफ़रत करती हैं। यह नफ़रत मेरी समझ में नहीं आती, इसे कोई औरत ही समझ सकती हो। मैं क़सम खा सकता हूं कि उन डेढ़ सौ नवयुवकों में से जिनसे मैं लगभग प्रतिदिन व्याख्यान-हाल में मिलता हूं और उन बीसियों अधेड़ लोगों में से जिनसे मैं हर हफ़्ते मिलता हूं एक भी ऐसा न निकलेगा जो कात्या के विगत जीवन, उसके विवाह हुए बिना बच्चा होने, ख़ुद जारज सन्तान के लिए यह घृणा और नफ़रत समझ सके। साथ ही मैं अपनी जान-पहचान की स्त्रियों व लड़कियों में से एक की भी कल्पना नहीं कर सकता जो जाने अनजाने ऐसी ही भावनाएं पोषित न कर रही हों। यह इसलिए नहीं है कि स्त्रियां पुरुषों के मुक़ाबिले ज़्यादा पुण्यात्मा होती हैं। अंततः पुण्य और पाप में बहुत ही कम अन्तर रह जाता है यदि पुण्य दुर्भावनाहीन न हो। मैं इसका कारण स्त्रियों का पिछड़ापन समझता हूं। दुर्भाग्य देखकर आधुनिक पुरुष को जो उदास समवेदना और अस्पष्ट सा पछतावा होता है वह मुझे नैतिक विकास और संस्कृति का घृणा और नफ़रत से अधिक बड़ा प्रतीक लगता है। आधुनिक नारी आंसू बहाने में और कठोरहृदयता में मध्ययुगीन नारी के समान ही है। मेरी राय में वे लोग सही हैं जो कहते हैं कि स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा और लालन-पालन भी पुरुषों की तरह ही होना चाहिए।

मेरी पत्नी कात्या को इसलिए भी नापसन्द करती है कि वह अभिनेत्री रह चुकी है, अकृतज्ञ है, घमण्डी व सनकी है, और उसमें वे अनगिनत दोष हैं जो एक औरत दूसरी औरत में हमेशा ढूंढ़ सकती है।

खाने की मेज़ पर घर के लोगों के अलावा लीज़ा की दो-तीन सखियां और उसका प्रशंसक और प्रेमी अलेक्सान्द्र अदोलफ़ोविच ग्नेकेर भी हैं। वह भूरे बालों, लाल लाल से गलमुच्छों, ऐंठी हुई मूछों वाला तीस साल का, औसत क़द, मोटे बदन, चौड़े कन्धों वाला नौजवान है जिसके चिकने मोटे चेहरे पर कुछ कुछ गुड़ियों की सी छवि है। वह एक बहुत छोटा कोट, रंगबिरंगे वासकट, चारखाने की पतलून जो कमर पर बहुत ढीली और टखनों पर बहुत तंग है और सपाट तल्ले के पीले जूते पहनता है। उसकी आंखें झींगे की तरह आगे को उभरी हुई हैं, उसकी टाई झींगे की गर्दन-सी है और मुझे लगता भी है कि यह युवक भी झींगे के शोरबे की तरह

महकता होगा। वह रोज ही हमारे यहां आता है पर हम में से कोई भी नहीं जानता कि वह किस परिवार का है, कहां पढ़ा है, उसकी जीविका का साधन क्या है। वह न तो गाता है और न बजाता है पर तब भी संगीत व गाने बजाने से उसका कुछ सम्बन्ध है–अज्ञात खरीदारों को अज्ञात पियोनो बेचा करता है, संगीत विद्यालय में बराबर मौजूद रहता है, हर बड़े संगीतज्ञ को जानता है और संगीत गोष्ठियों का आयोजन किया करता है। संगीत की आलोचना में वह अति प्रामाणिक कुछ कुछ सर्वज्ञ देवताओं की तरह बोलता है और मैंने देखा है कि हर कोई जल्दी से उससे सहमत हो जाता है।

रईसों के हमेशा आश्रित मुसाहिब लगे रहते हैं, यही हाल विज्ञान और कला का भी है। मैं नहीं समझता कि कोई भी कला या विज्ञान मिस्टर ग्नेकेर जैसे "पराये तत्वों" से मुक्त है। मैं संगीतज्ञ नहीं हूं और ग्नेकेर के सम्बन्ध में भूल कर सकता हूं, इसलिए भी, कि उसके बारे में मैं बहुत कम जानता हूं। पर उसका अधिकारपूर्ण ढंग और किसी के गाते-बजाते समय उसका पियानो के पास आत्मसन्तुष्ट भाव से खड़े होने का लहजा मुझे सन्देहास्पद लगता है।

शिष्ट सभ्य समाज की आप नाक भले ही हों, चाहे प्रिवी कौंसिल के मेम्बर ही क्यों न हों, पर आपके अगर एक बेटी है तो मध्य वर्गीय फूहड़पन के वातावरण से आप बच नहीं सकते, जो लड़की को रिझाना, मंगनी और विवाह, आपके घर और आपकी मनोदशा पर छा देंगे। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं ग्नेकेर के आने पर अपनी पत्नी के चेहरे पर छा जानेवाले गम्भीर भाव को कभी बरदाश्त नहीं कर पाता; या कि जब सिर्फ़ उसे दिखाने के लिए मेज पर शेरी, पोर्ट व फ़्रांसीसी शराब की बोतलें सजायी जाती हैं ताकि वह समझ सके कि हम किस शान-शौकत से रहते हैं, मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं लीज़ा का वह रुक-रुककर हंसना बरदाश्त नहीं कर पाता जो उसने संगीत विद्यालय में सीखा है; या जब घर में पुरुष अतिथि आते हैं तो वह जिस तरह आंखें सिकोड़कर देखती है वह भी मुझे पसन्द नहीं आता। पर जो बात कभी भी, कैसे भी मेरी समझ में नहीं आ सकती, वह यह है कि ऐसा व्यक्ति जो मेरी आदतों, मेरे विज्ञान, मेरे जीवन के पूरे ढंग से पूर्णतः बेगाना है, उन लोगों से बिल्कुल भिन्न है, जिन्हें मैं पसन्द करता हूं, वह क्यों हर दिन मेरे घर आये और हर

शाम मेरे साथ खाना खाये। मेरी पत्नी और नौकर रहस्यमय ढंग से फुसफुसाते हैं कि वह "वर" है, तब भी मेरी समझ में नहीं आता कि वह यहां है क्यों? उसे देखकर मुझे उसी तरह का अचम्भा होता है जैसा अचम्भा मुझे तब हो जब कोई ज़ूलू मेरे साथ मेज़ पर बैठा दिया जाये। मुझे यह भी अजब लगता है कि मेरी बेटी जिसे मैं अब भी बच्ची समझता हूं, यह टाई, ये आंखें, ये फूले गाल पसन्द करे...

पहले मुझे खाने में मज़ा आता था, या मैं खाने के बारे में उदासीन हो जाता था, पर अब खाने से मुझे ऊब और खीज होती है। जब से मैंने हुज़ूरी पाई और फ़ैकल्टी की अध्यक्षता भी, मेरी पत्नी और पुत्री ने न जाने क्यों, यह ज़रूरी समझ लिया है कि खाने की क़िस्मों और खाने के शिष्टाचार में रद्दोबदल किया जाये। उस सीधे-सादे भोजन की जगह जिसका मैं छात्र और बाद में डाक्टर के जीवन में आदी था, अब मुझे शराब की चटनी में गुर्दे और गाढ़ा सूप जिसमें जाने क्या सफ़ेद टुकड़े तैरते रहते हैं, खाने को मिलते हैं। जेनरल के पद और ख्याति ने मेरे प्रिय भोजन-बन्दगोभी का शोरबा, समोसे, सेबों से भरे भुने बत्तख़, दलिया के साथ मछली छीन लिये हैं। मुझसे इनके कारण नौकरानी अगाशा भी छिन गयी है जो ख़ुशमिज़ाज और बातूनी थी, उसकी जगह येगोर जो बुद्धू और दम्भी है, खाना परोसता है, दाहिने हाथ में सफ़ेद दस्ताना पहनकर। एक खाने के बाद दूसरे के आने के बीच का छोटा अन्तर अब लंबा लगने लगा है क्योंकि इस अन्तर को भरने के लिए कुछ नहीं होता। वह पुरानी हंसी-ख़ुशी, गपशप, मज़ाक़ें, चुहलें, हंसी-दिल्लगी, आपसी प्यार, बच्चों, बीवी व मेरे एक साथ खाने की मेज़ पर जमा होने की प्रसन्नता, सब हवा हो गयीं। मेरे जैसे व्यस्त व्यक्ति के लिए खाने का वक़्त आराम और घर के लोगों से मिलने के लिए होता था और मेरी बीवी व बच्चों के लिए यह वक़्त ख़ुशी की जेवनार हो जाता था चाहे थोड़ी देर के लिए ही सही, जब वे जानते थे कि इस आध घण्टे में मैं अपने छात्रों या विज्ञान का नहीं, उनका अपना था और किसी का भी नहीं। एक जाम हलकी शराब से मस्त हो जाने के दिन गये, अगाशा और दलिया के साथ मछली के दिन गये, खाने के वक़्त की हर छोटी घटना का मज़ा लेने और शोरग़ुल मचाने के दिन गये, ऐसी घटनाओं के मज़े लेने के दिन जैसे मेज़ के नीचे कुत्ते और बिल्ली का लड़ पड़ना या कात्या के गाल की पट्टी खुलकर शोरबे में गिर जाना।

आजकल के भोजन का वर्णन भी उतना नीरस होगा जितना कि स्वयं भोजन होता है। मेरी बीवी जो हमेशा परेशान लगती है, अब गंभीरता और दिखाऊ रोब का भाव चेहरे पर धारण किये खाने की मेज़ पर बैठी रहती है। हमारी प्लेटों की ओर देखती हुई वह परेशानी से कहती है: "तुम्हें गोश्त पसन्द नहीं... मैं देखती हूं कि तुम्हें नहीं है, तो फिर कह क्यों नहीं देते?" और मुझे जवाब देना होता है: "नहीं, नहीं, बात बिल्कुल ऐसी नहीं है, प्यारी! यह तो बहुत स्वादिष्ट है!" और वह कहती है: "निकोलाई स्तेपानिच, तुम हमेशा मेरा पक्ष ग्रहण करते हो, सच कभी नहीं कहते। पर अलेक्सान्द्र अदोल्फ़ोविच इतना कम क्यों खाता है?" खाने के दौरान भर ऐसी ही बात चला करती है। लीज़ा फिर रुक-रुककर हंसती है और आंखें सिकोड़ती है। मैं एक के बाद दूसरे के चेहरे पर निगाह दौड़ाता हूं और खाते वक़्त ही मुझे सबसे ज्यादा आभास इस बात का होता है कि इन दोनों के आंतरिक जीवन की मेरी समझ और अध्ययन बहुत दिन पहले से छूट चुका है। मुझे लगता है कि एक समय था जब मैं घर पर अपने असली परिवार के साथ रहता था, और अब मैं कहीं घर के बाहर, ऐसी बीवी के साथ भोजन कर रहा हूं जो असली नहीं है और ऐसी बेटी लीज़ा को देख रहा हूं जो असली नहीं है। उन दोनों में एकदम परिवर्तन हो गया है और मैं यह परिवर्तन लानेवाली लम्बी प्रक्रिया को देखने से चूक गया, इसलिए अब अगर मैं कुछ भी नहीं समझ पाता तो ताज्जुब की बात नहीं। यह परिवर्तन हुआ क्यों? मैं नहीं जानता। शायद असली मुसीबत यह है कि भगवान ने मेरी बीवी और बेटी को यह शक्ति नहीं दी है जोकि मुझे मिली है। बाहरी प्रभाव से टक्कर लेने की आदत मैंने बचपन से ही डाल ली है और इसमें मेरी ख़ासी ट्रेनिंग हो गयी है। प्रतिष्ठा, पद, आमदनी के भीतर ख़र्च करने की हालत से बूते के बाहर ख़र्च करने की आदत, प्रख्यात व्यक्तियों से जान-पहचान आदि जीवन के परिवर्तनों ने मुझपर नहीं के बराबर ही प्रभाव डाला है और मैं इन सब बातों से अछूता रहा हूं। पर ये सब बातें मेरी पत्नी और लीज़ा पर बर्फ़ के पहाड़ की तरह टूट पड़ी हैं, कमज़ोर और अनभ्यस्त तो वे थीं ही, इस पहाड़ ने उन्हें चकनाचूर कर दिया।

ग्नेकेर और नवयुवतियां गीतों के स्वर, ताल, गवैयों, पियानोवादकों, बाख़, ब्राम्स आदि पर बहस करते हैं और मेरी पत्नी इस डर से कि कहीं

वह अनाड़ी और अनभिज्ञ न समझ ली जाये, सहानुभूतिपूर्वक मुसकराती हुई धीरे-धीरे कहा करती है: "बहुत सुन्दर... सचमुच? देखो भला..." ग्नेकेर डटकर खाता है, भारी-भरकम मज़ाक़ करता है और नवयुतियों की बातें इस ढंग से सुनता है मानो अहसान कर रहा हो। बीच बीच में वह ग़लत फ़्रांसीसी का प्रयोग करने के लिए लालायित हो उठता है और फिर न जाने क्यों मुझे फ़्रांसीसी में "हुज़ूर" कहने लगता है।

पर मैं कुढ़ा हुआ हूं। मैं उनकी और वे मेरी उलझन का कारण बनते हैं। अपने को बड़ा या दूसरों को छोटा समझने की भावना पहले कभी मुझे छू भी नहीं गयी थी। पर अब ऐसी ही भावना मुझे सालती रहती है। मेरी प्रवृत्ति और चेष्टा ग्नेकेर में बुराइयां ढूंढ़ने की ही होती है और इसमें मुझे देर नहीं लगती और शीघ्र ही मैं इस बात पर चिन्तित हो उठता हूं कि एक निपट अजनबी मेरे घर आकर वर की भूमिका अदा कर रहा है। उसकी मौजूदगी से एक दूसरी तरह से भी मेरे ऊपर बुरा असर पड़ता है। नियमतः जब मैं अकेला होता हूं या ऐसे लोगों के साथ होता हूं जिन्हें मैं पसन्द करता हूं तो मैं अपने गुणों की बात नहीं सोचता और यदि किसी क्षण सोच भी लूं तो मुझे वे ऐसी नगण्य लगती हैं मानो विज्ञान की डिग्री मैंने अभी हाल ही में ली हो। लेकिन ग्नेकेर जैसे लोगों के सामने मुझे अपने गुण पहाड़ जैसे लगने लगते हैं। पहाड़, जिसकी चोटी बादलों में खो गयी हो और ग्नेकेर जैसे लोग नीचे तलहटी में कहीं इस तरह रेंग रहे हों कि दिखाई भी न दें।

भोजन के बाद मैं अपने कक्ष में चला जाता हूं और पाइप सुलगाता हूं। सुबह से रात तक तम्बाकू पीने की मेरी पुरानी लत का अब सिर्फ़ यही एक बार का पाइप अवशेष रह गया है। जब मैं पाइप पी रहा होता हूं, मेरी बीवी मेरे पास बैठने और बात करने आती है। जैसा कि सवेरे होता है, मैं पहले से जानता हूं कि वह क्या बात करेगी।

"निकोलाई स्तेपानिच, हमें इस मसले पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए," वह शुरू करती है, "मेरा मतलब लीज़ा के बारे में बात करने से है... आखिरकार, तुम्हें भी इसमें दिलचस्पी लेनी ही चाहिए..."

"क्या मतलब?"

"तुममें बुराई यह है कि तुम कोई चीज़ न देखने का बहाना करते हो। इतनी लापरवाही बरतने का तुम्हें कोई हक़ नहीं है... ग्नेकेर

का लीज़ा के बारे में... इरादा है... तुम्हारा इस बारे में क्या ख़्याल है?"

"मैं यह तो नहीं कह सकता कि वह बिल्कुल दो क़ौड़ी का ग्रादमी है, क्योंकि मैं उसे ठीक से जानता नहीं, पर मैं तुम्हें बार बार बता चुका हूं कि वह ग्रादमी मुझे पसन्द नहीं है।"

"पर तुम ऐसा नहीं कह सकते... तुम कह नहीं सकते..."

वह घबरायी हुई उठकर कमरे में इधर-उधर टहलने लगती है।

फिर कहती है: "ऐसी गंभीर बात को तुम यों नहीं टाल सकते। जहां तुम्हारी बेटी के सुख की बात हो, ग्रपनी व्यक्तिगत बातें टाल ही देनी पड़ती हैं। मैं जानती हूं कि तुम उसे पसन्द नहीं करते... ग्रच्छा... मान लो कि हम उससे ना कर दें, बात टूट जाये, फिर क्या इसका कोई भरोसा है कि लीज़ा इस बात को ज़िन्दगी भर हमारे ख़िलाफ़ उठाती न रहेगी? ग्राजकल ग्रच्छे लड़कों की कोई बहुतायत तो है नहीं, यह भी मुमकिन है कि कोई दूसरा वर मिले ही न... वह लीज़ा को बहुत प्यार करता है ग्रौर जहां तक मैं जानती हूं वह भी उसे पसन्द करती है... यह ठीक है कि उसकी कोई पक्की नौकरी नहीं है, पर हम क्या करें? भगवान करेगा तो एक दिन वह भी कहीं जम जायेगा। उसका परिवार ग्रच्छा है ग्रौर धनी ग्रादमी है।"

"तुम्हें कैसे मालूम?"

"उसने मुझे बताया था। उसके पिता का ख़ारकोव में एक बड़ा मकान है ग्रौर पास में ही जागीर है। तुम्हें ख़ारकोव जाना पड़ेगा, निकोलाई स्तेपानिच, जानते हो तुम्हें वहां जाना है।"

"क्यों?"

"वहां जाकर ही तुम्हें सब बातों का पता लग सकेगा... वहां तुम कुछ प्रोफ़ेसरों को जानते हो, वे तुम्हारी मदद कर देंगे। मैं ख़ुद चली जाती, पर मैं ग्रौरत हूं, मैं जा नहीं सकती..."

मुंह फुलाकर मैं कहता हूं: "मैं नहीं जाता ख़ारकोव।"

पत्नी घबरा उठती है, उसके चेहरे पर ग्रसीम वेदना का भाव छा जाता है।

सुबकती हुई वह ग्रनुनय शुरू करती है: "भगवान के लिए, निकोलाई स्तेपानिच! भगवान के लिए तुम मेरे सिर से यह बोझ उतार दो, मैं बहुत दुखी हूं!"

उसे ऐसा करते देखकर मुझे तकलीफ़ होती है। मैं मृदुलता से कहता हूं: "अच्छी बात है, वार्या, तुम कहती हो तो मैं खारकोव हो आऊंगा और तुम्हारे लिए कुछ भी कर दूंगा।"

आंखों से रूमाल लगाकर वह अपने कमरे में रोने चली जाती है। मैं अकेला रह जाता हूं।

थोड़ी देर बाद लैम्प आ जाता है। आरामकुर्सियों व लैम्प-शेड की जानी-पहचानी परछाइयां, जिनसे मैं बहुत पहले उकता चुका हूं, दीवालों पर पड़ने लगती हैं और उन्हें देखकर मुझे प्रतीत होता है कि रात आ गयी और मेरे सत्यानाशी अनिद्रा रोग का दौरा शुरू होनेवाला है। मैं बिस्तर पर जा लेटता हूं, फिर उठकर कमरे में इधर-उधर टहलता हूं, फिर जा लेटता हूं... भोजन के बाद रात होने पर आम तौर पर मेरी घबराहट और चिड़चिड़ापन अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता है। अकारण ही, मैं तकिये में मुंह छिपाकर रोने लगता हूं। ऐसे मौक़ों पर मुझे बराबर यह डर लगा रहता है कि कोई आ जायेगा या कि मैं अकस्मात मर जाऊंगा। मुझे अपने रोने पर शर्म आती है और मेरी अवस्था दु:साध्य हो जाती है। मुझे लगता है कि अपने लैम्प, अपनी किताबों, फ़र्श पर पड़नेवाली परछाइयों को देखना मैं अभी बरदाश्त नहीं कर सकता, बैठक से आनेवाली आवाज़ें सुनना मैं बरदाश्त नहीं कर सकता। कोई अज्ञात, अनबूझ शक्ति मुझे ज़बरदस्ती घर से बाहर ढकेलती है। मैं उछल पड़ता हूं, कपड़े डाल लेता हूं और यह कोशिश करते हुए बाहर निकल पड़ता हूं कि कोई घरवाला मुझे देख न ले। मैं कहां जाऊं?

इस प्रश्न का उत्तर पहले ही मेरे दिमाग़ में है – कात्या के यहां।

३

आम तौर पर मैं उसे तुर्की सोफ़े या कोच पर पड़े पढ़ती पाता हूं। मुझे देखकर वह अलसायी हुई सी धीरे से सिर उठाती है, बैठ जाती है और मेरी ओर हाथ बढ़ा देती है।

दम लेने के लिए थोड़ा ठहरकर मैं कहता हूं: "फिर पड़ी ऊंघ रही हो? अच्छा नहीं है यह तुम्हारे लिए। तुम कुछ करती क्यों नहीं?"

"क्या?"

"मैं कहता हूं, तुम्हें अपने लिए कुछ न कुछ काम ढूंढ़ निकालना चाहिए।"

"पर क्या काम? औरतों के लिए कारख़ाने और नाटक कंपनी के अलावा कोई और काम भी तो नहीं है।"

"अच्छा, तो, चूंकि कारख़ाने में काम नहीं करना है तो थियेटर में ही क्यों न शामिल हो जाओ?"

वह जवाब नहीं देती।

"तुम शादी क्यों नहीं कर लेतीं?" मैं कुछ कुछ मज़ाक़ में कहता हूं।

"कौन है जिससे कर लूं? और फिर क्यों कर लूं?"

"ऐसे काम जो नहीं चल सकता।"

"बिना पति के? क्या ज़रूरत है? और अगर मैं यही चाहूं तो क्या मरदों की कमी है?"

"कात्या, यह भली बात नहीं है।"

"क्या भली बात नहीं है?"

"जो तुमने अभी कही।"

यह देखकर कि उसने मुझे परेशानी में डाल दिया है, कात्या मुझपर पड़े बुरे प्रभाव को हलका करने के लिए कहती है:

"मेरे साथ आओ। इधर आओ। इस तरफ़।"

वह मुझे बड़े आरामदेह ढंग से सजे एक छोटे से कमरे में ले जाती है और एक डेस्क दिखाकर कहती है:

"देखो... यह मैंने तुम्हारे लिए किया है। तुम यहां काम किया करोगे। अपना काम बटोरकर रोज़ यहां चले आया करो। अपने घर पर तुम्हें वे लोग चैन से बैठकर काम न करने देंगे। यहां करोगे काम? कह दो न कि हां।"

इनकार से मैं उसका दिल दुखाना नहीं चाहता, इसलिए कह देता हूं कि हां, आया करूंगा और मुझे यह कमरा बहुत पसन्द है। तब हम दोनों उसी आरामदेह छोटे कमरे में बैठकर बातें शुरू कर देते हैं।

गरम, आरामदेह वातावरण और हमदर्द साथी अब मुझमें पहले की तरह प्रसन्नता की भावना पैदा नहीं करते बल्कि शिकवा-शिकायत करने की प्रेरणा देते हैं... मुझे लगता है कि थोड़ी बहुत शिकायत करने और अपने आप पर तरस खाने से शायद मेरी तबीयत सुधर जाये।

गहरी सांस लेते हुए मैं कहना शुरू करता हूं: "हालत ठीक नहीं है, प्यारी बेटी, हालत बहुत बुरी है..."

"क्यों, क्या बात है?"

"बात यूं है, प्यारी, बादशाहों का सबसे बड़ा और सबसे पवित्र अधिकार क्षमा करने का अधिकार है। मैं अपने को हमेशा बादशाह ही मानता रहा हूं क्योंकि मैंने इस अधिकार का व्यापक प्रयोग किया है। मैं कभी उचित अनुचित का फ़ैसला नहीं करता था, हमेशा दूसरों का मन रखता था और हर एक को क्षमा करता रहता था। जहां दूसरे प्रतिवाद करते और क्रोध करते वहीं मैं सिर्फ़ समझाता-बुझाता। जीवन भर मैंने कोशिश की है कि मेरा मेरे साथ परिवार, मेरे नौकरों, छात्रों और साथियों आदि को रुचिकर हो। मेरे सम्पर्क में आनेवालों पर मेरे इस बरताव का अच्छा प्रभाव पड़ता था, मैं जानता हूं कि उन पर इसका असर पड़ता था। पर अब मैं बादशाह नहीं रहा। मेरे अंतर में दिन रात ऐसा कुछ होता रहता है जो केवल किसी गुलाम के लिए क्षम्य होगा – दिमाग़ में कटु विचार मंडराया करते हैं, ऐसी भावनाएं दिल में बसेरा लिये रहती हैं जिनसे पहले मैं कभी परिचित भी नहीं था। मुझे घृणा, नफ़रत, क्रोध, भय, रोष और झल्लाहट की भावनाएं घेरती हैं। मैं अहंकारमय रूप से कठोर, चिड़चिड़ा, संशयालु और रूखा हो गया हूं। पहले जिस बात को मैं हंसी मज़ाक़ कर ख़त्म कर देता, वही बात मुझे अब कुपित कर डालती है। मेरी तर्क-बुद्धि ही मुझे दग़ा दे जाती है। पहले मैं सिर्फ़ रुपये भर से नफ़रत करता था, अब धन से ही नहीं, रईसों से कटु हो जाता हूं मानो वे दोषी हों। पहले मैं हिंसा और अत्याचार से घृणा करता था अब मैं हिंसा का प्रयोग करनेवालों को घृणा की दृष्टि से देखता हूं, मानो हम नहीं, जो कि दूसरों में अच्छी भावनाएं जागृत करने में असमर्थ हैं, बल्कि केवल वे ही दोषी हैं। इस सबका अर्थ क्या है? यदि मेरे नये विचार और नयी भावनाएं बदली हुई मान्यताओं का फल हैं तो मेरी मान्यताओं में परिवर्तन का कारण क्या है? क्या असलियत यह है कि मैं बेहतर हो गया हूं और दुनिया बुरी हो गयी है, या यह है कि मैं अब तक अन्धा और बेपरवाह था? अगर परिवर्तन शारीरिक व मानसिक शक्तियों के क्षीण होने से आया है, तुम तो जानती हो कि मैं बीमार आदमी हूं और मेरा वज़न दिन पर दिन गिर रहा है, तो फिर मेरी हालत सचमुच दयनीय है क्योंकि इसका मतलब यह

हुआ कि मेरे नये विचार अस्वाभाविक और अस्वस्थ हैं और मुझे इनके लिए शरमिन्दा होना चाहिए, इन्हें तुच्छ समझना चाहिए..."

कात्या ने मुझे टोककर कहा: "इस सबसे तुम्हारी बीमारी का कोई सम्बन्ध नहीं है। बात सिर्फ़ यह है कि अब तुम्हारी आंखें खुल गयी हैं। बस। तुम अब वह देखते हो जो देखने से पहले तुम इनकार करते थे। मेरी राय में तुम्हें जो पहला काम करना चाहिए, वह है अपने परिवार को छोड़ देना, उससे हमेशा के लिए नाता तोड़ लेना।"

"तुम बेतुकी बात कर रही हो।"

"तुम अब उन्हें प्रेम नहीं करते। ढोंग क्यों करते हो? क्या इसी को परिवार कहते हैं? बिल्कुल नगण्य लोग! आज मर जायें तो कल कोई यह जाने भी नहीं कि वे हैं भी कि नहीं।"

कात्या मेरी पत्नी और बेटी से उतनी ही नफ़रत करती है, जितनी कि वे उससे। आजकल एक दूसरे से नफ़रत करने के अधिकार के सम्बन्ध में शायद ही बातें करना सम्भव है। पर कात्या का दृष्टिकोण अपनाकर अगर कोई इस अधिकार का अस्तित्व मान ले तो फिर यह अस्वीकार करना असम्भव हो जायेगा कि मेरी पत्नी व बेटी को जितना अधिकार कात्या से नफ़रत करने का है, उतना ही कात्या को उनका तिरस्कार करने का भी है।

"तुच्छ, नगण्य लोग!" वह दोहराती है। "तुमने आज खाना खाया? तुम्हें खाने के लिए बुलाने की याद उन्हें कैसे रह गयी? उन्हें तुम्हारे अस्तित्व की ही याद कैसे बनी हुई है?"

मैं कड़ाई से कहता हूं: "कात्या, इस तरह से बात करना बन्द करो।"

"और क्या तुम समझते हो कि उनके बारे में बात करने में मुझे कोई मजा आता है? मैं उनसे बिल्कुल अपरिचित होती तो और भी प्रसन्न होती। मेरी बात मान लो, प्यारे! सब छोड़छाड़कर चल दो। विदेश चले जाओ, और जितनी जल्दी चले जाओ उतना ही अच्छा।"

"कैसी बेतुकी सी बात है! तो विश्वविद्यालय का क्या होगा?"

"विश्वविद्यालय को भी तिलांजली दो। तुम्हें विश्वविद्यालय से मतलब? तुम्हें उससे क्या लेना-देना? तुम तीस साल से वहां पढ़ा रहे हो, और तुम्हारे शागिर्द हैं कहां? उनमें से कितने मशहूर वैज्ञानिक हुए? कोशिश

करके उन्हें गिनो तो! ऐसे डाक्टर पैदा करने के लिए जो दूसरों के अज्ञान का फ़ायदा उठाकर हज़ारों की दौलत जमा करना ही जानते हैं, प्रतिभासंपन्न और ईमानदार लोगों की ज़रूरत नहीं होती। यहां तुम्हारी ज़रूरत नहीं है।"

मैं दुखी होकर बोल पड़ता हूं: "हे भगवान! तुम कितनी दो टूक बात करती हो! अब तुम चुप हो जाओ, नहीं तो मैं चला जाऊंगा! ऐसी रूखी बातों का मैं जवाब क्या दूं, यह मेरी समझ में नहीं आता।"

नौकरानी आकर कहती है कि चाय मेज़ पर लगा दी गयी है। समोवार के पास बैठ हमारी बातचीत बदल जाती है। अपनी शिकायतें ख़त्म कर मैं बूढ़ों की दूसरी कमज़ोरी में मुब्तिला होता हूं – पुराने संस्मरण सुनाने की कमज़ोरी। अपने विगत की कहानियां मैं कात्या को सुनाता हूं और उससे बात करते करते मुझे अचम्भा होने लगता है कि मैं उसे वे बातें बता रहा हूं जिनकी याद होने का मुझे गुमान भी न था। वह सहानुभूतिपूर्ण प्रशंसा व अभिमान की मुद्रा में बैठी सांस रोके मेरी बातें सुना करती है। अपने धार्मिक पाठशाला के जीवन के क़िस्से और विश्वविद्यालय में प्रवेश के सपनों के बारे में बात करने का मुझे बड़ा चाव है।

मैं उसे बताता हूं: "धार्मिक पाठशाला के बगीचे में मैं घूमा करता, दूर किसी शराबख़ाने से गाने और हारमोनियम बजाने की धुनें हवा में तैरती हुई आतीं या तीन घोड़ों वाली गाड़ी पाठशाला की दीवाल के पास से तेज़ी से गुज़र जाती, उसकी घंटियां दूर तक झनझनाती रहतीं और यह मेरे सीने में ख़ुशी भर देने के लिए काफ़ी होता, सिर्फ़ सीने में ही नहीं, मेरे पेट, पैरों, हाथों सब में ख़ुशी भर जाती... मैं हारमोनियम या दूर जाती हुई घंटियों की आवाज़ सुनता और कल्पना करता कि मैं डाक्टर हूं, और एक से एक सुन्दर दृश्यों की कल्पना किया करता। और देखो मेरे सपने साकार हो गये। जितने की मैंने आशा की थी, उससे कहीं ज़्यादा मुझे मिला। तीस वर्ष तक प्रोफ़ेसर की हैसियत से मुझे स्नेह मिला, बढ़िया दोस्त मिले और सम्मान व ख्याति प्राप्त हुई। मैंने प्रेम जाना, लालसापूर्ण प्रेम में विवाह किया, संतान प्राप्त हुई। संक्षेप में, पीछे मुड़कर देखने में मुझे अपना जीवन सुन्दर चित्र की भांति लगता है जो किसी महान चित्रकार ने बनाया हो। मुझे अब सिर्फ़ करना इतना ही है कि इसका अंतिम दृश्य न बिगड़ जाये। इसके लिए ज़रूरी है कि मैं मरूं तो मर्द की

तरह। यदि मृत्यु कोई संकट है तो उसका सामना मुझे अध्यापक, वैज्ञानिक, ईसाई राज्य के नागरिक के अनुरूप शान्त व प्रफुल्ल आत्मा से करना चाहिए। पर मैं तो अंतिम दृश्य बिगाड़ रहा हूं। मैं डूब रहा हूं और तुम्हारी मदद के लिए दौड़ता हूं और तुम मुझसे कहती हो – डूबो, तुम्हें तो डूबना ही है।"

पर यकायक ड्योढ़ी की घण्टी बज उठती है। कात्या और मैं दोनों घण्टी की आवाज़ पहचानते हैं और कहते हैं: "वह मिख़ाईल फ़ेदोरोविच होगा।"

सचमुच ही, मिनट भर बाद आता मेरा भाषाविज्ञ मित्र मिख़ाईल फ़ेदोरोविच, लम्बा, सुगठित, पचास वर्षीय, घने सफ़ेद बाल और काली भवों वाला, दाढ़ी मूंछ सफ़ाचट। वह बहुत अच्छा व्यक्ति और बहुत सच्चा साथी है। वह एक प्राचीन कुलीन परिवार का है और उस परिवार का हर सदस्य भाग्यवान और प्रतिभाशाली रहा है, हर एक ने साहित्य और शिक्षा के इतिहास में महत्वपूर्ण योग दिया है। वह स्वयं चतुर, सुशिक्षित व प्रतिभाशाली है, पर उसमें कुछ सनक भी है। हम में से हर एक में थोड़ा बहुत अनोखापन तो होता ही है, पर उसकी सनकों में कुछ असाधारणता है और यह उसके मित्रों के लिए ख़तरे से ख़ाली नहीं है। उसके दोस्तों में मैं कई ऐसे लोगों को जानता हूं जो उसके सनकीपन के कारण उसके अगणित गुणों में से एक भी देख नहीं पाते।

कमरे में आकर वह दस्ताने धीरे धीरे उतारते हुए गहरी आवाज़ में बोलता है:

"नमस्कार। चाय पी जा रही है? बहुत अच्छा। कैसी बला की सरदी है।"

वह मेज़ पर बैठकर एक गिलास चाय लेकर फ़ौरन बात करना शुरू कर देता है। उसकी बातचीत का ख़ास गुण है चुहलबाज़ी की एक स्थायी धुन, दर्शन और ठिठोली का एक अद्भुत मिश्रण जो शेक्सपीयर के क़ब्र खोदनेवालों की याद दिलाता है। वह हमेशा गंभीर विषयों पर बात करता है पर बात करने में ढंग कभी गंभीर नहीं होता। उसकी आलोचना हमेशा कटु और गाली-गलौज भरी होती है पर उसका नम्रतापूर्ण, हंसोड़, मधुर लहजा गाली और कटुता का डंक ख़त्म कर देता है और थोड़ी ही देर में लोग उसकी बातचीत के आदी हो जाते हैं। हर शाम वह विश्वविद्यालय से

आधे दर्जन क़िस्से बटोर लाता है और जैसे ही आकर बैठता है बिना नागा उन्हें सुनाना शुरू कर देता है।

परिहासपूर्ण ढंग से अपनी काली भवें मटकाते हुए, वह लम्बी सांस लेकर कहता है: "या ख़ुदा! दुनिया में कैसे मसख़रे मिलते हैं!"

"क्या हुआ?" कात्या कहती है।

"आज जब मैं व्याख्यान-हाल से बाहर निकल रहा था, मुझे वह बूढ़ा बेवक़ूफ़ न० न० मिल गया... घोड़ों की तरह अपनी ठोड़ी बाहर की ओर निकाले वह बढ़ा आ रहा था, बदस्तूर किसी ऐसे आदमी की तलाश में जिससे वह अपने सिर-दर्द, अपनी बीवी, अपने छात्रों की जो दरजे में नहीं आते, शिकायत करे। उसने मुझे देख लिया है, मैंने सोचा, अब ख़ैर नहीं। अब उससे छुटकारा मुश्किल है..."

और इसी तरह क़िस्सा आगे बढ़ता है। या फिर वह कुछ इस तरह शुरू करता है:

"मैं कल ज़० ज़० के सार्वजनिक भाषण के वक़्त मौजूद था। मुझे सचमुच इस बात पर ताज्जुब है कि हमारा विश्वविद्यालय, किसी को इसकी कानों-कान ख़बर न हो, कैसे ज़० ज़० जैसे मूर्खों को सार्वजनिक रूप से दिखाने का ख़तरा मोल लेता है। अरे! वह तो सारे यूरोप भर में मूर्ख मशहूर है। आप सारा यूरोप छान मारें, दिया लेकर ढूंढ़ आयें, पर ऐसा मूर्ख आपको न मिलेगा! आप जानते हैं, वह बोलता कैसे है मानो मिठाई चूस रहा हो... फिर वह घबरा जाता है, अपना ही लिखा हुआ भाषण मुश्किल से पढ़ पाता है; विचार उसके इस रफ़्तार से चलते हैं जैसे बड़ा पादरी साइकिल पर चलता है और सबसे बदतर बात तो यह है कि कोई भी नहीं समझ पाता कि वह कहना क्या चाहता है। पोखर के पानी की तरह प्रवाहहीन उसका भाषण उतना ही उबानेवाला होता है, जितना विश्वविद्यालय का दीक्षान्त भाषण और इससे बदतर और क्या होगा?"

और यहां से वह बात बदलकर दूसरी दिशा में चल निकलती है:

"कोई तीन साल पहले, यह निकोलाई स्तेपानिच को भी याद होगा, यह दीक्षान्त भाषण मुझे करना पड़ा। गरमी, उमस, मेरा कोट बग़लों पर तंग, ओफ़! मैंने आध घण्टे पढ़ा, घण्टे भर, डेढ़ घण्टे, दो घण्टे पढ़ा... मैंने सोचा: 'चलो, ख़ुदा का शुक्र है कि कुल दस सफ़हे और बचे हैं पढ़ने को।' और आख़िरी चार सफ़हे तो बिल्कुल ग़ैरज़रूरी थे, उन्हें तो मैं निकलवा देना चाहता था, तो बचे कुल छः। मैं यह सोच ही

रहा था, आप मुलाहिज़ा फ़रमायें! मैंने आंख उठाकर श्रोताओं की ओर ताका, वहां अगली क़तार में ही तमग़े लगाये एक जनरल और एक बड़े पादरी बग़ल बग़ल डटे थे। ऊब के मारे बेचारे अकड़ से गये थे, आंखें खुली रखने के लिए वे फाड़-फाड़कर देख रहे थे और साथ ही यह भी दिखाना चाहते थे कि वे भाषण सुन और समझ रहे हैं और मेरी बात पसन्द कर रहे हैं। मैंने सोचा, अच्छा, बच्चू तुम्हें पसन्द है तो और लो। बस! मैं आख़िरी चार सफ़हे भी पढ़ गया।"

जब वह बात करता है तो सिर्फ़ उसकी आंखें और भवें ही हंसती लगती हैं जैसा कि व्यंग्य छेड़नेवालों का आम ढंग होता है। ऐसे मौक़ों पर उसकी आंखों में क्रोध या चिड़चिड़ाहट नहीं होती, उनमें तो सिर्फ़ तेज़ी और लोमड़ी जैसे कांइयांपन की झलक होती है जैसी कि बहुत सचेत लोगों के चेहरों पर ही दिखाई देती है। उसकी आंखों का ज़िक्र करते हुए मैं उसकी एक और विलक्षणता की बात जोड़ दूं। जब भी वह कात्या से गिलास लेता है या उसकी बातें सुनता है या यदि वह क्षण भर के लिए कमरे से बाहर गयी तो उसे जाते निहारता है, तब मुझे उसकी आंखों में विनय, प्रार्थना, सादगी की झलक दिखाई पड़ती है...

नौकरानी समोवार हटाकर मेज़ पर पनीर का एक बहुत बड़ा टुकड़ा, कुछ फल और क्रीमिया में बनी शैम्पेन शराब की एक बोतल ला रखती है। वह शराब कुछ मज़ेदार तो नहीं, पर क्रीमिया में रहते समय कात्या इसकी आदी हो गयी थी। मिख़ाईल फ़ेदोरोविच रैक में से दो जोड़ी ताश को निकालकर 'पेशेंस' खेलने लगता है। उसका दावा है कि पेशेंस के कुछ खेलों में बड़े ध्यान और एकाग्रचित्तता की दरकार होती है। पर ताश बिछाते वह बराबर बातें करता रहता है। कात्या बराबर ताशों पर निगाह लगाये रहती है और बोले बिना चेहरे के इशारों से उसकी मदद करती जाती है। शाम भर में वह दो पेगों से ज़्यादा शराब कभी नहीं पीती, मैं चौथाई भरे गिलास से चुसकियां लिया करता हूं। बाक़ी शराब मिख़ाईल फ़ेदोरोविच के हिस्से में पड़ती है जो नशे में आये बिना ढेरों शराब पी सकता है।

ताश खेलते समय हम लोग तरह तरह की समस्याएं हल किया करते हैं, जो मुख्यतः बड़ी जटिल होती हैं, और हमारी ज्यादातर जुमलेबाज़ी हमारी प्रियतम वस्तु – विज्ञान के ख़िलाफ़ ही होती है। धीरे धीरे एक-एक दो-दो शब्द बोलता हुआ मिख़ाईल फ़ेदोरोविच कहता है:

"भगवान का शुक्र है, विज्ञान की उम्र ख़त्म हुई, इसका ज़माना लद गया। हां... मानव-जाति अब इसके स्थान पर किसी दूसरी वस्तु को प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता समझना शुरू कर रही है। विज्ञान अन्ध-विश्वास की भूमि में उपजा, अन्धविश्वास पर पनपा और अन्धविश्वासों का ही निचोड़ बन गया है, जैसे कि विज्ञान की दादियां – अध्यात्म, अधिभूतवद तथा दर्शन। आख़िर, विज्ञान ने इंसानियत को दिया क्या है? विद्वान यूरोपवासियों और विज्ञान के बिना ही काम चलानेवाले चीनियों में जो अंतर है वह बहुत मामूली, बिल्कुल ऊपरी। चीनियों के लिए विज्ञान की मुतलक़ ज़रूरत नहीं और इससे उनका क्या बिगड़ा?"

"मक्खियों को भी विज्ञान की कोई दरकार नहीं," मैं कहता हूं, "पर इससे साबित क्या होता है?"

"नाराज़ न होओ, निकोलाई स्तेपानिच। इस तरह किसी और के सामने थोड़े ही बात करूंगा... जितना तुम समझते हो, मैं उससे ज़्यादा सतर्क हूं, ऐसी बातें मैं खुले आम कहने का गुमान भी नहीं कर सकता। भगवान बचाये! अधिकांश जनता इस अन्धविश्वास से चिपटी रहना चाहती है कि विज्ञान और कला, खेती और व्यापार से, उद्योग धन्धों से ऊंची चीज़ें हैं। हमारी बिरादरी इस अन्धविश्वास पर ही पनपती है और उसे ख़त्म करना हमारा तुम्हारा काम नहीं है, भगवान बचाये!"

खेल के दौरान जवानी की भी ख़ूब ख़बर ली जाती है।

मिख़ाईल फ़ेदोरोविच गहरी सांस लेकर कहता है: "जनरुचि गिरती जा रही है, मैं आदर्शों व वैसी ऊंची बातों के बारे में नहीं सोच रहा, मैं तो कहता हूं कि अगर लोग ठीक से सोच और काम कर पाते! आजकल हालत तो वैसी ही है जैसी कवि ने बतायी जब उसने लिखा: 'नयी पीढ़ी को मैं उदासी से देख रहा हूं'।"

"हां, नयी पीढ़ी में बहुत ही ज़्यादा गिरावट आयी है," कात्या उससे सहमत होती हुई कहती है, "पिछले पांच या दस साल ही ले लो, क्या इस अवधि के अपने शिष्यों में से एक का भी नाम ले सकते हो जो प्रतिभाशाली रहा हो?"

"और प्रोफ़ेसरों की तो मैं जानता नहीं, पर अपने शिष्यों में से किसी भी ऐसे छात्र की मुझे तो याद आ नहीं रही।"

कात्या कहना जारी रखती है: "अपने समय में मैं अनगिनत छात्रों,

तुम्हारे युवा विद्वानों, ढेरों अभिनेताओं से मिली हूं... और आप क्या समझते हैं? मुझे एक भी दिलचस्प व्यक्ति नहीं मिला, वीरों या प्रतिभाशाली व्यक्तियों की तो बात ही छोड़िये। वे सब हैं अति साधारण, नीरस, घमण्डी..."

गिरावट की इस बातचीत से मुझे हमेशा लगता है मानो संयोगवश मैंने अपनी बेटी के बारे में कोई अप्रिय बात सुन ली हो। शानदार भव्य विगत और वर्तमान आदर्शहीनता जैसे पिटे-पिटाये अति साधारण गिरावट के तर्कों पर आधारित ऐसे व्यापक आरोपों से मुझे खीज होती है। कोई भी आरोप चाहे वह महिलाओं की मौजूदगी में ही क्यों न लगाया जाये, बहुत सोच समझकर और ठीक ठीक लगाया जाना चाहिए, नहीं तो वह आरोप नहीं, चुग़ली हो जाती है जो भले लोगों को शोभा नहीं देती।

मैं बूढ़ा हो गया हूं और इधर तीस वर्ष से काम कर रहा हूं, लेकिन मुझे न गिरावट नज़र आती है, न आदर्शहीनता और न मैं यह समझता हूं कि वर्तमान विगत से बुरा है। दरबान निकोलाई के अनुसार, और इस मामले में उसके अनुभव का वज़न है, आज के छात्र पहले के छात्रों से न अच्छे हैं और न बुरे।

अगर कोई मुझसे पूछे कि अपने आजकल के छात्रों में मैं क्या बात नापसन्द करता हूं तो मैं फ़ौरन जवाब न दे पाऊंगा और ज्यादा कुछ कह भी न सकूंगा, पर मैं काफ़ी स्पष्ट बातें कहूंगा। मैं उनके दोषों से परिचित हूं, इसलिए मुझे गोलमोल पिटी-पिटायी बातें कहने की ज़रूरत नहीं है। उनका इतना तम्बाकू और शराब पीना और इतनी देर बाद शादी करना मुझे पसन्द नहीं है। मुझे उनकी लापरवाही अच्छी नहीं लगती और न उपेक्षा की वह भावना जिसकी वजह से वे अक्सर भूखे छात्रों की अपने बीच मौजूदगी के बारे में लापरवाह हो जाते हैं और परावलम्बी छात्र सहायता समिति का बक़ाया चन्दा नहीं देते। उन्हें विदेशी भाषाओं का ज्ञान नहीं और रूसी भाषा में भी वे ठीक से अपने विचार व्यक्त नहीं कर पाते। अभी कल ही हाइजीन के मेरे सहयोगी प्रोफ़ेसर शिकायत कर रहे थे कि अब उन्हें सिर्फ़ इसलिए पहले से दुगुने भाषण देने पड़ते हैं कि छात्रों की भौतिक विज्ञान की जानकारी कम होती है और ऋतु-विज्ञान में तो वे बिल्कुल कोरे होते हैं। नये लेखों के प्रभाव में, चाहे वे श्रेष्ठ न भी हों, वे बहुत जल्दी आ जाते हैं लेकिन शेक्सपीयर, मारकस औरेलियस,

एपिकटेटस या पासकल जैसे क्लासिकल लेखकों के प्रति वे उपेक्षा बरतते हैं। बड़े व छोटे के बीच फ़र्क़ समझ पाने की क्षमता के अभाव में ही उनमें सहज बुद्धि की कमी सबसे ज़्यादा प्रकट होती है। लोगों के पुनर्वासन जैसे सामाजिक ढंग के जटिल प्रश्नों को प्रयोग और वैज्ञानिक जांच के आधार पर हल करने की जगह, और यही तरीक़ा उन्हें सबसे ज़्यादा आसानी से प्राप्त है और उनके काम व पेशे के अनुरूप है, वे सिर्फ़ चन्दे की फ़ेहरिस्तें बनाया करते हैं। स्वावलंबन, स्वतंत्रता और निजी पहलक़दमी विज्ञान में भी उतनी ही ज़रूरी होती हैं जितनी कि उदाहरणार्थ कला या व्यवसाय में, पर वे ख़ुशी ख़ुशी डाक्टर के सहकारी, प्रयोगशाला कर्मचारी, अस्पताल के बाहरी डाक्टर या ऐसी ही दूसरी नौकरियां कर लेते हैं और चालीस चालीस वर्ष की उम्र तक उन्हीं नौकरियों में सन्तुष्ट बने रहते हैं। मेरे शिष्य और छात्र असंख्य हैं, पर सहायक या वारिस कोई नहीं, और इसीलिए मैं यद्यपि उनकी प्रशंसा करता हूं, उन्हें प्यार करता हूं पर उन पर अभिमान नहीं कर पाता। और ऐसी ही अनेक और बातें हैं...

पर ये दोष, वे संख्या में चाहे जितने अधिक हों, केवल भीरु या कमज़ोर दिल व्यक्तियों में ही निराशा या निंदा की भावना पैदा कर सकते हैं। ये सब क्षणिक और संयोगवश होते हैं और पूरी तरह परिस्थिति के अधीन होते हैं। उनके दूर होने या नये दोषों के पैदा होने के लिए दस वर्ष बहुत काफ़ी होते हैं, जिनसे दूसरे भीरु लोग आतंकित हो उठेंगे। छात्रों के दोषों पर मैं बहुधा खिन्न हो उठता हूं, पर यह खिन्नता उस आह्लाद की तुलना में कुछ भी नहीं है जो मैंने तीस वर्षों में अपने छात्रों से बातें कर, उन्हें पढ़ाकर, उनके आपसी सम्बन्धों को देखकर और बाहरी दुनिया के लोगों से उनकी तुलना कर प्राप्त किया है।

मिख़ाईल फ़ेदोरोविच की व्यंग्यपूर्ण जुमलेबाज़ी जारी रहती है, कात्या उसे सुना करती है और दोनों यह नहीं देख पाते कि अपने निकट के लोगों की बदगोई करनेवाला यह ऊपर से बिल्कुल निरीह दीखनेवाला मनोरंजन धीरे धीरे उन्हें कितनी गहरी खाई की ओर खींच लिये जा रहा है। उन दोनों में से कोई भी यह नहीं देख पाता कि साधारण बातचीत धीरे धीरे ताने मारने और बोली करने में बदल रही है और वे सचमुच चुग़ली खाने लगते हैं।

मिख़ाईल फ़ेदोरोविच कहता है: "कैसे अजब लोगों से मुलाक़ात होती

है। कल मैं येगोर पेत्रोविच से मिलने गया, वहां आपका तीसरे वर्ष का, मेरा ख़्याल है, एक मेडिकल छात्र मिला। क्या चेहरा था उसका! गम्भीर, घोर चिन्तन की छाप उसपर लगी हुई थी। हम लोग बातें करने लगे। मैंने कहा: 'सुनो, भाई। मैंने कहीं पढ़ा है कि किसी जर्मन ने, मुझे उसका नाम याद नहीं पड़ रहा, इन्सान के दिमाग़ से एक नया रासायनिक पदार्थ तैयार किया है, जिसका नाम है 'मूर्खोसिव'। और आप ज़रा ग़ौर करें! उसे मेरी बात का यक़ीन हो गया, उसके चेहरे पर श्रद्धा का भाव छा गया। 'देखो! विज्ञान क्या क्या कर सकता है!'–यह भाव उसके चेहरे पर अंकित था। एक दिन मैं एक नाटक देखने गया था। जहां मैं बैठा था उसके ठीक सामने अगली क़तार में दो व्यक्ति बैठे थे। एक क़ानून का विद्यार्थी मालूम पड़ता था, और बिखरे हुए बालों वाला व्यक्ति मेडिकल छात्र मालूम होता था। यह मेडिकल छात्र बुरी तरह पिये हुए था। नाटक की ओर उसका ध्यान नहीं था। वहां बैठा ऊंघ रहा था। पर जब कभी कोई अभिनेता ऊंची आवाज़ में कोई स्वगत संवाद बोलता, या सिर्फ़ अपनी आवाज़ ऊंची भर कर देता तो डाक्टरी का छात्र चौंककर बग़लवाले के कोहनी मारकर पूछता: 'क्या कहा उसने? उच्चाशयपूर्ण था वह?' क़ानून का छात्र जवाब देता: 'बहुत ही उच्चाशयपूर्ण!' तब डाक्टरी छात्र चिल्ला पड़ता: "शाबाश! उच्चाशयपूर्ण। शाबाश!' यह शराबी मूर्ख नाटकघर जाता है कला के लिए नहीं, बल्कि, आप ग़ौर करें, उच्चाशयता देखने। उसे उच्चाशयता की जो ज़रूरत है।"

कात्या सुनकर हंसती है। उसकी हंसी में कुछ अजीब बात होती है–वह तेज़ी के साथ बड़ी लय में सांस लेना निकालना होती है, मानो वह हारमोनियम बजा रही हो, ख़ुशी का उसके चेहरे पर भाव होता है तो सिर्फ़ नथुनों में। मेरा जी उदास हो जाता है, तबीयत बैठने लगती है, मेरी समझ में नहीं आता कि क्या कहूं। मैं ग़ुस्से में आ जाता हूं, कुरसी से उछल पड़ता हूं और चिल्लाता हूं:

"ख़त्म करो! यहां तुम दोनों मेढ़कों की तरह अपनी सांस से हवा को ज़हरीली बना रहे हो। काफ़ी हुई यह बकवास!"

और मैं उनकी चुग़लख़ोरी ख़त्म होने का इन्तज़ार किये बिना ही घर चलने को तैयार हो जाता हूं। घर जाने का वक़्त भी हो चुका होता है–दस बज चुके होते हैं।

मिख़ाईल फ़ेदोरोविच कहता है: "मैं कुछ देर और बैठूंगा। बैठूं न, येकातेरीना व्लादीमिरोव्ना?"

"हां, ज़रूर," कात्या जवाब देती है।

"अच्छा," वह लैटिन भाषा में कहता है, "तो फिर मेहरबानी कर शराब की एक बोतल और निकलवाओ।"

हाथ में मोमबत्तियां लिये वे दोनों मुझे ड्योढ़ी तक छोड़ने आते हैं और जब मैं ओवरकोट पहनता होता हूं, मिख़ाईल फ़ेदोरोविच कहता है:

"तुम इधर हाल में बहुत दुबले और बूढ़े लगने लगे हो, निकोलाई स्तेपानोविच। बात क्या है? क्या तुम बीमार हो?"

"हां, कुछ।"

और कात्या ग़मज़दा आवाज़ में कहती है: "और किसी डाक्टर को दिखायेंगे नहीं..."

"तुम किसी डाक्टर की राय क्यों नहीं लेते? इस तरह तो काम नहीं चलेगा न! मेरे दोस्त, ईश्वर भी इन्हीं की मदद करता है जो ख़ुद अपनी मदद अपने आप करते हैं। अपने परिवार से मेरा नमस्कार कहना और क्षमा मांग लेना कि मैं आ नहीं सका। विदेश जाने के पहले दो एक दिन में ही मैं ख़ुद आकर अलविदा कहूंगा। ज़रूर आऊंगा! मैं अगले हफ़्ते ही तो जा रहा हूं।"

कात्या के यहां से मैं खीजा हुआ लौटता हूं, अपनी बीमारी की चर्चा से घबराया हुआ और अपने से नाराज़। मैं सोचता हूं कि आख़िर मैं अपने किसी सहयोगी को दिखा क्यों न डालूं अपने को? तब फ़ौरन मेरे दिमाग़ में तसवीर आ जाती है कि मेरी जांच करने के बाद मेरा सहयोगी चुपचाप खिड़की के पास चला जायेगा, कुछ देर सोचता रहेगा, फिर मेरी ओर मुड़कर अपने चेहरे से सच्चाई का पता न चलने देने की कोशिश करता हुआ बहुत साधारण आवाज़ में कहेगा: "जहां तक मैं देख पाया हूं, कोई खास बात नहीं है, पर मेरे सहयोगी, तब भी मैं तुम्हें काम बन्द करने की ही सलाह दूंगा..." और इससे मेरी आख़िरी आशा भी ख़त्म हो जायेगी।

हम में से कौन आशा नहीं लगाता? अब जब मैं अपना इलाज अपने आप करता हूं, तो मैं कभी कभी आशा करने लगता हूं कि मेरा अज्ञान

ही मुझे धोखा दे रहा है, मेरे पेशाब में जो शक्कर और एलबुमिन आ रहे हैं, उनके बारे में मैं ग़लती कर रहा हूं, मेरे दिल की जो हालत है, उसके बारे में मुझे ग़लतफ़हमी है, दो बार सवेरे मुझे सूजन जो प्रकट हो चुकी है, वे भी ग़लत समझ के कारण। शोकाकुल व्यक्तियों की सी लगन से जब मैं रोग-निदान की पुस्तकें पलटकर अपने लिए नित्य नये नुस्ख़े तय करता हूं, तो मैं बराबर सोचा करता हूं कोई सचमुच फ़ायदेमन्द दवा निकल आयेगी। यह सब कितना ओछा है।

आसमान में चाहे बादल छाये हों, चाहे चांद तारे चमक रहे हों, मैं उधर देखता हुआ सोचता हूं कि जल्दी मौत आकर मुझे समेट लेगी। सोचा जा सकता है कि ऐसे समय मेरे विचार साफ़, आसमान जैसे स्वच्छ व गहरे होंगे... पर ऐसा कुछ भी नहीं होता। मैं अपने, अपनी बीवी, लीज़ा, ग्नेकेर, अपने छात्रों, लोगों के बारे में सोचता हूं। मेरे विचार ओछे और क्षुद्र होते हैं, मैं स्वयं अपने को धोखा देने की कोशिश करता हूं और इस बीच लगातार जीवन के प्रति मेरा जो दृष्टिकोण है वह प्रख्यात अरकचेयेव के उन शब्दों से व्यक्त होता है जो उसने एक निजी पत्र में लिखे थे: "दुनिया की हर अच्छाई में कोई न कोई बुराई होती होगी और बुराई अच्छाई पर छायी रहती है।" दूसरे शब्दों में, हर चीज़ घृण्य है, ज़िन्दगी में अब कुछ रहा नहीं और अभी तक व्यतीत बासठ वर्ष बिल्कुल बेकार गये। जब मुझे अपने ऐसे विचारों का आभास होता है तब मैं यह सोचने की कोशिश करता हूं कि ये विचार तो संयोग से आ गये हैं और अभी अभी बदल जायेंगे, मेरे दृष्टिकोण में इनका कोई स्थायी स्थान नहीं है, लेकिन अगले ही क्षण मैं सोचता हूं:

"यदि बात ऐसी है, तो तुम उन दोनों मेंढ़कों के पास हर शाम क्यों जाते हो?"

और मैं क़सम खाता हूं कि फिर कभी कात्या से मिलने नहीं जाऊंगा, हालांकि मुझे इस बात का बोध बराबर रहता है कि कल ही मैं फिर जाऊंगा कात्या के पास।

दरवाज़े की घण्टी बजाते समय और बाद में जब मैं ऊपर जाता हूं, तब मुझे लगता है कि अब मेरा कोई परिवार नहीं है और न उससे मुझे कोई दिलचस्पी ही है। स्पष्ट है कि अरकचेयेव के शब्दों से आये नये विचार मेरे व्यक्तित्व में संयोगजनक या अस्थायी स्थान नहीं रखते बल्कि

मेरे पूरे अस्तित्व पर नियंत्रण करते हैं। अंतरात्मा से परेशान, दुखी, थकान से चूर, हाथ पैर हिलाये बिना मानो मेरे ऊपर मनों का बोझ हो, मैं बिस्तर में घुसता हूं और फ़ौरन सो जाता हूं।

और फिर – अनिद्रा...

४

गर्मियां आने के साथ जीवन बदल जाता है।

एक सुहावने सवेरे लीज़ा मेरे कमरे में आकर मज़ाक़ करती हुई कहती है: "पधारें, हुज़ूर! सब तैयार है।"

"हुज़ूर" बाहर सड़क पर ले जाये जा रहे हैं और गाड़ी पर घुमाये जा रहे हैं। गाड़ी में आगे बढ़ते निठल्लेपन में मैं साइन-बोर्डों को दाहिने से बायें उलटे पढ़ता हूं – "सराय" को "यारस"। यह नाम किसी महारानी के लिए बहुत उपयुक्त होगा – शाहज़ादी यारस। शहर छोड़ खुले में पहुंचते ही एक क़ब्रिस्तान दिखाई पड़ता है और इसका मुझपर ज़रा भी असर नहीं पड़ता, हालांकि बहुत शीघ्र मैं ख़ुद यहां आकर सोऊंगा। हमारा रास्ता एक जंगल में होकर गुज़रता है और फिर खुला खेत आ जाता है। मुझे किसी चीज़ में दिलचस्पी नहीं होती। दो घण्टे की सैर के बाद "हुज़ूर" एक देहाती बंगले में ले जाये जाते हैं और वहां निचले तल्ले के एक छोटे से लक़दक़ कमरे में बैठाये जाते हैं जिसकी दीवालें नीली हैं।

रात बदस्तूर अनिद्रा में कटती है, पर सवेरे जागकर बीवी की बातचीत सुनने की जगह मैं बिस्तर पर ही लेटा रहता हूं। मैं सो नहीं रहा हूं, लेकिन अर्ध सुषुप्तावस्था में हूं जब मैं जानता हूं कि मैं सो नहीं रहा हूं फिर भी सपने देखता जाता हूं। दोपहर को मैं उठता हूं और आदतन अपनी मेज़ पर जा बैठता हूं, हालांकि काम नहीं करता और कात्या द्वारा भेजी गयी फ़्रांसीसी किताबों से जी बहलाता हूं। रूसी लेखकों को पढ़ना ज्यादा बड़ी देशभक्ति होगी, पर मैं स्वीकार करता हूं कि मुझे वे विशेष पसन्द नहीं हैं। दो-चार जाने-माने बड़े लेखकों को छोड़कर बाक़ी सारा आधुनिक साहित्य मुझे साहित्य नहीं, एक घरेलू धन्धा मालूम पड़ता है जो सिर्फ़ जनता की सहिष्णुता पर टिका हुआ है और जिसकी कोई मांग नहीं है। घरेलू धन्धों की अच्छी से अच्छी चीज़ भी कभी बहुत बढ़िया नहीं कही

जा सकती और कभी भी ईमानदारी के साथ उसकी प्रशंसा "किन्तु" लगाये बिना नहीं की जा सकती। यही बात उस पूरे नये साहित्य पर लागू होती है जो मैं पिछले दस-पन्द्रह वर्षों में पढ़ चुका हूं। उनमें कुछ भी उल्लेखनीय नहीं है, ऐसा नहीं है जिसमें "किन्तु" जोड़ने की ज़रूरत न पड़े। चतुरतापूर्ण, उदात्त किन्तु प्रतिभाहीन; प्रतिभापूर्ण, उदात्त किन्तु चातुर्यहीन; चतुर व प्रतिभासम्पन्न किन्तु उदात्त नहीं।

यह बात नहीं कि मैं फ़्रांसीसी किताबों को उदात्त, चतुरतापूर्ण और प्रतिभापूर्ण मानता हूं। उनसे भी मुझे संतुष्टि नहीं होती। किन्तु वे कम से कम उतनी नीरस नहीं होतीं जितनी कि रूसी किताबें और उनमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता का वह विशिष्ट गुण मिलना असाधारण बात नहीं जो किसी रूसी लेखक में उपलब्ध नहीं। इधर लिखी गयी किताबों में मुझे किसी ऐसी किताब की याद नहीं पड़ती जिसमें लेखक ने पहले पन्ने से ही अपने पर प्रतिबंध लगाने और अपनी अन्तरात्मा से सौदा करने की कोशिश जानबूझकर न की हो। कोई लेखक नंगे शरीर का वर्णन करने में झिझकता है, कोई मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में बुरी तरह फंसा हुआ है, कोई "मानव के प्रति सहिष्णु दृष्टिकोण" रखने को आतुर है, तो कोई जान-बूझकर प्राकृतिक दृश्यों के वर्णनों में पन्ने के पन्ने रंग डालता है ताकि उसमें विशेष रुझान होने का सन्देह किसी को न हो... कोई लेखक अपने को अपनी रचनाओं में हर हालत में मध्यवर्गीय साबित करने पर तुला हुआ है, कोई उच्च कुल का दिखाने का ढोंग करता है और इसी तरह और लेखक भी... इन लेखकों में हमें सावधानी मिलती है, अतिसतर्कता मिलती है, ढंग मिलता है पर आज़ादी नहीं मिलती, जैसी तबीयत हो वैसा लिखने का साहस नहीं दिखाई पड़ता और इसीलिए मौलिकता नहीं मिलती।

यह बात उस साहित्य पर लागू होती है जो ललित साहित्य के नाम से प्रसिद्ध है।

जहां समाजशास्त्र या कला आदि विषयों पर रूसी गम्भीर निबन्धों का नम्बर आता है, मैं उन्हें डर के मारे बचा जाता हूं। बचपन व जवानी में मुझे दरबानों व थियेटरों के ड्योढ़ीदारों से डर लगता था और यह डर मुझमें आज तक क़ायम है। मैं अब भी उनसे डरता हूं। लोग कहते हैं कि डर अनजान चीजों से ही लगता है। और सचमुच यह समझना मुश्किल ही है कि दरबान व थियेटरों के ड्योढ़ीदार इतने टीमटामवाले, घमण्डी और

अशिष्ट क्यों होते हैं। वही बेबूझ डर मुझे उन गम्भीर लेखों के पढ़ने से लगता है। उनकी असाधारण तड़क-भड़क, उनकी विराट कृत्रिमता, विदेशी लेखकों के संबंध में बड़े परिचित ढंग से बात करना, बिना कोई खास बात कहे लम्बी-चौड़ी हांकने की उल्लेखनीय प्रतिभा—ये सब बातें मेरी समझ में नहीं आतीं और मुझे आतंकित कर देती हैं। ये बातें उस विनयपूर्ण शिष्ट ढंग के बिल्कुल विपरीत हैं जिसका मैं आदी हूं और जिसे डाक्टरी या प्रकृति-विज्ञान के विषय पर लिखनेवाले लोगों ने अपनाया है। गम्भीर रूसी लेखकों द्वारा अनूदित या सम्पादित ग्रंथों को पढ़ने में भी मुझे उतनी कठिनाई होती है, जितनी स्वयं उनके लेख पढ़ने में। उनकी भूमिकाओं की बड़प्पन की शैली, अनुवादकों की ढेरों टिप्पणियां जिनके कारण मैं मूल पुस्तक पर एकाग्रतापूर्वक ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता, प्रश्न-सूचक चिह्न व कोष्ठकों में दिये गये संकेत व हवाले, जिनकी उदार अनुवादक लेख या पुस्तक में बौछार कर देता है—ये सब मुझे लेखक के व्यक्तित्व और पाठक की स्वतंत्रता पर हमले मालूम पड़ते हैं।

ज़िला अदालत में मुझे एक बार एक मामले में विशेषज्ञ की हैसियत से राय देने जाना पड़ा। मध्यान्तर में मेरे एक सहयोगी विशेषज्ञ ने मेरा ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि प्रोक्यूरेटर किस धृष्टता से अभियुक्तों को संबोधित कर रहा था, जिनमें दो शिक्षित महिलाएं भी थीं। मैंने अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया, जब मैंने जवाब में अपने सहयोगी से कहा कि यह धृष्टता उस बरताव से ज्यादा बुरी नहीं है जो गम्भीर विषयों के लेखक एक दूसरे के प्रति करते हैं। वास्तव में, यह धृष्ट व्यवहार इतना स्पष्ट है कि इसके सम्बन्ध में चुपचाप नहीं रहा जा सकता। या तो वे एक दूसरे के प्रति व दूसरे आलोच्य लेखकों के प्रति ऐसे अत्युक्तिपूर्ण आदर से काम लेते हैं, जो बिल्कुल दासता-सी लगती है, या इसके विपरीत, उनकी इतनी उपेक्षा करते हैं जितनी कि मैं अपनी इस डायरी और अपने मन में अपने भावी दामाद ग्नेकेर की भी नहीं करता। पागलपन, नापाक इरादों, यहां तक कि हर तरह के अपराधों के आरोप इन गम्भीर लेखों के साधारण अलंकार हैं। और इन सब का प्रयोग होता है, जैसा कि तरुण डाक्टर अपने लेखों में लैटिन भाषा में कहा करते हैं "अंतिम तर्क" के रूप में। ऐसा रवैया तरुण पीढ़ी के लेखकों की नैतिकता को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकता और यही कारण है कि हमारे ललित साहित्य को

पिछले दस – पन्द्रह वर्षों में विभूषित करनेवाली नयी पुस्तकों में ऐसे नायकों को, जो बहुत ज्यादा वोद्का पिया करते हैं और ऐसी नायिकाओं को, जो सच्चरित्र नहीं होतीं, पाकर मुझे तनिक भी आश्चर्य नहीं होता।

मैं फ़्रांसीसी किताबें पढ़ रहा हूं और खुली खिड़की के बाहर देखता जाता हूं। घर के सामने के बगीचे की चहारदीवारी के अंदर दो-तीन सूखे-से पेड़ और उसके बाहर सड़क और चीड़ के जंगल की एक चौड़ी पट्टी तक खेत मुझे दिखाई पड़ता है। मुझे अक्सर भूरे बालों वाले, फटे कपड़े पहने एक लड़का और एक लड़की दिखाई पड़ते हैं जो चहारदीवारी पर चढ़ते हैं और मेरे गंजे सिर पर हंसते हैं। उनकी चमकीली आंखों से यह विचार झलकता दिखाई पड़ता है कि इस गंजे को तो ज़रा देखो। सिर्फ़ ये ही लोग हैं जो मेरे पद और प्रतिष्ठा की तनिक भी परवाह नहीं करते।

अब मेरे पास मिलनेवाले प्रतिदिन नहीं आते। मैं सिर्फ़ निकोलाई व प्योत्र इग्नात्येविच के बारे में कहूंगा। निकोलाई अक्सर छुट्टी के दिनों में मुझसे मिलने आता है, किसी काम का बहाना करके, पर वास्तव में मुझसे मिलने। वह बहुत नशे में होता है, जो बात जाड़ों में उसके साथ कभी नहीं होती।

बाहर ओसारे में उससे मिलने के लिए जाते हुए मैं पूछता हूं: "कहो, क्या हाल-चाल है?"

अपना हाथ सीने पर रखता हुआ और प्रेमियों की भांति विह्वल आह्लाद से मुझे घूरता हुआ वह कहता है: "हुज़ूर! ईश्वर साक्षी है! ख़ुदा मुझे ग़ारत करे! Gaudeamus igitur juvenestus!"*

और वह आतुरता से मेरे कन्धे, कोट की बांहें और बटन चूमता है।

मैं पूछता हूं: "वहां सब ठीक है न?"

"हुज़ूर! ख़ुदा गवाह है..."

वह लगातार ईश्वर का नाम लेता है। शीघ्र ही मैं उससे ऊब जाता हूं और उसे खाने के लिए रसोईघर भेज देता हूं। प्योत्र इग्नात्येविच भी छुट्टियों के दिन ही मुझसे मिलने और अपने विचार बताने आता है। वह आम

---

*छात्रों के एक पुराने गीत की पहली पंक्ति को वह ग़लत-सलत गुनगुनाता है। इस पंक्ति का मतलब है: "ख़ुश रहें हम सब जब तक जवानी है" (लैटिन भाषा में) – सं०

तौर पर मेरी मेज़ के पास आ बैठता है। साफ़-सुथरा, विनयशील, विवेकपूर्ण, टांग पर टांग रखने या मेज़ पर झुकने की हिम्मत न करता हुआ। वह लगातार अपनी शालीन आवाज़ और प्रवाहमय किताबी भाषा में मुझे वे ख़बरें व बातें बताया करता है जिन्हें वह बहुत दिलचस्प और चटपटी समझता है और जिन्हें वह किताबों व पत्रिकाओं से संग्रह किया करता है। ये ख़बरें सब की सब बिल्कुल एक जैसी और एक ढंग की होती हैं: किसी फ़्रांसीसी ने कोई खोज की, किसी जर्मन ने उसकी क़लई खोलते हुए लिखा कि यह खोज तो सन् १८७० में फ़लां अमरीकी ने कर डाली थी, और किसी तीसरे व्यक्ति ने, वह भी जर्मन होता है, इन दोनों को ग़लत साबित करते हुए बताया कि अणुवीक्षण-यंत्र के नीचे हवा के बुलबुले को देखकर वे उसे गहरा रंग समझ बैठे और धोखा खा गये। यद्यपि उसका इरादा मेरा मनो-रंजन करना होता है, प्योत्र इग्नात्येविच इस ढंग से बात करता है मानो निबन्ध को प्रतिपादित कर रहा हो। पूरा विवरण देते हुए, वह विशद रूप से बात कहता है, अपनी सूचना के सूत्र रूप में पुस्तकों की नामावली पेश करता है, तारीख़ों, पत्रिकाओं के नाम व अंकों में ग़लती न करने की भरसक चेष्टा करते हुए, प्ती का हमेशा पूरा नाम जां जैक प्ती बोलता है। कभी कभी वह खाने के लिए रुक जाता है और खाने के दौरान भी ये चटपटी ख़बरें सुनाया करता है, जिनकी वजह से हम सब लोग उदास हो उठते हैं। यदि ग्नेकेर और लीज़ा ब्राम्स, बाख़ व संगीत के विषयों पर बात छेड़ते हैं तो वह शर्मभरी हड़बड़ाहट में आंखें नीची कर लेता है। उसे इस बात पर शर्म आती है कि मेरे व उस के जैसे गम्भीर व्यक्तियों के सामने ऐसी हलकी बातों का ज़िक्र होता है।

आजकल की मेरी मनःस्थिति में पांच मिनट का उसका साथ मुझे इतना उबा देता है मानो एक युग से लगातार उसे देख सुन रहा हूं। मुझे इस ग़रीब से नफ़रत है। उसकी किताबी भाषा और नम्र एक-सी आवाज़ मेरी तबीयत गिरा देती हैं, उसके क़िस्सों से मुझपर तन्द्रा छा जाती है... उसकी मेरे प्रति जो भावना है उसमें दया प्रधान है, जो कुछ भी वह कहता है, मेरे मनोरंजन के लिए; और मैं इसके बदले में बराबर मन ही मन "जाओ, जाओ, जाओ" कहता हुआ उसे घूरा करता हूं मानो मैं उस पर जादू करना चाहता हूं। पर इस जादू का उसपर कोई असर नहीं होता और वह ज्यों का त्यों बैठा रहता है...

जब तक वह मेरे पास रहता है, मैं इस विचार से छुटकारा नहीं पा सकता कि "बहुत संभव है कि मेरी मौत के बाद वह मेरी जगह नियुक्त हो जाये", और अपनी बेचारी क्लास मुझे उस नख़लिस्तान सी लगती है जिसका सोता सूख गया हो, और मैं प्योत्र इग्नात्येविच से रुखाई, मौन व दुख का व्यवहार करता हूं, मानो इन विचारों का दोषी मैं नहीं, वह है। जब वह जर्मन वैज्ञानिकों की प्रशंसा बदस्तूर शुरू करता है, मैं परिहासपूर्ण उत्तर नहीं देता, बल्कि रूठे हुए स्वर में भुनभुनाता हूं:

"तुम्हारे जर्मन गधों की जमात है..."

मैं जानता हूं कि मेरा व्यवहार स्वर्गीय प्रोफ़ेसर निकीता क्रिलोव के समान ही है जो एक बार पिरोगोव के साथ रेवेल में नहाने गये तो पानी के ठंडे होने पर क्रोध में बोले: "ये बदमाश जर्मन!" प्योत्र इग्नात्येविच के साथ मेरा व्यवहार बुरा है, लेकिन जब वह जाता है और मैं खिड़की से उसका भूरा टोप चहारदीवारी के बाहर ऊपर नीचे उठता गिरता देखता हूं तो मेरी इच्छा होती है कि उसे वापस बुला लूं और कहूं: "भले मानस, मुझे माफ़ कर दे!"

खाने का वक़्त जाड़ों से भी ज़्यादा मुश्किल से कटता है। वही ग्नेकेर जिससे मैं अब नफ़रत करता हूं, उपेक्षा करता हूं, लगभग रोज़ हम लोगों के साथ खाना खाता है। पहले मैं उसकी मौजूदगी ख़ामोशी से बरदाश्त कर लेता था, पर अब उसपर कटूक्तियां छोड़ता हूं जिससे मेरी बीवी और लीज़ा को शर्म आती है। गुस्से में मैं बिना जाने बूझे अक्सर मूर्खतापूर्ण बातें कह जाता हूं। ऐसे ही एक बार मैंने नफ़रत भरी निगाह ग्नेकेर पर डालकर बिना किसी उकसाहट के ज़ोर ज़ोर से पढ़ना शुरू किया:

चाहे उक़ाब चूज़े से नीचे उड़ रहा हो,
पर नामुमकिन है कि चूज़ा आसमान को छुए...

और सबसे ज़्यादा खिजा डालनेवाली बात यह है कि चूज़ा-ग्नेकेर उक़ाब-प्रोफ़ेसर से कहीं ज़्यादा होशियार साबित हुआ। यह समझते हुए कि मेरी बीवी और बेटी उसके साथ हैं वह ये तिकड़में करता है–मेरे तानों का जवाब वह सहिष्णु मौन से देता है (बूढ़ा सठिया गया है, उससे उलझने से फ़ायदा?) या हंसमुख ढंग से मुझसे मज़ाक़ किया करता है। यह देखकर ताज्जुब होता है कि आदमी कितना ओछा हो सकता है! खाते वक़्त मैं

लगातार कल्पनाजगत में देखा करता हूं कि ग्नेकेर चार सौ बीस साबित हुआ है, मेरी बीवी और लीज़ा ने अपनी ग़लती मान ली है और मैं उनपर ताने कस रहा हूं, ये और इस तरह के सपने देखता रखता हूं और यह तब जब मेरा एक पैर क़ब्र में लटका हुआ है!

अब मुझसे ऐसी भी हरकतें हो जाती हैं जिनके बारे में पहले मैं सिर्फ़ सुना करता था। इनका ज़िक्र करते मुझे शर्म आती है, पर मैं सिर्फ़ एक का बयान करूंगा जो खाने के बाद अभी हाल में हुई।

खाने के बाद मैं अपने कमरे में बैठा पाइप पी रहा था। अपनी आदत के मुताबिक़ मेरी बीवी आकर बैठ गयी और कहने लगी कि कितना अच्छा हो अगर मैं अभी जब मौसम अच्छा है और छुट्टियां हैं खारकोव जाकर पता लगा लूं कि हमारा ग्नेकेर किस क़िस्म का आदमी है।

मैंने उससे सहमत होते हुए कहा: "अच्छा, मैं चला जाऊंगा..."

खुश होकर मेरी बीवी उठी और दरवाज़े की तरफ़ चल दी, पर वहां से पलटकर कहने लगी:

"अरे, हां, एक बात और है। मैं जानती हूं कि तुम नाराज़ होगे, पर तुम्हें सावधान कर देना मेरा फ़र्ज़ है... मुझे माफ़ करना, निकोलाई स्तेपानिच, पर हमारे सब दोस्त और पड़ोसी तक अब इस बात पर ध्यान देने लगे हैं कि तुम कितने अक्सर कात्या से मिलने उसके यहां जाते हो। वह चतुर, सुशिक्षित और मनोरंजक साथिन है, पर यह तो तुम्हें मानना पड़ेगा कि तुम्हारी उम्र और सामाजिक प्रतिष्ठावाले व्यक्ति के लिए उसके साथ में खुशी पाना बड़ा भद्दा लगता है... फिर, उसकी बदनामी भी..."

यकायक मेरा खून खौल उठता है, आंखों से चिनगारियां छूटने लगती हैं, मैं उछलकर खड़ा हो जाता हूं और चीखकर कहता हूं:

"मुझे छोड़ दो! छोड़ दो! छोड़ दो!" यह मैं ज़मीन पर पैर पटकता हुआ और अपनी कनपटियां थामे हुए चिल्लाता हूं।

मेरा चेहरा बड़ा भयानक लगता होगा और मेरी आवाज़ बड़ी अजब लगती होगी क्योंकि मेरी बीवी पीली पड़ जाती है और ज़ोर ज़ोर से चीखती चिल्लाती है। हमारी चीखें सुनकर लीज़ा और ग्नेकेर दौड़ते हुए आते हैं और साथ में येगोर भी...

मैं दोहराता जाता हूं: "मुझे छोड़ दो! यहां से निकल जाओ! मुझे छोड़ दो!"

मेरे पैर बिल्कुल सुन्न पड़ जाते हैं, मानो वे हैं ही नहीं, मुझे किसी की बांहों में गिरने और किसी के सिसकने का आभास होता है और बेहोश हो जाता हूं। यह बेहोशी दो-तीन घण्टे तक रहती है।

कात्या की बात फिर जारी रखूं। वह सूर्यास्त के समय रोज़ मुझसे मिलने आती है और स्पष्ट है कि यह बात दोस्तों और पड़ोसियों की निगाह में पड़ने से नहीं चूक सकती। वह कुछ मिनटों के लिए आती है और मुझे सैर के लिए ले जाती है। उसका अपना घोड़ा है और उसने इसी बार की गर्मियों में नयी बग्घी ख़रीदी है। कुल मिलाकर वह बड़ी शान से रहती है। उसने एक बड़ा-सा महंगा देहाती बंगला किराये पर लिया है जिसमें एक बड़ा बगीचा भी है, उसने अपना सारा फ़र्नीचर यहां लाकर सजा दिया है, वह दो नौकरानियां और एक कोचवान रखे हुए है... मैं उससे अक्सर पूछता हूं:

"तुम्हारे पिता ने जो रक़म छोड़ी है उसे ख़र्च कर डालने के बाद तुम्हारा गुज़ारा कैसे होगा, कात्या?"

वह जवाब देती है: "देखा जायेगा।"

"सुनो, प्यारी, तुम्हें इस धन का और अधिक सम्मान करना चाहिए। भले आदमी ने इसके संचय के लिए कड़ी मेहनत की थी।"

"मैं जानती हूं। तुम पहले भी मुझे यह बता चुके हो।"

पहले हम खुले खेत में सैर करते हैं, फिर चीड़ के उस जंगल में होकर गुज़रते हैं जो मुझे खिड़की से दिखाई देता है। प्रकृति मुझे अब भी सुन्दर लगती है, यद्यपि कोई शैतान मेरे कान में फुसफुसाता रहता है कि ये सब चीड़ के पेड़, ये चिड़ियां और आसमान में सफ़ेद बादल तीन-चार महीने में मेरे मरने के बाद मेरी अनुपस्थिति महसूस नहीं करेंगे। कात्या ख़ुद गाड़ी चलाना पसन्द करती है और रास हाथ में ले लेती है, अच्छा मौसम और अपनी बग़ल में मेरी मौजूदगी उसे ख़ुश कर देती है। उसकी तबीअत ख़ुश रहती है और वह तानेज़नी नहीं करती।

वह कहती है: "निकोलाई स्तेपानिच, तुम बड़े अच्छे हो। तुम इतनी बढ़िया क़िस्म के इंसान हो कि कोई भी अभिनेता तुम्हारी नक़ल नहीं कर सकता। मेरी या मिख़ाईल फ़ेदोरोविच की नक़ल कोई मामूली अभिनेता कर सकता है, पर तुम्हारी कोई नहीं कर सकता। मुझे तुमसे ईर्ष्या है! आख़िरकार, मैं अपने को समझती क्या हूं? मैं हूं क्या?"

एक मिनट सोचकर वह मुझसे पूछती है: "मैं अच्छे ढंग की नहीं हूं, है न, निकोलाई स्तेपानिच? मैं भली नहीं हूं, है न?"

"हां, तुम ऐसी ही हो।"

"हुंह... तो मैं क्या करूं?"

मैं उसे क्या जवाब दूं? यह कह देना बड़ा आसान है कि "काम करो" या "जो कुछ तुम्हारे पास है ग़रीबों को दे डालो" या "अपने आपको पहचानो" और चूंकि यह कह देना आसान है, मैं उसके जवाब में कह सकने लायक़ कुछ भी नहीं सोच पाता।

रोग-निदान विज्ञान के मेरे सहयोगी अपने छात्रों से कहते हैं कि इलाज करते वक़्त "हर मरीज़ को बिल्कुल अलग एक व्यक्ति मानो"। जैसे ही कोई व्यक्ति इस सलाह पर आचरण शुरू करता है उसे मालूम हो जाता है कि पाठ्य-पुस्तकों में दिये गये स्टेण्डर्ड इलाजों में बताई गयी दवाएं कितनी बेकार साबित हो सकती हैं जब किसी का इलाज शुरू होता है। यही हालत तब भी होती है जब मन रुग्ण होता है।

पर मुझे उसे कुछ जवाब तो देना ही है और मैं कहता हूं:

"प्यारी, तुम्हारा बहुत सारा वक़्त ख़ाली रहता है। तुम्हें करने के लिए कुछ न कुछ काम तलाश करना चाहिए। अगर तुम अभिनय-कला में रुचि रखती हो तो तुम फिर से अभिनेत्री क्यों नहीं बन जातीं?"

"मैं बन नहीं सकती।"

"तुम यह शहीदों सा ढंग क्यों अख़्तियार करती हो? मुझे यह पसन्द नहीं है, प्यारी। ग़लती तो सारी तुम्हारी ही है। तुम्हें याद है, तुमने लोगों में और समाज में दोष ढूंढ़ना शुरू किया था पर उन्हें सुधारने के लिए कुछ नहीं किया। तुमने बुराई को रोका नहीं, उसका प्रतिरोध नहीं किया, सिर्फ़ अपने को थका डाला, तुम किसी संघर्ष की शिकार नहीं हुई बल्कि स्वयं अपनी कमज़ोर इच्छाशक्ति की शिकार बन गयी। तुम तब कम उम्र की और अनुभवहीन थीं, अब हर बात भिन्न हो सकती है। चलो, फिर कोशिश करो। तुम काम करोगी, पवित्र कला की सेवा करोगी..."

"ढोंगी मत बनो, निकोलाई स्तेपानिच," कात्या मुझे टोकती है, "हम एक बार हमेशा के लिए तय कर डालें कि अभिनेताओं, अभिनेत्रियों, लेखकों की बात करेंगे, पर कला को अछूता छोड़ देंगे। तुम बढ़िया, भले आदमी हो, पर कला के सम्बन्ध में तुम इतना काफ़ी नहीं समझते कि मन

से कला को पवित्र समझो। तुम कला को न अनुभव कर सकते हो, न समझ ही सकते हो। ज़िन्दगी भर तुम व्यस्त रहे हो और यह प्रतिभा पैदा करने का तुम्हें समय ही नहीं मिला। और कुल मिलाकर... कला के बारे में इन सब बातों से मुझे चिढ़ है," क्षुब्ध मुद्रा में वह कहती जाती है। "मुझे इनसे घृणा है। लोगों ने अभी भी उसे बहुत काफ़ी ओछा बना रखा है। आप मेहरबानी कीजिए!"

"किसने ओछा बनाया है उसे?"

"कुछ ने लगातार शराबख़ोरी से, अख़बारों ने अपनी बकवास से, बुद्धिमान लोगों ने दर्शन-शास्त्र बघारकर।"

"दर्शन से इस बात का क्या सम्बन्ध?"

"हां, है, सम्बन्ध है। जब लोग दर्शन बघारते हैं तो उससे साबित होता है कि वे समझते कुछ भी नहीं।"

बातचीत गिरकर सिर्फ़ तानेज़नी न रह जाये, इसलिये मैं जल्दी से विषय बदल देता हूं और फिर काफ़ी देर तक कुछ नहीं कहता। जंगल से गुज़रकर कात्या के बंगले के पास पहुंचने पर मैं फिर पुराना विषय उठाते हुए कहता हूं:

"पर तुमने बताया नहीं कि तुम फिर से अभिनेत्री क्यों नहीं बनना चाहतीं?"

"निकोलाई स्तेपानिच, यह बड़ी बेरहमी है!" वह चिल्लाकर कहती है, फिर झेंप जाती है। "क्या तुम चाहते हो कि सत्य को शब्दों का आवरण पहनाऊं? अच्छी बात है, अगर तुम यही... यही चाहते हो, तो यही सही! मुझमें प्रतिभा नहीं है! प्रतिभा नहीं है और... और घमण्ड बहुत ज़्यादा है! बस!"

इस स्वीकारोक्ति के बाद वह मुझसे मुंह फेर लेती है और अपने कांपते हाथों को छिपाने के लिए ज़ोर ज़ोर से रास खींचने लगती है।

कात्या के बंगले के पास गाड़ी पहुंचने पर हमें दूर से ही मिख़ाईल फ़ेदोरोविच फाटक के सामने टहलता और बेचैनी से हमारा इन्तिज़ार करता दिखाई देता है।

"फिर वही मिख़ाईल फ़ेदोरोविच!" कात्या खीज में भरी कह उठती है, "उसे यहां से ले जाओ! उसका साथ मुझे उबा देता है... उसे ले जाओ!"

मिख़ाईल फ़ेदोरोविच को बहुत पहले ही विदेश चला जाना था पर वह यह सफ़र हफ़्ते-ब-हफ़्ते टालता जाता है। इधर उसमें परिवर्तन आ गया है। उसका चेहरा खिंचा-खिंचासा रहता है, उसको अब शराब से नशा होने लगा है जो पहले कभी नहीं होता था और उसकी काली भवों में सफ़ेद बाल दिखाई पड़ने लगे हैं। गाड़ी के फाटक के सामने रुकने पर वह अपनी ख़ुशी और बेसब्री छिपा नहीं पाता। कात्या और मुझे गाड़ी से उतारने में वह बड़ा रौला मचाता है, सवालों की झड़ी लगा देता है, हाथ मलते हुए हंसता है और विनय, निरीहता व अनुनयपूर्ण वह भाव जो पहले मुझे सिर्फ़ उसकी आंखों में दिखाई पड़ता था, अब उसके सारे चेहरे पर फैल चुका है। वह ख़ुश होता है और साथ ही अपनी इस ख़ुशी पर उसे लज्जा भी होती है। हर शाम कात्या के यहां आने की आदत पर उसे शर्म आती है और अपने आने के लिए कोई बेवक़ूफ़ी का बहाना बनाना वह जरूरी समझता है, जैसे कि "मैं काम से इधर से गुज़र रहा था और सोचा कि कुछ मिनटों के लिए यहां भी रुक लूं"।

हम तीनों एकसाथ घर में घुसते हैं। पहले हम चाय पीते हैं, फिर वे सब चीज़ें मेज़ पर आ जाती हैं, जिनका मैं आदी हो चुका हूं – ताशों की दो जोड़ियां, पनीर का बड़ा टुकड़ा, फल, क्रिमिया की शैम्पेन की बोतल; बातचीत के हमारे विषय भी नये नहीं होते, वे वही विषय हैं जिनपर पिछले जाड़ों में हम ग़ौर कर चुके थे। विश्वविद्यालय, छात्र, साहित्य, नाटक व्यंग्योक्ति व जुमलेबाजी के शिकार होते हैं। द्वेषपूर्ण बातचीत से हवा गंदली हो जाती है, घुटनभरी हो जाती है, अब जाड़ों की तरह दो नहीं बल्कि तीन मेंढ़कों की सांसों से हवा ज़हरीली हो जाती है। हमारी सेवा में संलग्न नौकरानी अब गहरी मख़मली और हारमोनियम जैसी हंसी के झोंकों के साथ अब नाटकों के विदूषक फ़ौजी जनरलों की ही जैसी अलग-अलग टुकड़ों वाली हंसी भी सुनती है: हे-हे-हे...

५

बिजली, बादलों की गड़गड़ाहट और घोर वर्षा से भीषण बनी रातें आती हैं – इन्हें लोग "गौरैया की रातें" कहते हैं। ऐसी ही एक गौरैया की रात अपना भीषण खेल मेरी ज़िन्दगी में खेल गयी...

आधी रात के फ़ौरन बाद मेरी नींद खुल गयी और मैं कूदकर बिस्तर के बाहर आ गया। मेरे दिमाग़ में यह बात कौंध गयी कि मैं अभी इसी वक़्त, यहीं मर जाऊंगा। मैंने यह क्यों सोचा? मौत के शीघ्र आगमन का कोई आभास मुझे शरीर में नहीं लग रहा था, सिर्फ़ एक आतंक की चेतना भर थी, मानो मैंने कोई बड़ी डरावनी ज्वाला देख ली हो।

जल्दी से लैम्प जलाकर मैंने पानी पिया और खुली खिड़की की ओर तेज़ी से बढ़ गया। रात सुन्दर थी, नयी कटी घास की मीठी सुगन्ध आ रही थी। मुझे चहारदीवारी, खिड़की के पास सूखे-से निंदासी पेड़, सड़क व जंगल की गहरी काली पट्टी दिखाई दे रही थी। आसमान साफ़ था और उसपर चांद शान्ति और तेज़ी से चमक रहा था। स्तब्धता छायी हुई थी, एक पत्ती भी नहीं हिल रही थी। मुझे लगा कि हर चीज़ मुझे ताक रही है, मुझे सुन रही है, मुझे मरते देखने को तैयार खड़ी है...

मुझे डर लगता है। मैं खिड़की बन्द कर बिस्तर की ओर भागा। मैंने अपनी नाड़ी टटोली और कलाई में नाड़ी न मिलने पर, कनपटियों पर, फिर ठोड़ी के नीचे, फिर कलाई में उसे ढूंढ़ने लगा और जहां भी मैंने अपने आपको छुआ मुझे स्पर्श ठंडा और पसीने से चिपचिपा लगा। मेरी सांस और जल्दी-जल्दी चलने लगी, मेरा पूरा ढांचा कांपने लगा। मेरे भीतर बड़ी उथल-पुथल सी हो रही थी और मुझे लग रहा था कि मेरे चेहरे पर और गंजी खोपड़ी पर मकड़ी के जाले चिपक गये हैं।

किया क्या जाये? अपने परिवार को बुलाऊं? नहीं, यह मैं नहीं कर सकता। मेरी बीवी और लीज़ा आकर ही क्या कर लेंगी?

मैंने अपना चेहरा तकिये में छिपा लिया, अपनी आंखें ढंक लीं और इन्तिज़ार करने लगा... मेरी पीठ ठंडी हो गयी थी और मुझे लगा रहा था कि मेरी रीढ़ भीतर को धंस रही है और जैसे मौत अनिवार्यतः पीछे से ही दुबकती हुई आयेगी...

"की-वी, की-वी!" यकायक इस आवाज़ ने रात का सन्नाटा भंग कर दिया। मुझे यह पता न लगा कि यह आवाज़ कहां से आ रही थी, मेरे भीतर से या मकान के बाहर से।

"की-वी, की-वी!"

भगवान, कैसा भीषण था यह सब! मैं फिर पानी पीना चाहता था, पर आंखें खोलने या सिर उठाने में मुझे डर लग रहा था। संज्ञाहीन,

पशुवत् आतंक मुझे झिंझोड़े डाल रहा था, मैं जान नहीं पा रहा था मुझे किस बात का डर लग रहा है—क्या मैं जिन्दा रहना चाहता था, या कि कोई नयी, अनजान पीड़ा मुझे होनेवाली थी?

ऊपर के कमरे में कोई कराह रहा था, या शायद हंस रहा था... मैं कान लगाकर सुनने लगा। कुछ देर बाद ज़ीने पर किसी की पद-चाप सुनाई दी। कोई जल्दी से नीचे आया, फिर ऊपर लौट गया। फिर उतरते हुए क़दमों की आवाज़ आयी, कोई मेरे दरवाज़े के बाहर आकर रुक गया और सुनने लगा।

"कौन है?" मैं चिल्लाया।

दरवाज़ा खुल गया, मैंने हिम्मत करके आखें खोलीं और अपनी बीवी को देखा। उसका चेहरा पीला पड़ा हुआ था और रोते रोते आंखें लाल हो गयी थीं।

"तुम जाग रहे हो, निकोलाई स्तेपानिच?" उसने पूछा।

"क्यों, क्या बात है?"

"भगवान के लिए, ज़रा चलकर लीज़ा को देख लो। उसकी हालत ख़राब है..."

"अभी, एक मिनट में..." मैं गुनगुनाया। मैं ख़ुश था कि अब अकेला नहीं हूं। "मैं चलता हूं... बस, एक मिनट ठहरो।"

मैं अपनी पत्नी के पीछे पीछे उसकी बातें सुनता हुआ चलने लगा पर इतना विकल था कि उसके शब्द मेरी समझ में नहीं आ रहे थे। उसके हाथ की मोमबत्ती से सीढ़ियों पर रोशनी धब्बों की तरह पड़ती जा रही थी, हमारी लम्बी परछाइयां कांप रही थीं, ड्रेसिंग गाउन में फंसकर मैं लड़खड़ा गया, सांस फूल गयी और मुझे लगा कि कोई मेरा पीछा कर रहा है और मेरी पीठ पकड़ लेना चाहता है। मैंने सोचा: "मैं अभी, यहीं सीढ़ियों पर मर जाऊंगा... अभी इसी क्षण..." पर सीढ़ियां ख़त्म हो गयीं और हम ऐसे अंधेरे गलियारे में होते हुए जो एक इतालवी ढंग की खिड़की पर जाकर ख़त्म होता था, लीज़ा के कमरे में पहुंचे। वह अपने बिस्तर के किनारे पर बैठी कराह रही थी, उसके नंगे पैर नीचे लटक रहे थे, वह क़मीज़ के अलावा और कुछ नहीं पहने थी।

मोमबत्ती की ओर आंखें मिचमिचाती हुई वह भुनभुनाती रही:

"हे भगवान, हे परमात्मा... मुझ से रहा नहीं जाता... रहा नहीं जाता..."

"लीज़ा, मेरी प्यारी बेटी," मैंने कहा, "क्या बात है? तुझे क्या तकलीफ़ है?"

उसने मुझे देखा तो रोती हुई मेरे कन्धे से लग गयी।

वह सिसकती हुई बोली: "पापा, मेरे प्यारे पिता जी, मेरे अच्छे पापा... मेरे प्यारे, मेरे दुलारे पापा... मुझे मालूम] नहीं कि मुझे क्या हो गया है... मैं बहुत दुखी हूं!"

उसने मुझे अपनी बांहों में कस लिया और मुझे प्यार करते हुए वे प्यार भरे शब्द कहने लगी जो मैं उससे सुना करता था जब वह बच्ची थी।

"धैर्य धरो, बेटी," मैंने कहा, "भगवान भला करेगा। रोओ मत। मैं भी बहुत दुखी हूं।"

मैंने उसे कम्बल ओढ़ाने की कोशिश की, मेरी बीवी ने उसे कुछ पीने को दिया, और हम दोनों बेढंगे तौर पर उसके बिस्तर के आसपास घूमने लगे। मेरे कन्धे पत्नी के कन्धों से लड़े और मुझे वे दिन याद आ गये जब हम मिलकर अपने बच्चों को नहलाते थे।

"उसके लिए कुछ करो!" मेरी पत्नी ने आजिज़ी से कहा, "कुछ करो न!"

मैं क्या कर सकता था? कुछ भी तो नहीं। बेचारी लड़की के मन पर कोई बोझ था, कोई बात उसके मन में थी, लेकिन न कुछ मेरी समझ में आ रहा था, न मैं कुछ जानता ही था, मैं सिर्फ़ बड़बड़ाता रहा:

"रोओ मत, रोओ मत... सब ठीक हो जायेगा... अब तुम सो जाओ..."

मानो हमें और डराने के लिए ही, कहीं हमारे अहाते में कुत्ता रोने लगा। पहले हलके से और अनिश्चित ढंग से और फिर ज़ोर ज़ोर से। उल्लू बोलने या कुत्ता रोने के शकुन-अपशकुनों को मैंने कभी कोई महत्व नहीं दिया था लेकिन इस बार मेरा दिल कचोट उठा और कुत्ते के रोने का तर्क मैं अपने आपको समझाने लगा।

मैंने सोचा: "यह बेवक़ूफ़ी की बात है, वह एक प्राणी का दूसरे प्राणी पर प्रभाव मात्र है। मेरे स्नायविक तनाव का प्रभाव मेरी पत्नी, लीज़ा और कुत्ते पर पड़ा होगा, बस... अनिष्ट की पूर्व-सूचना, भविष्य ज्ञान व ऐसी ही बातों का सही विश्लेषण एक व्यक्ति की भावनाओं का दूसरे में तबादला ही है..."

कुछ देर बाद जब मैं लीज़ा के लिए नुस्ख़ा लिखने अपने कमरे में लौटा तब मैं अपनी आकस्मिक मृत्यु के संबंध में बिल्कुल नहीं सोच रहा था, बल्कि मैं इतना उदास और परेशान था कि मुझे लग रहा था कि उसी वक़्त मर जाता तो अच्छा होता। काफ़ी देर तक मैं कमरे के बीच निस्पन्द खड़ा रहा यह तय करने की कोशिश करते हुए कि लीज़ा के लिए क्या दवा लिखूं, लेकिन ऊपर के कमरे में कराह ख़त्म हो गयी और मैंने तय कर लिया कि कोई दवा न दी जाये पर तब भी मैं वैसे ही निश्चल खड़ा रहा...

मौत जैसा सन्नाटा था, ऐसा सन्नाटा था जैसा कि किसी लेखक ने कहा है वह कानों में बजता सा लगता था... वक़्त बहुत धीरे धीरे गुज़र रहा था, चांदनी की पट्टियां खिड़की की सिल पर निश्चल थीं, मानो वे वहां गाड़ दी गयी हों... सुबह होने में देर थी।

एकाएक फाटक चरमराया और कोई चुपचाप मकान की ओर बढ़ आया। किसी ने मरियल पेड़ से एक टहनी तोड़ी और मेरी खिड़की के शीशे पर उस टहनी से खटखट की।

मैंने किसी को फुसफुसाते सुना: "निकोलाई स्तेपानिच! निकोलाई स्तेपानिच!"

मैंने खिड़की खोलते हुए सोचा कि मैं कोई सपना देख रहा हूंगा– खिड़की की सिल के नीचे दीवाल से चिपकी हुई, काले कपड़े पहने हुए, चांदनी में चमकती हुई एक औरत खड़ी अपनी बड़ी बड़ी आंखों से मुझे ताक रही थी। उसका चेहरा चांदनी में पीला, कठोर और अवास्तविक-सा लग रहा था, मानो संगमर्मर से काटकर बनाया गया हो; उसकी ठुड्डी कांप रही थी।

"मैं हूं..." उसने कहा, "मैं... कात्या!"

चांदनी में हर औरत की आंखें बड़ी बड़ी और काली मालूम होती हैं, हर व्यक्ति लम्बा और पीला लगता है और शायद इसी वजह से मैं उसे फ़ौरन पहचान नहीं पाया।

"क्या बात है?"

"क्षमा करो," उसने कहा, "मुझे एकाएक ऐसा असहनीय दुःख सताने लगा कि मैं बरदाश्त न कर पायी और यहां चली आयी... मैंने तुम्हारी खिड़की में रोशनी देखी और सोचा कि थपथपाकर देख लूं... मुझे

माफ़ करना... ओफ़, काश कि तुम समझ पाते कि मैं कितनी दुखी थी! तुम इस वक़्त क्या कर रहे हो?"

"कुछ नहीं... मुझे नींद नहीं आती..."

"मुझे अनिष्ट की आशंका हो गयी थी, पर वह सब बेवक़ूफ़ी की बात है।"

उसकी भवें चढ़ गयीं, आंखों में आंसू चमकने लगे और सारा चेहरा ऐसे विश्वास से जो मैंने इतने दिनों से नहीं देखा था एकदम दमक उठा मानो उसपर तेज़ रोशनी पड़ रही हो।

"निकोलाई स्तेपानिच!" उसने अपनी बांहें मेरी ओर बढ़ाते हुए आजिज़ी भरे लहजे में कहना शुरू किया, "मेरे प्यारे! मैं तुमसे प्रार्थना करती हूं, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं... तुम्हारे लिए मेरे मन में जो दोस्ती और इज़्ज़त है, अगर तुम उसकी उपेक्षा नहीं करते तो मेरी बात मान लो!"

"क्या बात?"

"तुम मुझसे मेरा रुपया ले लो!"

"तुम्हारे दिमाग़ में यह क्या ऊलजलूल बातें आती रहती हैं? मैं तुम्हारे रुपये लेकर क्या करूंगा?"

"तुम उस रुपये से कहीं जा सकोगे, अपना इलाज करा सकोगे... तुम्हें इलाज की जरूरत है। ले लोगे न? मेरे प्यारे! तुम मेरी बात मानोगे न?"

वह आतुरता के साथ मेरे चेहरे की ओर देखने लगी, फिर बोली:

"मेरा रुपया स्वीकार करोगे न? हां?"

"नहीं, प्यारी, मैं नहीं लूंगा..." मैंने जवाब दिया, "शुक्रिया।"

वह मेरी ओर पीठ करके खड़ी हो गयी और सिर झुका लिया। जिस ढंग से मैंने इनकार किया था उसमें कोई ऐसी बात थी जिसमें रुपये की बात आगे बढ़ाने की गुंजाइश नहीं रह गयी थी।

"घर जाकर सो जाओ," मैंने कहा, "कल फिर मुलाक़ात होगी।"

दुखी होते हुए उसने कहा: "तो तुम मुझे अपना दोस्त नहीं मानते?"

"मैंने यह नहीं कहा। पर अब तुम्हारा रुपया मेरे किसी काम का नहीं।"

"मुझे माफ़ करना," आवाज़ एकदम नीचे करते हुए वह बोली, "मैं समझ गयी... मुझ जैसी नाकाम अभिनेत्री से रुपया उधार लेना... ख़ैर, नमस्कार।"

और वह इतनी तेज़ी से निकल गयी कि मुझे नमस्कार का जवाब देने का भी वक़्त न मिला।

६

मैं खारकोव में हूं।

चूंकि अपनी वर्तमान मनोदशा के ख़िलाफ़ लड़ना बेकार होता, और वह मेरे बूते के बाहर की बात होती, मैंने निश्चय कर लिया कि कम से कम ज़ाहिर तौर पर तो इस धरती पर मेरे आख़िरी दिन ऐसे बीतें जिस-पर कोई उंगली न उठा सके। यदि मैं अपने परिवार के लिए वह सब कुछ नहीं हो सका जो मुझे होना चाहिए था, और यह बात मैं अच्छी तरह जानता हूं, तो कम से कम मैं वह करने की कोशिश तो करूंगा, जो वे मुझसे चाहते हैं। चूंकि मुझे ख़ारकोव जाना है, मैं ख़ारकोव जाऊंगा। फिर मैं इधर हर बात में ऐसा उदासीन हो उठा हूं कि मुझे इस बात की ज़रा भी परवाह नहीं कि मैं जा कहां रहा हूं—ख़ारकोव, पेरिस या बेर्दीचेव।

मैं यहां दोपहर के क़रीब आया और गिरजाघर के पास एक होटल में ठहर गया। रेल में हिलते-डुलते रहने से मेरी तबीयत खराब हो गयी और फिर डिब्बे में तेज़ ठंडी हवा आ रही थी। और अब मैं बिस्तर के किनारे बैठा, कनपटियां दबाये, टिक की अपनी बीमारी के दौरे के इन्तज़ार में हूं। यहां के प्रोफ़ेसरों में मेरे जो परिचित हैं, मुझे उनसे मिलने जाना चाहिए पर मुझमें इसकी न इच्छा है न शक्ति।

होटल का बूढ़ा नौकर मुझसे पूछने आया है कि मैं बिस्तर की चादरें आदि अपने साथ लेकर आया हूं कि नहीं। मैं उसे पांच मिनट रोक कर उससे ग्नेकेर के बारे में पूछता हूं जो मेरा ख़ारकोव आने का उद्देश्य है। यह नौकर ख़ारकोव का ही रहनेवाला निकलता है और पूरे शहर से भली भांति परिचित है पर वह किसी ग्नेकेर नामक परिवार को नहीं जानता। मैं पड़ोस की ज़मींदारियों व जागीरों के बारे में पूछता हूं और उसका भी यही नतीजा निकलता है।

बाहर गलियारे की घड़ी में एक बजता है, दो बजते हैं, तीन बजते हैं... जिन्दगी के ये आख़िरी चन्द महीने जब मैं बैठा मौत का इन्तिज़ार कर रहा हूं, बाक़ी पूरे जीवन से मुझे ज़्यादा लम्बे लगते हैं। पहले कभी मैं वक़्त के इतने धीरे धीरे कटने को इतनी सहिष्णुता से बरदाश्त नहीं कर पाता था। पहले स्टेशन पर रेल के इन्तिज़ार में या किसी इम्तिहान में बैठने पर मुझे पन्द्रह मिनट भी अनन्त काल-सा लगता था और अब मैं रात-रात भर चारपाई के किनारे निश्चल, चुपचाप बैठा रह सकता हूं और बिल्कुल उपेक्षा के साथ सोच सकता हूं कि कल व परसों भी रातें ऐसी ही लम्बी और घटनाहीन होंगी...

गलियारे की घड़ी में पांच बजते हैं... छः बजते हैं... सात बजते हैं... अंधेरा होने लगा है।

मेरे गाल में हलका दर्द शुरू हो गया है। यह टिक के दौरे की शुरूआत है। अपने को विचारों में खोया रखने के लिए मैं सोचने लगता हूं कि इस तरह उदासीन होने के पहले मेरा दृष्टिकोण क्या था और मैं अपने से पूछता हूं। मैं एक प्रसिद्ध व्यक्ति, प्रिवी कौंसिल का मेम्बर, एक अजब-सा भूरा कम्बल ओढ़े होटल के इस छोटे से कमरे में बिस्तर के किनारे क्यों बैठा हूं? मुंह-हाथ धोने की लोहे की इस सस्ती-सी तिपाई को मैं क्यों देख रहा हूं और गलियारे की दो कौड़ी की घड़ी की नागवार आवाज़ क्यों सुन रहा हूं? क्या यह मेरी प्रसिद्ध और ऊंची सामाजिक स्थिति के अनुकूल है? रूखी मुस्कान के साथ मैं इन प्रश्नों का उत्तर देता हूं। जिस भोलेपन से जवानी में मैं प्रसिद्धि के महत्व और प्रसिद्ध व्यक्तियों की असाधारण स्थिति को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर समझता था, उसे सोच-सोचकर मुझे हंसी आ रही है। मैं प्रसिद्ध हूं, मेरा नाम बड़े आदर से लिया जाता है, मेरी तसवीर 'नीवा' व 'यूनिवर्सल इलस्ट्रेटेड' पत्रिकाओं में छप चुकी है और मैंने एक जर्मन पत्रिका में स्वयं अपनी जीवनी पढ़ी और इस सब का क्या हुआ? यहां मैं निपट अकेला, एक अजनबी नगर में, अजनबी बिस्तर में बैठा हथेली से गाल मल रहा हूं जिसमें दर्द हो रहा है... घरेलू झगड़े, लेनदारों की आड़ अकड़, रेल कर्मचारियों की उद्दण्डता, पासपोर्ट प्रणाली की असुविधाएं, स्टेशन की केंटीन में मिलनेवाला महंगा व अस्वास्थ्यकर भोजन, हर ओर अज्ञान और उद्दण्डता – इन सब तथा अन्य बहुत सी बातों से, जिन्हें गिनाने में बहुत देर लगेगी, मुझे भी उतनी ही तकलीफ़ होती है जितनी

कि किसी भी मामूली नागरिक को जिसके अस्तित्व को भी उसकी गली के बाहर के लोग नहीं जानते। तब फिर मेरी स्थिति में ऐसा विशिष्ठ क्या है? मान लो मैं दुनिया का सबसे अधिक प्रसिद्ध व्यक्ति हूं, महान हूं और मेरे देश को मुझपर गर्व है; हर समाचारपत्र में मेरे स्वास्थ्य-समाचार प्रकाशित होते हैं, डाक से मेरे पास मेरे सहयोगियों, शिष्यों व आम जनता से सहानुभूति के पत्र आते हैं, फिर भी ये सब बातें भी मुझे एकाकी, परेशान हालत में, अजनबी बिस्तर में मरने से नहीं रोक सकतीं... यह सच है कि इसके लिए किसी को दोष नहीं दिया जा सकता, लेकिन मैं, दोषी, अपनी प्रसिद्धि को बिल्कुल पसन्द नहीं करता। मुझे लगता है कि इसने मुझे दग़ा दिया है।

क़रीब दस बजे मुझे नींद आती है और बीमारी के दौरे के बावजूद गहरी नींद में सो जाता हूं और शायद देर तक सोता भी रहता यदि किसी ने आकर जगा न दिया होता। एक बजे के थोड़ी देर बाद ही किसी ने आकर दरवाज़ा खटखटाया।

"कौन है?"

"तार है!"

दरबान के हाथ से तार लेते हुए मैंने ग़ुस्से से कहा: "इसे कल तक के लिए रख सकते थे, अब मुझे फिर नींद नहीं आयेगी।"

"मुझे माफ़ करें, आपकी रोशनी जल रही थी और मैं समझा कि आप जाग रहे हैं।"

मैंने तार खोला और नीचे भेजनेवाले का नाम देखा। तार मेरी पत्नी ने भेजा था। वह चाहती क्या है?

"ग्नेकेर और लीज़ा ने कल छिपकर शादी कर ली। वापस लौट आओ।"

तार पढ़कर मैं क्षण भर को त्रस्त हो उठा। पर ग्नेकेर व लीज़ा ने जो किया उससे मुझे त्रास नहीं हुआ; मुझे त्रास हुआ अपनी उदासीनता पर, जिससे मैंने उनकी शादी की ख़बर सुनी। लोग कहते हैं कि सच्चे ज्ञानी और दार्शनिक ही उदासीन होते हैं। पर यह सच नहीं है, उदासीनता तो आत्मा को लकवा मार जाना है, समय से पहले मृत्यु हो जाना है।

मैं फिर बिस्तर पर आ गया और अपना मन बहलाने के लिए कुछ सोचने की कोशिश करने लगा। मैं सोचूं क्या? हर बात ऐसी लगती है

जिस पर पूरी तरह विचार किया जा चुका है और अब ऐसा कुछ भी नहीं रहा जो मेरे दिमाग़ को जगा सके।

जब पौ फटने लगी, मैं बिस्तर में ही बैठा हुआ था, घुटनों को सीने से चिपकाये मैं और काम न होने के कारण अपने आपको समझने की कोशिश करने लगा। "अपने आपको समझो" – यह बहुत बढ़िया और फ़ायदेमन्द सलाह है, पर प्राचीन बुज़ुर्ग लोग यह बताना भूल गये कि यह किया कैसे जाये।

पहले अपने आपको या किसी दूसरे को समझने-पहचानने की इच्छा होने पर मैं अपना ध्यान इच्छाओं पर केन्द्रित करता था, कार्यों पर नहीं, क्योंकि कार्य तो परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं। आप मुझे बतायें कि आपकी अभिलाषाएं क्या हैं, और मैं बता दूंगा कि आप हैं क्या।

और अब मैं अपनी परीक्षा कर रहा हूं: मेरी इच्छाएं क्या हैं?

मैं चाहूंगा कि हमारी पत्नियां, बच्चे, हमारे दोस्त और हमारे शिष्य हमें प्यार करें, हमारी ख्याति को नहीं, वे इंसान को प्यार करें, फ़र्म या लेबिल को नहीं। और क्या? मैं चाहूंगा कि मेरे सहायक और वारिस हों, और क्या? मैं चाहूंगा कि सौ वर्ष बाद उठूं और सिर्फ़ एक झलक देख सकूं कि विज्ञान की क्या हालत है। मैं चाहूंगा कि दस वर्ष और ज़िन्दा रहूं... और क्या?

बस। मैं बराबर लगातार सोचता रहा पर और कोई बात नहीं सोच पाया। और मैं जितना भी सोचूं मेरे विचार बिखरे हुए और असम्बद्ध होते हुए भी यह बात मुझे स्पष्ट थी कि मेरी अभिलाषाओं में मुख्य बात नहीं आ पा रही है। विज्ञान के प्रति रुचि, ज़िन्दा रहने की मेरी इच्छा, अजनबी बिस्तर में बैठना, अपने को समझने की मेरी कोशिश – मेरे इन सब विचारों और धारणाओं और भावनाओं में कोई पारस्परिक तारतम्य नहीं है, ऐसा कुछ नहीं है, जो उन सबको आपस में बुनकर एक कर दे। हर विचार और अनुभूति मेरे भीतर बिल्कुल अलग-अलग थी और कुशल से कुशल मनोवैज्ञानिक भी विज्ञान, नाटकघर, साहित्य, शिष्यों की मेरी आलोचनाओं में, उन सब चित्रों में जो मेरी कल्पना ने चित्रित किये हैं, ऐसा कुछ पाने में असफल होता जिसे सामान्य सिद्धान्त कहा जा सके या जो लोगों के लिए आराध्य देव का काम दे सके।

अगर यह चीज़ नहीं है तो हर चीज़ का अभाव है।

आत्मा का ऐसा दैन्य हो तो मौत का भय, कोई गंभीर बीमारी, लोगों व परिस्थितियों का असर, उस चीज़ को तोड़ताड़ कर छिन्न-भिन्न कर देने के लिए काफ़ी है जिसे मैं अपना विश्व दृष्टिकोण कहता था, जिसमें मैं जीवन का आनन्द और अर्थ निहित समझता था। इसलिए इसमें आश्चर्य ही क्या है कि मेरे जीवन के अंतिम दिन और मास ऐसे विचारों और भावनाओं से उदास और तिमिराच्छन्न हो रहे हैं जो केवल ग़ुलामों या जंगलियों के ही उपयुक्त हैं। क्या आश्चर्य है कि मैं प्रभात को भी नहीं देखता। जब किसी व्यक्ति में वही वस्तु नहीं है जो सभी बाहरी प्रभावों से ऊपर और अधिक शक्तिशाली है तो ज़ोर का ज़ुकाम भी उसे इस स्थिति में ला देने को काफ़ी है कि हर चिड़िया उसे उल्लू दिखाई दे, हर आवाज़ उसे कुत्ते का रोना सुनाई दे। और उसका सारा आशावाद या निराशावाद उसके सारे उच्च या ओछे विचार सिर्फ़ लक्षणों भर का ही महत्व रखते हैं।

मैं हार गया हूं। ऐसा होने के कारण सोचते जाने, बोलते जाने में कोई तुक नहीं है। जो अनिवार्य है उसकी मैं चुपचाप बैठकर प्रतीक्षा करूंगा।

दूसरे दिन प्रातः नौकर आकर मुझे चाय और स्थानीय समाचारपत्र दे गया। यंत्रवत् मैं प्रथम पृष्ठ के विज्ञापन, अग्रलेख, दूसरे समाचारपत्रों व पत्रिकाओं के उद्धरणों व समाचारों पर निगाह डालता जाता हूं... दूसरी ख़बरों के साथ मुझे यह सूचना भी दिखाई दी: "कल हमारे प्रसिद्ध वैज्ञानिक सम्मानित प्रोफ़ेसर निकोलाई स्तेपानोविच न० एक्सप्रेस गाड़ी से ख़ारकोव आये और न० होटल में ठहरे हैं"।

बड़े लोगों के नाम भी स्पष्टतः अपना अलग जीवन-यापन करते हैं। बड़े लोगों के जीवन से भिन्न और स्वतंत्र जीवन होता है उनका। इस समय मेरा नाम ख़ारकोव में इतमीनान के साथ विचरण कर रहा है। तीन महीने में यह नाम एक क़ब्र के पत्थर पर सुनहरे अक्षरों में सूरज की तरह चमकेगा, जब कि मुझपर ख़ुद काई जम चुकी होगी...

दरवाज़े पर हलकी सी थपथपाहट। कोई मुझसे मिलने आया है।

"कौन है? भीतर आ जाओ।"

दरवाज़ा खुलता है और आश्चर्यचकित मैं अपना गाउन जल्दी-जल्दी अपने चारों ओर समेटते हुए एक पग पीछे हट जाता हूं। मेरे सामने कात्या खड़ी है।

ज़ीना चढ़ने के कारण उसकी सांस फूल गयी है। गहरी सांस लेकर वह कहती है: "नमस्ते, तुम सोच नहीं रहे थे कि मैं आ जाऊंगी, है न? मैं भी... मैं भी यहां आ गयी।"

वह बैठ गयी और मेरी निगाह बचाती हुई हलके-हलके हकलाती हुई सी बातें जारी रखती गयी:

"तुम मुझसे बोलते क्यों नहीं? मैं भी यहां आ गयी... आज ही... मैंने सुना कि तुम इस होटल में ठहरे हो और मैं तुमसे मिलने चली आयी।"

कन्धे झिझोड़ते हुए मैंने कहा: "तुम्हें देखकर मुझे बहुत ख़ुशी हुई लेकिन मुझे ताज्जुब भी है... जैसे एकदम आसमान से टपक पड़ी हो। तुम यहां आयीं क्योंकर?"

"मैं? बस मैंने सोचा कि मैं भी चलूं।"

मौन। एकाएक वह एकदम उठी और मेरे पास आ खड़ी हुई।

"निकोलाई स्तेपानिच!" हाथ सीने पर दाबे, पीली पड़ती हुई वह बोली, "निकोलाई स्तेपानिच! मैं ऐसे तो ज़िन्दा नहीं रह सकती! मैं नहीं रह सकती! ईश्वर के लिए मुझे बताओ तो, कि मैं क्या करूं, मुझे अभी, फ़ौरन, इसी क्षण बताओ। बताओ मैं क्या करूं!"

आश्चर्यचकित हो मैं बोला: "क्या बताऊं? तुम्हें बताने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है।"

ऊपर से नीचे तक कांपते और हांफते वह बोलती रही: "मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं, मुझे बताओ! क़सम खाकर कहती हूं कि इस तरह मैं जी नहीं सकती! यह मेरे लिए बहुत हो चुका!"

वह एक कुरसी में धंस गयी और रो पड़ी। झटके से उसने सिर पीछे किया, हाथ मले और फ़र्श पर पैर पटकने लगी। उसका टोप गिर गया और तस्मे से लटकने लगा, उसके बाल टोप से बाहर निकल आये।

वह मुझसे अनुनय करने लगी: "मेरी सहायता करो! मेरी मदद करो न! मैं ऐसे अब एक क्षण भी नहीं रह सकती!"

उसने अपने बटुए से रूमाल निकाला और उसके साथ कुछ पत्र भी, जो उसके घुटनों से फ़र्श पर गिर पड़े। उठाते वक़्त मुझे एक पर मिख़ाईल

फ़ेदोरोविच की लिखावट दिखाई दी और अकस्मात् एक शब्दांश "प्रेमपूर्ण" दिखाई पड़ गया।

मैंने कहा: "मैं तुम्हें कुछ भी तो नहीं बता सकता, कात्या।"

वह मेरा हाथ पकड़कर उसे चूमते हुए, सुबकते हुए बोली:

"मेरी मदद करो, तुम मेरे पिता हो, मेरे एकमात्र मित्र हो! तुम बुद्धिमान हो, शिक्षित हो, तुमने बहुत दुनिया देखी है! तुम अध्यापक रहे हो! मुझे बताओ, मैं क्या करूं?"

"मैं ईमानदारी से कहता हूं, कात्या, मैं नहीं जानता..."

उसकी सुबकियों से मैं प्रभावित था, घबराया हुआ था और सोच न पा रहा था कि क्या करूं, मैं खड़ा भी मुश्किल से रह पा रहा था।

"चलकर कलेवा करें, कात्या!" मैंने मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा, "रोना बन्द करो।"

फिर मैं हिचकिचाते हुए बोला:

"कात्या, मैं जल्दी ही चल बसूंगा..."

अपने हाथ मेरी ओर बढ़ाते हुए, रोते हुए वह बोली: "एक शब्द, सिर्फ़ एक शब्द, मुझे एक शब्द में बता दो, मैं क्या करूं?"

"तुम बड़ी अजब लड़की हो..." मैं बड़बड़ाया, "मेरी तो समझ में नहीं आता। तुम्हारी जैसी समझदार लड़की और एकाएक इस तरह रो पड़े..."

मौन छा गया। कात्या ने अपने बाल ठीक किये, टोप लगाया और फिर पत्र मोड़-माड़कर बटुए में ठूंस लिये और यह सब बिल्कुल चुपचाप, बिना हड़बड़ी के करती रही। उसका चेहरा, सीना और दस्ताने, सब आंसुओं से भीग गये थे, पर उसके चेहरे का भाव कठोर और रूखा हो गया था... उसकी ओर देखकर मुझे इस चेतना पर शर्म आने लगी कि मैं उससे ज्यादा सुखी हूं। अपने में तो मैंने सिर्फ़ अभी उसी चीज़ की कमी महसूस की थी जिसे मेरे सहयोगी दार्शनिक सामान्य सिद्धान्त कहते हैं। मरने के कुछ पहले, जिन्दगी की सांझ में यह कमी होना महसूस किया था, पर इस बेचारी की आत्मा पूरे लम्बे जीवन में शान्ति न पा सकेगी, शरण न पा सकेगी!

मैंने कहा: "कात्या, चलो कलेवा कर लें।"

उसने रुखाई से जवाब दिया: "नहीं, शुक्रिया।"

एक मिनट और ख़ामोशी से कटा।

मैंने कहा: "मुझे खारकोव पसन्द नहीं, यहां बड़ी नीरसता है, यह एक नीरस शहर है।"

"मेरा भी ख़्याल है कि यह कुरूप है... मैं यहां ज़्यादा देर नहीं ठहरूंगी... बस सफ़र के बीच, मैं आज जा रही हूं।"

"कहां जा रही हो?"

"क्रीमिया... मेरा मतलब है काकेशस।"

"सच? क्या बहुत दिनों के लिए जा रही हो?"

"मुझे मालूम नहीं।"

कात्या उठ पड़ती है और रूखी मुस्कान चेहरे पर बिखेरे, बिना मेरी ओर देखे, अपना हाथ मेरी ओर बढ़ा देती है।

मैं उससे पूछना चाहता हूं: "तो तुम मेरे जनाज़े में शामिल न होगी?" पर वह मेरी ओर देखती नहीं, उसका हाथ ठंडा है। अजनबी हाथों की तरह। मैं चुपचाप उसके साथ दरवाज़े तक जाता हूं... अब वह मुझे छोड़कर चली गयी, बिना पीछे मुड़कर देखे वह लम्बा गलियारा पार कर गयी। वह जानती है कि मैं उसकी ओर देख रहा हूं, जब वह मोड़ पर पहुंचेगी तब वह अवश्य पीछे मुड़कर देखेगी।

पर वह नहीं देखती। उसकी काली पोशाक आख़िरी बार दिखाई देती है, पैरों की आवाज़ सुनाई नहीं पड़ती... अलविदा, मेरी प्यारी!

१८८९

तितली

१

ओलगा इवानोव्ना के तमाम दोस्त और जान-पहिचान के लोग उसकी शादी में सम्मिलित हुए।

"उसको देखो, उसमें कुछ है, है न?" वह अपने दोस्तों से कह रही थी। ज़ाहिर था कि वह यह सफ़ाई देने को उत्सुक थी कि कैसे वह एक मामूली आदमी से, जो किसी भी मानी में उल्लेखनीय नहीं था, शादी करने को राज़ी हो गयी थी।

उसका पति ओसिप स्तेपानिच दीमोव एक छोटा-सा पदाधिकारी और पेशे से डाक्टर था। वह दो अस्पतालों में काम करता था, एक अस्पताल में बाहरी डाक्टर के रूप में और दूसरे में शव-विच्छेदक की हैसियत से। रोज़ नौ बजे से बारह बजे तक वह आनेवाले मरीज़ों को देखता और अपने वार्ड का मुआइना करता और तीसरे पहर घोड़ोंवाली ट्राम में दूसरे अस्पताल चला जाता जहां मरनेवाले मरीज़ों के शवों की चीरफाड़ कर परीक्षा करता। उसकी निजी प्रैक्टिस बहुत कम थी, कोई पांच सौ रूबल सालाना। बस। उसके बारे में और कोई ख़ास बात नहीं थी। पर ओलगा इवानोव्ना और उसके दोस्तों को किसी भी तरह से साधारण नहीं कहा जा सकता था। उनमें से हर एक किसी न किसी तरह से प्रख्यात था और बिल्कुल अज्ञात तो हरगिज़ नहीं था। कुछ लोगों का बहुत नाम हो गया था और कुछ दूसरों ने थोड़ी बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी और वे जो अभी प्रसिद्ध न हो पाये थे, अपने उज्ज्वल भविष्य का परिचय दे चुके थे। एक अभिनेता था, जिसकी वास्तविक नाट्य प्रतिभा को स्वीकार कर लिया गया था। वह शालीन, चतुर, विवेकपूर्ण था और सुन्दर ढंग से पाठ करता था और ओलगा इवानोव्ना को सम्भाषण की शिक्षा देता था। दूसरा एक ओपेरा

का गायक था, मोटा और हंसमुख। वह आह भर कर ओल्गा इवानोव्ना को यक़ीन दिलाता कि वह अपने को बरबाद कर रही है। अगर वह इतनी क़ाहिल न होती, अगर वह अपने पर क़ाबू रखती तो वह बहुत अच्छी गायिका बन सकती है। इनके अलावा कई कलाकार थे जिनमें सबसे प्रमुख र्याबोव्स्की था, जो ग्राम्य जीवन का चित्रकार था, जानवरों और प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण करता और लगभग पच्चीस साल की उम्र का बहुत सुन्दर भूरे बालों वाला नवयुवक था। प्रदर्शनियों में उसके चित्रों की प्रशंसा होती थी और सबसे नया चित्र पांच सौ रूबल में बिका था। वह ओल्गा इवानोव्ना के स्कैच सुधार देता और उसका हमेशा कहना था कि शायद वह चित्रकार बन जाये; और एक वायलिनचेलो बजानेवाला भी था जो बाजे पर रुदन की धुन बजा सकता था, जिसकी खुली घोषणा थी कि उसकी तमाम परिचित महिलाओं में केवल ओल्गा इवानोव्ना उसके साथ पियानो बजाने में समर्थ थी। फिर लेखक, नौजवान लेकिन ख्याति प्राप्त, जिसने लघु उपन्यास, नाटक और कहानियां लिखी थीं। और कौन? हां, वासीली वासीलिच भी था जो कुलीन ज़मींदार था और जो पुस्तकों पर शौक़िया चित्र और बेलबूटे बनाता और जिसे प्राचीन रूसी शैली से और पौराणिक गाथाओं से सच्चा प्रेम था। वह काग़ज़ों, चीनी के बरतनों और तपी तश्तरियों पर अद्भुत चित्र बना सकता था। इस कलापूर्ण, उदार समाज में, भाग्य के इन प्रियपात्रों में जिन्हें सभ्य और शिष्ट होते हुए भी डाक्टर के अस्तित्व की सिर्फ़ बीमार पड़ने पर याद आती थी और जिनके कानों के लिए दीमोव, सिदोरोव या तारासोव जैसा साधारण नाम था, उनके बीच दीमोव एक अजनबी, छोटा और फ़ालतू सा व्यक्ति मालूम पड़ता था, हालांकि वह लम्बे कद का और चौड़े कन्धों वाला था। उसका कोट ऐसा लगता था कि किसी दूसरे के लिए बनाया गया है और उसकी दाढ़ी एक कारिंदे की सी थी। यह सही है कि अगर वह लेखक अथवा कलाकार होता, तो हर एक ज़रूर कहता कि दाढ़ी की वजह से वह विख्यात ज़ोला की तरह लग रहा है।

अभिनेता ओल्गा इवानोव्ना से कह रहा था कि भूरे बालों व शादी की पोशाक में वह चेरी के पेड़ की तरह लग रही थी। उतनी ही सुन्दर जैसा कि वसंत में सफ़ेद फूलों से लदा चेरी का पेड़।

"नहीं, पर सुनो तो!" ओल्गा इवानोव्ना उसका हाथ पकड़ते

हुए कह रही थी। "ऐसा हुआ कैसे? मेरी बात सुनो, सुनो... तुम जानते हो कि मेरे पिता और दीमोव एक ही अस्पताल में काम करते थे। बेचारे पिता जी जब बीमार पड़े तो दीमोव ने रात दिन उनके बिस्तर के पास रहकर देखभाल की। ऐसा आत्मत्याग! सुनो, र्याबोव्स्की... और तुम भी सुनो, लेखक! एक बड़ी दिलचस्प बात है! नज़दीक आ जाओ। ऐसा आत्मत्याग, ऐसी सच्ची हमदर्दी! मैं भी रात को नहीं सोयी, मैं अपने पिता के पास बैठी रही और बिल्कुल एकाएक मैंने उस वीर युवक का दिल जीत लिया! बिल्कुल ऐसा ही। मेरा दीमोव मुहब्बत में दीवाना हो गया। भाग्य कैसा अजीब हो सकता है! ख़ैर, मेरे पिता की मृत्यु के बाद, कभी-कभी दीमोव मुझसे मिलने आता और हम कभी-कभी घर के बाहर भी मिलते और एक दिन – अरे! लो देखो शादी का प्रस्ताव! जैसे आसमान से बिजली गिरी... मैं सारी रात रोयी, मैं भी प्रेम में दीवानी हो गयी। और अब मैं एक शादीशुदा औरत हूं। उसमें एक मज़बूती, एक शक्ति, एक भालू-सी प्रवृति है, है न? अब उसका तीन चौथाई चेहरा हमारी तरफ़ है, रोशनी ग़लत पड़ रही है, लेकिन जब वह अपना चेहरा पूरी तरह हमारी तरफ़ घुमाये तो उसके माथे को देखना। ऐसे माथे के बारे में तुम्हारा क्या कहना है, र्याबोव्स्की? दीमोव, हम तुम्हारे बारे में ही बातें कर रहे हैं!" उसने चिल्ला कर अपने पति से कहा। "यहां आओ और र्याबोव्स्की से अपना ईमानदार हाथ मिलाओ... यह ठीक है। तुम्हें दोस्त होना चाहिए।"

दीमोव ने र्याबोव्स्की की तरफ़ हाथ सरल और प्रसन्नतापूर्ण मुस्कराहट के साथ बढ़ा दिया।

"बहुत ख़ुशी हुई," उसने कहा, "कॉलेज में मेरे साथ एक सहपाठी र्याबोव्स्की था। वह आपका कहीं रिश्तेदार तो नहीं था?"

२

ओलगा इवानोव्ना बाईस साल की थी और दीमोव इकतीस का। शादी के बाद उनका जीवन अत्यन्त सुखी हो गया। अपनी बैठक की दीवारों को ओलगा इवानोव्ना ने अपने और अपने दोस्तों के मढ़े और अनमढ़े

स्कैचों से भर दिया। पियानो और कुर्सी-मेज़ों के चारों ओर उसने चीनी छाते, चित्र रखने की तिपाइयों, कई रंगों के परदों, कटारियों, छोटी-छोटी मूर्तियों, तस्वीरों आदि कलापूर्ण वस्तुओं से भर दिया... खाने के कमरे में उसने सस्ती रंगीन तस्वीरें, छाल के जूते और हंसिये दीवारों पर टांग दिये और एक कोने में बड़ा हंसिया और पचांगुरा रख दिया और इस तरह से खाने का कमरा बिल्कुल रूसी ढंग का बना लिया। सोने के कमरे की दीवालों और छत पर उसने गहरे रंग के परदे लगा दिये ताकि वह गुफा-सी मालूम हो, बिस्तरों के ऊपर वैनिस के लैम्प टांग दिये और दरवाज़े पर गंड़ासा लिए एक मूर्ति खड़ी कर दी। हर एक ने कहा कि नव दम्पति ने अपने लिए बहुत आरामदेह नीड़ तैयार कर लिया है।

ओल्गा इवानोव्ना हर रोज़ ग्यारह बजे जागती, पियानो बजाती या अगर धूप होती तो तैलचित्र बनाती। बारह के थोड़ी देर बाद वह अपनी दर्ज़िन के यहां जाती। उसके और दीमोव के पास बहुत थोड़ा पैसा था, सिर्फ़ जरूरत भर के लिए काफ़ी, और अगर उसे बराबर नयी पोशाकें पहननी थीं ताकि औरों पर रोब पड़े, तो उसे और उसकी दर्ज़िन को हर मुमकिन चालाकी करनी पड़ती। बार-बार पुरानी रंगी हुई फ़्राक और टूल व लेस, मखमल और रेशम के कुछ टुकड़ों से अचम्भे कर दिखाये जाते और पोशाक नहीं, बिल्कुल बढ़िया चीज़, एक सपना सा बनकर तैयार कर दी जाती। दर्ज़िन के यहां से आम तौर पर वह अपनी किसी परिचित अभिनेत्री के यहां थियेटर की गपशप सुनने जाती और मुलाक़ात ही में वह किसी खेल के पहले प्रदर्शन या सहायतार्थ खेल के लिए टिकट पा लेने की कोशिश करती। अभिनेत्री के यहां से उसको किसी कलाकार का स्टूडियो या चित्र-प्रदर्शनी देखने जाना पड़ता और फिर वहां से किसी ख्यातिप्राप्त व्यक्ति के यहां, उसे अपने घर बुलाने के लिए, मुलाक़ात का जवाब देने, अथवा सिर्फ़ गपशप करने के लिए जाना होता। हर जगह अपनत्व और ख़ुशी से उसका स्वागत किया जाता और उसे विश्वास दिलाया जाता कि वह अच्छी, असाधारण, प्यारी है... जिनको वह महान और विख्यात कहती थी वे उसका बराबरी के दर्जे से स्वागत करते और उनकी सर्वसम्मत राय थी कि अपने गुणों, दिमाग़ और रुचि के कारण वह अवश्य ऊंची उठेगी, अगर वह अपनी प्रतिभा को इतनी दिशाओं में बर्बाद करना बन्द कर दे। वह गा लेती, पियानो बजा लेती, तैलचित्र बना लेती, मिट्टी की

मूर्तियां बना लेती, शौक़िया नाटकों में अभिनय करती, और यह सब काम यों ही मामूली से नहीं बल्कि प्रतिभा का प्रदर्शन करते हुए। वह जो भी काम करती, चाहे रोशनी के लिए लालटेन बनानी हो, बनना-ठनना हो, और चाहे किसी की टाई भी बांधनी हो, वह बहुत कलापूर्ण, सुघड़ और मोहक ढंग से करती। लेकिन किसी भी चीज़ में उसकी प्रतिभा इतनी अच्छी तरह प्रदर्शित न होती जितनी कि ख्यातिप्राप्त लोगों से तत्काल दोस्ती और आत्मीयता उत्पन्न कर लेने में। जैसे ही कोई ज़रा-सा भी नाम करता था या उसके बारे में चर्चा शुरू होती, ओल्गा इवानोव्ना फ़ौरन उससे किसी न किसी तरह जान-पहचान पैदा करती, फ़ौरन दोस्त बन जाती और उस व्यक्ति को अपने यहां आमंत्रित कर लेती। प्रत्येक नयी जान-पहचान उसके लिए एक सुनहरा दिन होती। वह प्रसिद्ध व्यक्तियों की पूजा करती थी, वह उन पर गर्व करती और रात में उन्हीं लोगों के सपने देखती। ख्यातिप्राप्त लोगों से जान-पहचान की उसकी प्यास बहुत प्रबल थी, जिसको वह कभी बुझा न पाती। पुराने मित्र विलीन हो जाते और भुला दिये जाते, उनकी जगह नये मित्र ले लेते लेकिन थोड़े दिनों में वह इनसे भी उकता जाती थी, या उनसे निराश हो जाती और वह उत्सुकता से नये दोस्त, नये विख्यात लोगों को खोजने लगती और जब उन लोगों को पा लेती तो दूसरे मित्रों की तलाश में रहती। किसलिए?

चार और पांच बजे के बीच वह अपने पति के साथ घर पर भोजन करती। दीमोव की सादगी, सहज बुद्धि और हंसमुख स्वभाव उसको प्रशंसा और आह्लाद की दशा में पहुंचा देता। वह बार-बार उठकर दीमोव की गरदन में बांह डालकर उसके माथे पर चुम्बनों की बौछार कर देती।

"तुम बुद्धिमान और उदार व्यक्ति हो, दीमोव," उसने दीमोव से कहा, "लेकिन तुम में एक बहुत बड़ा दोष है। तुम कला में रंचमात्र भी दिलचस्पी नहीं लेते। तुम तो संगीत और चित्रकला की अवहेलना करते हो।"

"मैं उन्हें समझता नहीं," उसने नम्रता से कहा। "सारी उम्र मैंने प्राकृतिक विज्ञान और चिकित्सा का अध्ययन किया है और कभी भी कला के लिए मेरे पास समय नहीं रहा।"

"लेकिन यह तो बहुत बुरा है, दीमोव!"

"क्यों? तुम्हारे दोस्त प्राकृतिक विज्ञान और चिकित्सा के बारे में कुछ नहीं जानते और तुम्हें उन लोगों से शिकवा नहीं है। हर एक का

अपना क्षेत्र होता है। प्राकृतिक दृश्यों के चित्र या ओपेरा मेरी समझ में नहीं आते, लेकिन मैं तो इस तरह सोचता हूं कि चूंकि कुछ होशियार आदमी इन चीज़ों में सारी ज़िन्दगी लगा देते हैं, और दूसरे बुद्धिमान लोग इनके लिए काफ़ी धन ख़र्च करते हैं, इसलिए वे ज़रूर ही आवश्यक होंगी। मैं उन्हें समझता नहीं हूं लेकिन इसके ये मानी नहीं कि मैं उनकी अवहेलना करता हूं।"

"ज़रा अपना ईमानदार हाथ बढ़ाना, मैं दबाऊं उसे।"

भोजन के बाद ओल्गा इवानोव्ना मुलाक़ात करने के लिए निकल जाती और फिर नाटक या कंसर्ट में जाती और आधी रात से पहले घर वापस न लौटती। हर रोज़ यही होता।

बुधवार की शाम को लोगों से मिलने के लिए वह घर पर रहती। बुधवार की इन शामों को नाच या ताश नहीं होते थे और लोग कला से अपना मनोरंजन करते थे। प्रसिद्ध अभिनेता संवाद सुनाता, गायक गीत गाता, चित्रकार ओल्गा इवानोव्ना के असंख्य एल्बमों में रेखाचित्र बनाते, वायलिनचेलो बजानेवाला वायलिनचेलो बजाता और गृहिणी स्वयं चित्र बनाती, मूर्तियां बनाती, गाती और गानेवालों के साथ बाजा बजाती। संवाद बोलने, गाने और बजाने के बीच के अवकाश में वे कला, साहित्य और नाटकों के बारे में बातचीत और बहस करते। इन गोष्ठियों में कोई औरतें न होतीं, क्योंकि ओल्गा इवानोव्ना अपनी दर्ज़िन और अभिनेत्रियों को छोड़कर हर औरत को तुच्छ और उबा देनेवाली समझती थी। बुधवार की कोई शाम ऐसी न होती जबकि हर घंटी की आवाज़ पर गृहस्वामिनी विजय भाव से यह न कहती हो कि "यह वह है!" जिसका अर्थ नवीन आमंत्रित प्रसिद्ध व्यक्ति की ओर इशारा होता। दीमोव कभी भी बैठक में न होता और किसी को उसके अस्तित्व का भी भान न रहता। लेकिन ठीक साढ़े ग्यारह बजे खाने के कमरे का दरवाज़ा खुलता और हंसमुख नम्र मुस्कराहट के साथ हाथ मलते हुए दीमोव दरवाज़े पर यह कहते हुए दिखाई देता:

"महाशयो, खाने के लिए चलिये!"

सब लोग खाने के कमरे में जाते और हर मरतबा उनकी आंखें वही चीज़ें पातीं: ओएस्टर, मछली, सूअर या बछड़े का गोश्त, पनीर, कुकुरमुत्ते का अचार, कैवियार, वोद्का और दो जग हल्की शराब।

"मेरे प्यारे मैनेजर!" आह्लाद से ताली बजाती हुई ओल्गा इवानोव्ना

अपने पति से कहती, "तुम तो बहुत मनमोहक हो! ज़रा इनका माथा देखो! दीमोव, हम लोगों की तरफ़ अपना चेहरा तो घुमाओ। देखिये, बंगाल के बाघ का चेहरा और उसपर हिरन की तरह दयालु और प्यारा भाव। मेरे प्यारे!"

मेहमान खाना खाते हुए दीमोव की ओर देखते और सोचते: "वास्तव में भला आदमी है यह," लेकिन वे फ़ौरन ही उसको भूलकर नाटक, संगीत, कला की बातें करने लगते।

युवा दम्पति सुखी थे और उनकी ज़िन्दगी हंसी-ख़ुशी से कट रही थी। यह सही है कि मधुचन्द्र का तीसरा हफ़्ता पूरी तौर पर सुखी नहीं रहा, वास्तव में यह हफ़्ता दुख में कटा। दीमोव को अस्पताल में एरीसीपलास की बीमारी लग गयी और उसको छः रोज़ बिस्तरे में पड़ा रहना पड़ा। ख़ूबसूरत काले बालों वाला उसका सिर मूंड दिया गया। बुरी तरह रोती हुई ओल्गा इवानोव्ना उसके सिरहाने बैठी रहती। लेकिन जब वह ज़रा अच्छा हुआ तो उसने उसके सिर पर एक सफ़ेद रूमाल बांध दिया और अरब रेगिस्तानी की शक्ल में उसका चित्र बनाने लगी। दोनों ने इसे बड़ा मनोरंजक माना। बिल्कुल ठीक हो जाने के तीन दिन बाद जब उसने अस्पताल जाना शुरू कर दिया था, उस पर फिर एक विपत्ति आ गयी।

"मेरी तक़दीर बहुत बुरी है, मम्मी!" दीमोव ने एक दिन खाना खाते वक़्त ओल्गा इवानोव्ना से कहा। "आज मुझे चार शवों की चीरफाड़ करनी थी और मेरी दो उंगलियां कट गयीं। मैं उन्हें घर लौटने पर ही देख पाया।"

ओल्गा इवानोव्ना घबरा उठी। वह मुस्कराया और बोला कि कोई बात नहीं है और चीरफाड़ में अक्सर उसके हाथ कट जाते हैं।

"मैं तन्मय हो जाता हूं, मम्मी, और फिर मैं सब कुछ भूल जाता हूं।"

ओल्गा इवानोव्ना घबराकर ज़हरबाद शुरू होने की आशंका में रही और हर रात प्रार्थना करती रही कि ज़हरबाद न हो। पर कुछ नहीं हुआ। और पहले की तरह सुखी और शांतिपूर्ण, चिन्ताहीन व कष्टहीन जीवन का ढर्रा फिर चल पड़ा। वर्तमान सुन्दर था ही और जल्द ही बसन्त आनेवाला था—दूर से मुस्कराता, उन्हें हज़ार ख़ुशियों का सुखद आश्वासन देता हुआ कि सदैव प्रसन्नता बनी रहेगी। अप्रैल, मई और जून के लिए नगर से दूर देहाती बंगला होगा जहां टहलना, स्कैच बनाना, मछली पकड़ना

ग्रौर बुलबुलें होंगी ग्रौर तब जुलाई से पतझड़ तक वोल्गा पर कलाकारों की उल्लास यात्रा, जिसमें ग्रोल्गा इवानोव्ना स्थायी सदस्या के रूप में हिस्सा लेगी। उसने सादे कपड़े की दो सफ़र की पोशाकें बनवा ली थीं ग्रौर रंग, कूंची व किरमिच ग्रौर नयी रंग-पट्टिका ख़रीद ली थी। उसका चित्रकला का ग्रभ्यास कैसा चल रहा है यह देखने के लिए र्याबोव्स्की लगभग रोज़ ही ग्राता। जब वह उसे ग्रपने चित्र दिखाती तो जेबों में हाथ डालकर, होंठ भींचकर, नाक चढ़ाते हुए वह कहता :

"ग्रच्छा... बादल वहां बहुत भड़कीला है। यह तो शाम की रोशनी नहीं है। ग्रागे की ज़मीन थोड़ी गड़बड़ है ग्रौर कुछ, तुम समझ जाग्रो कि मेरा मतलब है... कमी है। तुम्हारी झोंपड़ी, लगता है जैसे किसी ने ठोंक-पीट दी हो ग्रौर वह कष्ट में रिरिया रही हो... उस कोने को ग्रौर ज़्यादा गहरा कर दो। सब मिलाकर तस्वीर इतनी बुरी नहीं है... मुझे पसंद है।"

वह जितना ही ज़्यादा गूढ़ ढंग से बोलता, उतनी ही ग्रासानी ग्रोल्गा इवानोव्ना को उसे समझने में होती।

३

ईस्टर के दूसरे दिन तीसरे पहर दीमोव कुछ मिठाइयां ग्रौर खाने की चीज़ें लेकर ग्रपनी बीवी के पास देहात में गया। उसने पन्द्रह दिन से उसे देखा नहीं था ग्रौर उसकी याद उसे बुरी तरह सता रही थी। रेल में ग्रौर उसके बाद, जब वह घनी झाड़ियों में उसका बंगला ढूंढ़ रहा था तो उसको बहुत ज़ोर की भूख लग रही थी। दीमोव ग्रपनी बीवी के साथ बैठकर खाने ग्रौर फिर बिस्तर में लेट ग्राराम करने के ध्यान में मग्न हो गया था। ग्रपने हाथ के पारसल को देखकर जिसमें कैवियार, पनीर ग्रौर मछली थी, उसे ख़ुशी हो रही थी।

सूरज ढल चुका था, जबकि वह तलाश करके ग्रपना बंगला पा सका। बूढ़ी नौकरानी ने उसे बताया कि मालकिन घर पर नहीं हैं, लेकिन शायद थोड़ी देर में वापस ग्रा जायें। बदनुमा बनावट के, सादे काग़ज़ लगे, नीची छतों ग्रौर, ऊंचे-नीचे खड्डे पड़े फ़र्श वाले बंगले में सिर्फ़ तीन कमरे थे।

एक कमरे में एक बिस्तर, दूसरे में तस्वीर बनाने की किरमिच, रंग की कूंचियां, मैला काग़ज़, मर्दों के कोट और टोप कुर्सियों और खिड़कियों पर और तीसरे कमरे में दीमोव की भेंट तीन अजनबी आदमियों से हो गयी। दो तो काले बालोंवाले और दाढ़ियां रखे हुए थे और तीसरा दाढ़ी मूंछहीन मोटा व्यक्ति था, वह अभिनेता प्रतीत होता था। मेज़ पर समोवार उबल रहा था।

"आप क्या चाहते हैं?" दीमोव की तरफ़ अप्रसन्न भाव से देखते हुए अभिनेता ने भारी आवाज़ में पूछा, "ओल्गा इवानोव्ना से मिलना? ठहरो। वह आती ही होगी।"

दीमोव बैठकर इन्तज़ार करने लगा। काले बालों वाले व्यक्तियों में से एक ने उसकी ओर नींद भरी उदासीन आंखों से देखते हुए अपने लिए चाय उंडेली और पूछा :

"आप चाय पिएंगे?"

दीमोव भूखा-प्यासा था। लेकिन उसने चाय से इन्कार कर दिया ताकि चाय पीने से भूख न मिट जाये। थोड़ी ही देर में क़दमों की और परिचित हंसी की आवाज़ सुनाई पड़ी। धमाके से दरवाज़ा खुला और चौड़े किनारे वाला टोप लगाये एक पेटी लिए ओल्गा इवानोव्ना कमरे में तेज़ी से घुसी। उसके पीछे बड़ा छाता और मुड़नेवाला स्टूल लिए, र्याबोव्स्की आया। वह बहुत उमंग में था और उसके गाल सुर्ख़ हो रहे थे।

"दीमोव!" ख़ुशी से गद्गद होते हुए ओल्गा इवानोव्ना चीख़ी, "दीमोव!" उसकी छाती पर दोनों हाथ और सिर रखते हुए उसने दोहराया, "तुम हो! तुम इतने लम्बे समय तक यहां क्यों नहीं आये? क्यों? क्यों?"

"मैं कब आ सकता था, मम्मी? मैं हमेशा व्यस्त रहता हूं, और जब मेरे पास थोड़ी फ़ुरसत होती भी है, तो हमेशा ऐसा होता है कि कोई ठीक रेलगाड़ी ही नहीं मिलती।"

"ओह! तुम्हें देखकर मैं कितनी ख़ुश हूं। सारी रात, सारी रात मैं तुम्हारा स्वप्न देखती रही। मैं डर रही थी कि कहीं तुम बीमार न हो। काश तुम्हें पता होता कि तुम कितने प्यारे हो, और यह कितने सौभाग्य की बात है कि तुम आ गये हो! तुम मेरे उद्धारक हो! सिर्फ़ तुम्हीं अकेले ऐसे हो, जो मुझे बचा सकते हो! कल यहां एक बिल्कुल मौलिक शादी होने जा रही है," हंसते हुए अपने पति की टाई ठीक करते हुए

उसने कहा। "तारघर के कर्मचारी की शादी हो रही है, चिकेलदेयेव उसका नाम है, अक़्लमंद और ख़ूबसूरत लड़का है। उसके चेहरे में कुछ शक्ति, कुछ भालूपन सा है... वह एक नौजवान नार्मन योद्धा का चित्र बनवाने के लिए नमूना बन सकता है। गरमियों में यहां आये हम सबने उसमें दिलचस्पी ली है और उसकी शादी में शामिल होने का पक्का वादा किया है... वह अमीर नहीं है, एकाकी और शर्मीला, उससे सहानुभूति न करना पाप होगा। ज़रा सोचो, शादी प्रार्थना के फ़ौरन बाद होगी और सब लोग गिरजे से सीधे दुलहन के घर जा रहे हैं... उपवन, गाती हुई चिड़ियां, घास पर सूर्य की किरणें, तुम समझो, चमकीली हरी पृष्ठभूमि पर हम सब रंगीन धब्बे–कितना मौलिक, बिल्कुल फ़्रांसीसी अभिव्यक्तिवादियों की तरह। लेकिन, दीमोव, मैं गिरजे में पहनूंगी क्या?" व्यथाकुल चेहरा बनाते हुए ओल्गा इवानोव्ना ने कहा। "यहां मेरे पास कुछ नहीं है, वाक़ई कुछ नहीं है, न पोशाक, न फूल, न दस्ताने... तुमको मुझे बचाना ही पड़ेगा। इस वक़्त तुम्हारे यहां आने के मानी हैं कि यह भाग्य की इच्छा थी कि तुम मुझे बचाओ। चाबियां ले लो, प्यारे, घर जाओ और कपड़ों की अल्मारी से मेरी गुलाबी पोशाक ले आओ। याद है? यह बिल्कुल सामने ही लटक रही है... और बक्सों वाले कमरे के फ़र्श पर दायीं ओर तुम्हें दफ़्ती के दो बक्से मिलेंगे; जब तुम ऊपर वाला बक्सा खोलोगे तो तुम्हें सिवा टूल, टूल, टूल और दुनिया भर के टुकड़ों के और कुछ नहीं दीख पड़ेगा और उसके नीचे फुलवर। जितनी फुलवर हों, उनको होशियारी से निकाल लेना और कोशिश करना कि गिजगिजाये नहीं। मैं बाद में उनमें से कुछ चुनूंगी... और मेरे लिए एक जोड़ा दस्ताना ख़रीद लेना।"

"अच्छा," दीमोव ने कहा, "मैं कल जाकर उन्हें भेज दूंगा।"

"कल?" उसकी ओर स्तब्धता से देखते हुए ओलगा इवानोव्ना ने कहा। "कल तो सम्भव ही नहीं है। पहली गाड़ी कल नौ बजे छूटती है और शादी ग्यारह बजे है। नहीं, प्यारे, तुम्हें आज ही जाना है, जरूर आज! अगर तुम खुद कल नहीं आ सकते हो, तो सब चीज़ें अरदली के ज़रिये भेज देना। जाओ, अभी... गाड़ी अब आती ही होगी। मेरे दुलारे, देर मत करो।"

"अच्छी बात है।"

"ओह, तुम्हें भेजते हुए मुझे कितना क्षोभ हो रहा है।" ओल्गा इवानोव्ना ने कहा और उसकी आंखों में आंसू भर आये। "तारघर के कर्मचारी से वादा करके मैंने कितनी बड़ी बेवक़ूफ़ी की है।"

चाय का गिलास निगलकर, एक बिस्कुट उठाते हुए दीमोव दीनता से मुसकराते हुए स्टेशन चला गया। कैवियार, पनीर और मछली को उन दो काले बालों वाले आदमियों और मोटे अभिनेता ने खाया।

४

जुलाई की एक निस्तब्ध चांदनी रात में, ओल्गा इवानोव्ना वोल्गा नदी में एक स्टीमर पर खड़ी बारी-बारी से पानी और नदी का सुन्दर किनारा देख रही थी। उसके पास र्याबोव्स्की खड़ा हुआ उसे बता रहा था कि पानी की सतह पर पड़नेवाली काली छायाएं, छायाएं नहीं, स्वप्न हैं। यह असीम आकाश, यह उदास और चिन्ताकुल किनारे, सब हमसे हमारे जीवन की निस्सारता बता रहे हैं और किसी महान, अविनाशी और आनन्दकारी चीज़ का अस्तित्व सिद्ध कर रहे हैं। अच्छा हो कि हर चीज़ भुला दी जाये, मर जाया जाये और इस जादू भरे चमकीले पानी से घिरी हुई एक यादगार बन जाया जाये! अतीत तुच्छ था, रागहीन भविष्य निर्विकार और यह नैसर्गिक, कभी फिर न आनेवाली रात शीघ्र समाप्त हो जायेगी और अनादि-अनन्त का अंग बन जायेगी। क्यों, तो फिर ज़िन्दा क्यों रहें?

ओल्गा इवानोव्ना बारी-बारी से र्याबोव्स्की की आवाज़ और रात की ख़ामोशी सुन रही थी और अपने आपसे कह रही थी कि वह अमर है और वह कभी नहीं मरेगी। पन्ना-सा चमकनेवाला जल, जैसा कि उसने पहले कभी नहीं देखा था, आकाश, नदी के किनारे, काली छायाएं और अज्ञात आनन्द जिससे उसकी आत्मा विभोर हो उठी थी, सब चीज़ें उससे कह रही थीं कि एक रोज़ वह महान कलाकार बनेगी और कहीं दूर, चांदनी से जगमगाती रात, असीम आकाश के पार सफलता, यश और जनता का प्रेम उसकी प्रतीक्षा में हैं... टकटकी लगाये देर तक अंधकार में घूरते-घूरते उसे दिखने लगा कि जैसे भीड़, रोशनी, गंभीर संगीत की ध्वनि, प्रोत्साहन

देनेवाली शाबाशियां, सफ़ेद पोशाक में वह स्वयं अपने ऊपर चारों ओर से फूलों की वर्षा हो रही हो। उसने स्वयं से कहा भी कि उसके पास रेलिंग पर झुका हुआ व्यक्ति दरअसल महान है, विलक्षण प्रतिभावान है, ईश्वर का प्रिय पात्र है... अभी तक की उसकी कृतियां आश्चर्यजनक, ताज़ा, अनोखी हैं और जब समय के साथ उसकी असाधारण प्रतिभा परिपक्व हो जायेगी, तब उसकी कृतियां आकर्षक और अत्यन्त उच्च श्रेणी की होंगी और इन सभी की झांकी उसके चेहरे में, अपने को व्यक्त करने के ढंग में और प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण में दिखाई पड़ती है। छायाओं, शाम के रंगों, चांदनी की चमक का वर्णन करने की उसकी अपनी विशेष भाषा है, प्रकृति पर उसकी शक्ति का जादू अभिभूत कर लेता है। वह सुन्दर भी है और मौलिक भी, स्वतंत्र, स्वच्छन्द, सांसारिक बंधनहीन उसका जीवन पक्षियों के जीवन के समान है।

"ठंडक हो रही है।" ओलगा इवानोव्ना ने कहा और उसे कंपकंपी आ गयी।

र्याबोव्स्की ने अपना कोट उसके शरीर में लपेट दिया और उदास होकर बोला:

"मुझे लगता है कि मैं तुम्हारे क़ब्ज़े में हूं। मैं ग़ुलाम हूं। तुम आज इतनी मोहिनी क्यों लग रही हो?"

वह लगातार उसकी ओर बिना नज़र हटाये देखता रहा। उसकी आंखों में कुछ ऐसी डरावनी चमक थी कि ओलगा इवानोव्ना को उसकी ओर देखने में डर लग रहा था।

"मैं तुम्हारे प्रेम में पागल हूं..." उसके गाल पर सांस छोड़ते हुए वह फुसफुसाया, "तुम सिर्फ़ एक शब्द कह दो और मैं ज़िन्दा नहीं रहूंगा, कला त्याग दूंगा..." बहुत विकल होकर वह धीरे से बोला, "मुझे प्यार करो, मुझे प्यार करो..."

"इस तरह से बात मत करो," आंखें बन्द करते हुए ओलगा इवानोव्ना ने कहा। "यह बहुत बुरा है। और दीमोव का क्या होगा?"

"दीमोव की क्या परवाह? दीमोव क्यों? मुझे दीमोव से क्या लेना-देना है? वोलगा, चांद, सुन्दरता, मेरा प्यार, मेरा आह्लाद, लेकिन कोई दीमोव नहीं... आह! मैं कुछ नहीं जानता... मुझे अतीत नहीं चाहिए, मुझे केवल एक क्षण दे दो... एक छोटा-सा क्षण!"

ओलगा इवानोव्ना का दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था। उसने अपने पति के बारे में सोचने की चेष्टा की, लेकिन पूरा अतीत, उसकी शादी, दीमोव, बुधवार की शामें, सब कुछ अब उसे तुच्छ, नगण्य, भद्दा, बेकार और दूर, बहुत दूर लग रहा था... और आख़िरकार दीमोव की क्या परवाह है? दीमोव क्यों? दीमोव से उसे क्या मतलब? क्या वास्तव में ऐसा कोई व्यक्ति था, क्या वह स्वप्न मात्र तो नहीं था?

"उसको जितनी ख़ुशी मिली है वह उस जैसे मामूली आदमी के लिए काफ़ी है," चेहरे को अपने हाथों से ढांकते हुए उसने अपने आपको समझाया। "उस लोक में मेरा न्याय हो, मुझे वे शाप दे दें। मैं अपने नाश की ओर जाऊंगी, हां, अपने नाश की ओर, केवल, उन्हें चिढ़ाने के लिए... जीवन में एक बार हर चीज़ आज़मानी चाहिए। हे ईश्वर, कितना भयानक और कितना मोहक है यह!"

"अच्छा? अच्छा?" उसको बांहों से घेरते हुए और आवेश से उसके हाथों को चूमते हुए जिनसे वह हल्के से उसे दूर हटा रही थी, कलाकार बुदबुदाया, "तुम मुझे प्यार करती हो न? क्या हां? वाह! क्या रात है! कैसी स्वार्गिक रात है!"

"हां, कैसी सुन्दर रात है!" आंसुओं से चमकती हुई उसकी आंखों में आंखें डालकर वह फुसफुसायी। फिर फ़ौरन इधर-उधर देखकर उसने उसे बांहों में भर लिया और उसके होंठों को चूम लिया।

"हम एक मिनट में किनेश्मा पहुंच जायेंगे," डेक की दूसरी तरफ़ से किसी ने कहा।

भारी क़दम सुनाई पड़े। यह बुफ़े के आदमी के चलने की आवाज़ थी।

"सुनो," आनन्द से हंसते और रोते हुए ओलगा इवानोव्ना ने उसे पुकारा, "हमारे लिए थोड़ी शराब ला दो।"

कलाकार उद्वेग से पीला पड़ गया। वह बेंच पर बैठ गया और ओलगा इवानोव्ना को प्रशंसा और कृतज्ञता के भाव से देखते हुए उसने अपनी आंखें बन्द कर लीं, क्लान्त हंसी से उसने कहा:

"मैं थक गया हूं।"

और उसने अपना सिर रेलिंग पर रख लिया।

५

दूसरी सितम्बर को दिन गर्म था, हवा स्थिर थी, पर बादल छाये हुए थे। सवेरे तड़के वोल्गा के ऊपर हल्का कुहासा छाया हुआ था और नौ बजे के बाद बूंदें पड़नी शुरू हो गयीं और आसमान साफ़ हो जाने की बिल्कुल ही आशा न रही। नाश्ते पर र्याबोव्स्की ने ओल्गा इवानोव्ना से कहा कि चित्रकारी सब कलाओं से अधिक कृतघ्न और उबा देनेवाली कला है कि वह कलाकार है ही नहीं, और बेवक़ूफ़ों को छोड़कर और किसी को उसकी प्रतिभा में विश्वास नहीं है। अचानक उसने चाकू उठा कर अपने सबसे सफल स्कैच को खुरच डाला। नाश्ते के बाद वह अन्यमनस्क-सा खिड़की पर बैठा नदी की ओर देखता रहा। अब वोल्गा चमक नहीं रही थी, वह धुंधली, मद्धिम और ठंडी लग रही थी। हर चीज़ उदास, सूने पतझड़ के आगमन की ओर इंगित करने लगती थी। ऐसा लग रहा था जैसे किनारे की चमकीली हरी दरियां, सूर्य की किरणों का हीरों जैसा प्रतिबिम्ब, नीली पारदर्शी दूरी और समस्त सुन्दर वसन प्रकृति ने वोल्गा से छीन कर अगले वसन्त तक के लिए सन्दूक़ में बन्द कर दिया हो। और नदी के ऊपर कौवे उसे चिढ़ाते हुए उड़ रहे थे: "नंगी! नंगी!" र्याबोव्स्की उनकी कांव-कांव सुनता रहा और अपने से कहता रहा कि चित्र बनाते-बनाते मेरी प्रतिभा लुप्त हो गयी, कि इस संसार में सब कुछ रूढ़िग्रस्त, आपेक्षिक और मूर्खतापूर्ण है, कि मुझे इस औरत के चक्कर में नहीं आना चाहिए था... वह व्यथित और खिन्न था।

ओल्गा इवानोव्ना परदे की ओट में खाट पर बैठी अपने सुन्दर सुनहले बालों में उंगलियां फिरा रही थी और कल्पना में देख रही थी कि वह अपने दीवानखाने, सोने के कमरे, अपने पति के कक्ष में है। उसकी कल्पना ने उसे थियेटर, दर्ज़िन और अपने नामी मित्रों के पास पहुंचा दिया। वे इस समय क्या कर रहे होंगे? क्या उन लोगों को कभी उसकी भी याद आयी होगी? सीज़न तो शुरू हो गया था और उससे अपनी बुधवार की शामों के बारे में खयाल आया था। और दीमोव? प्यारा दीमोव! कितनी नम्रता और बच्चों जैसी सरलता के साथ रट लगाकर वह अपने पत्रों में उससे घर लौट आने की लगातार प्रार्थना किये जा रहा था! हर महीने वह उसको पचहत्तर रूबल भेजता था और जब उसने लिखा कि मैंने कलाकारों से सौ

रूबल उधार लिए हैं, तो उसने सौ रूबल और भेज दिये थे। कितना अच्छा, उदार पुरुष है, वह! यात्रा ने ओल्गा इवानोव्ना को थका दिया था, वह ऊब गई थी, वह बेचैन थी कि किसानों के बीच से और नदी से उठनेवाली नमी की इस गंध से किसी प्रकार बच कर भाग जाये, और उस शारीरिक गन्दगी की भावना को झाड़ कर फेंक दे जिससे किसानों की झोंपड़ियों में रहते-रहते, गांव-गांव फिरने से भी कभी उसका पिंड नहीं छूटता था। यदि र्याबोव्स्की ने कलाकारों को बीस सितम्बर तक साथ रहने को वचन न दे दिया होता तो वे दोनों आज ही चले जाते। कितनी बढ़िया बात होती यह!

"हे भगवान!" र्याबोव्स्की ने पीड़ित स्वर में कहा, "यह सूरज पता नहीं कब निकलेगा! मैं सूरज की रोशनी से दमकते प्राकृतिक दृश्य का चित्र कैसे बनाता जाऊं जब खुद सूरज का ही पता न हो!"

"तुम्हारे पास एक स्कैच है जिसमें आकाश पर बादल छाये हैं," ओल्गा इवानोव्ना ने ओट के बाहर निकलते हुए कहा, "क्या तुम्हें याद नहीं? इसमें सामने ही दाहिनी ओर एक जंगल है और गायों और बत्तखों का झुंड बाईं ओर है। तुम उसे पूरा कर डालो अब!"

"हे, भगवान!" कलाकार ने मुंह बनाते हुए कहा, "पूरा कर डालो! क्या तुम सचमुच मुझे इतना मूर्ख समझती हो कि मैं अपना बुरा-भला नहीं जानता?"

"तुम मेरे लिए कितने बदल गये हो!" ओल्गा इवानोव्ना ने ठंडी सांस भरते हुए कहा।

"यह भी अच्छा ही हुआ।"

ओल्गा इवानोव्ना का मुंह फड़कने लगा, वह जल्दी से अलावघर के पास पहुंच गयी और वहीं खड़ी होकर रोने लगी।

"और अब ये आंसू भी! बस, अब बन्द करो! मेरे पास भी रोने के हजार कारण मौजूद हैं, पर मैं तो नहीं रोता।"

"हजार कारण!" ओल्गा इवानोव्ना ने सिसकी लेते हुए कहा, "सब से बड़ा कारण तो यह है कि तुम मुझसे ऊब गये। हां!" और उसकी सिसकियां और भी तेज़ हो गयीं। "असली बात यह है कि तुम हमारे प्रेम पर लज्जित हो। तुम डरते हो कि कलाकारों को कहीं पता न चल जाये यद्यपि यह बात कहीं छिपाये नहीं छिपती है और वे लोग तो सब कुछ जानते हैं।"

"ओलगा, मेरी तुमसे एक ही प्रार्थना है," कलाकार ने अनुनयविनय के स्वर में, अपनी छाती पर हाथ रखते हुए कहा, "केवल एक ही बात कि मुझे परेशान मत करो। मैं तुमसे बस, यही चाहता हूं!"

"तो क़सम खाओ कि तुम्हें मुझसे अब भी प्रेम है!"

"यह तो यातना है!" कलाकार ने दांत भींच कर कहा, और एकदम से उठ खड़ा हुआ। "इसका परिणाम यही होगा कि मैं या तो वोल्गा में कूद पड़ूंगा या पागल हो जाऊंगा। मुझे छोड़ दो!"

"मुझे मार डालो, हां, हां, मुझे मार डालो!" ओलगा इवानोव्ना चिल्लायी, "मुझे मार डालो!"

वह फिर फूट-फूट कर रोने लगी और परदे के पीछे चली गयी। फूस की छत पर वर्षा की बूंदें सरसराने लगीं। र्याबोव्स्की अपना सिर पकड़े कमरे में कुछ देर तक टहलता रहा और तब उसके मुख पर दृढ़ निश्चय के लक्षण झलक पड़े मानो वह किसी से बहस में कोई बड़ा तर्क दे रहा हो, उसने टोपी पहनी, बन्दूक़ कन्धे पर डाली और झोंपड़ी से बाहर चला गया।

उसके जाने के पश्चात, ओलगा इवानोव्ना बड़ी देर तक रोती हुई खाट पर पड़ी रही। पहले उसने सोचा कि अच्छा हो कि वह जहर खा ले और जब र्याबोव्स्की लौटे तो वह मरी पड़ी हो। परन्तु क्षण भर में ही उसके विचार अपने दीवानख़ाने, अपने पति के कक्ष तक पहुंच गये और उसने देखा कि वह चुपचाप दीमोव के पास बैठी शान्ति और स्वच्छता की भावनाओं का आनन्द ले रही है और फिर नाट्यशाला में बैठी माज़िनी का संगीत सुन रही है। और सभ्यता, नगर के कोलाहल, नामी व्यक्तियों के लिए तड़प से उसके हृदय में टीस उठी। गांव की एक औरत झोंपड़ी में आयी और भोजन की तैयारी के लिए धीरे-धीरे चूल्हे की आंच तेज करने लगी। लकड़ी जलने की दबी-दबी गन्ध फैली और हवा धुएं से नीली हो गयी। कलाकार अपने कीचड़ में सने भारी बूट चढ़ाये हुए आये। उनके मुख वर्षा से भीगे हुए थे। वे स्कैचों को देख रहे थे और अपने मन को यह कहकर बहला रहे थे कि वोल्गा इस खराब मौसम में भी आकर्षक होती है। दीवाल पर टंगी सस्ती घड़ी का लटकन टिक-टिक कर रहा था... मक्खियां कोने में देव मूर्तियों के चौखटे के पास भीड़ लगाये भनभना रही थीं और बेंचों के नीचे उभरी हुई फ़ाइलों के अन्दर तिलचटे रेंग रहे थे...

र्याबोव्स्की सूर्यास्त के समय झोंपड़ी में लौटा। उसने अपनी टोपी मेज़ पर पटकी और कीचड़ भरे बूट सहित, थकावट से चूर, पीला पड़ा, बेंच पर धम से गिर पड़ा और अपनी आंखें बन्द कर लीं।

"मैं थक गया हूं..." उसने कहा, पलकें ऊपर उठाने के प्रयत्न में उसकी भौंहें फड़क रही थीं।

ओल्गा इवानोव्ना उसको मनाने और यह दिखलाने की आकुलता में कि वह उससे सचमुच नाराज़ नहीं है, एकाएक उसके पास पहुंच गयी, चुपचाप उसका चुम्बन किया और उसके सुन्दर बालों में कंघी चलायी। अचानक उसके जी में आया कि उसके बालों में कंघी करे।

"अरे, यह क्या?" उसने चौंकते हुए कहा मानो कोई चिपचिपी वस्तु उसे छू गयी हो। और अपनी आंखें खोलते हुए बोला: "यह क्या है? कृपा करके मुझे चैन से रहने दो।"

उसने अपने पास से उसे हटा दिया और स्वयं हट गया और ओल्गा इवानोव्ना को लगा कि उसके मुख से घृणा और नाराज़गी की भावना टपक रही थी। ठीक उसी समय वह देहाती औरत र्याबोव्स्की के लिए बंदगोभी के शोरबे की तश्तरी दोनों हाथों में संभाले हुए आयी और ओल्गा इवानोव्ना ने देखा कि उसके मोटे अंगूठे शोरबे से भीगे हुए थे। पेट के ऊपर साया कसे हुए वह गन्दी औरत, वह शोरबा जिस पर र्याबोव्स्की टूट पड़ा, वह झोंपड़ी, यह जीवन जो शुरू में अपनी सरलता और कलात्मक बेढंगेपन के कारण इतना आनन्ददायक प्रतीत होता था, अब उसे भयंकर रूप से असह्य लगने लगा। एकदम अपमानित-सी होकर उसने रुखाई से कहा:

"हमें कुछ समय के लिए अलग होना पड़ेगा, नहीं तो ऊब और खीज में हम आपस ही में लड़ बैठेंगे। उकता गयी हूं मैं। आज ही चली जाऊंगी।"

"कैसे? झाड़ू पर सवार होकर?"

"आज बृहस्पतिवार है और स्टीमर साढ़े नौ बजे आयेगा।"

"अच्छा? तो ठीक है...फिर चली ही जाइये," र्याबोव्स्की ने नैपकिन न होने पर तौलिये से ओंठ पोंछते हुए हल्के से कहा, "तुम्हारा मन यहां नहीं लगता और मैं इतना स्वार्थी नहीं हूं कि तुम्हें रोके रखने का प्रयास करूं। जाओ, हम फिर बीसवीं तारीख के बाद मिलेंगे।"

ओल्गा इवानोव्ना के मन का बोझ उतर गया और वह अपना सामान

बांधने लगी। उसका मुख सन्तोष से दमक उठा। "क्या यह सचमुच संभव है?" उसने अपने मन से प्रश्न किया: "मैं शीघ्र ही अपने दीवानख़ाने में बैठकर चित्र बनाऊंगी, अपने सोने के कमरे में सोऊंगी और कपड़ा बिछे हुए मेज़ पर भोजन करूंगी?" उसके कन्धों से एक बोझ-सा उतर गया था और वह कलाकार से रुष्ट नहीं थी।

"मैं अपने रंग और चित्र बनाने की कूंची तुम्हारे लिए छोड़ जाऊंगी, र्‌याबूशा," उसने पुकार कर कहा, "यदि कुछ बच जाये, तो तुम उन्हें साथ लेते आना... अच्छा देखो जब मैं न रहूं तब तुम आलसी न बन जाना, मन उदास कर न बैठ रहना, काम करना। बड़े प्यारे हो तुम, र्‌याबूशा!"

नौ बजे र्‌याबोव्स्की ने विदाई का चुम्बन किया, ओल्गा इवानोव्ना के ख़्याल में इसलिए कि उसे स्टीमर पर कलाकारों के सामने चुम्बन न करना पड़े। फिर वह उसको जहाज़-घाट तक पहुंचाने गया। स्टीमर शीघ्र ही आया और उसे लेकर चल पड़ा।

ढाई दिन में वह घर पहुंच गयी। अपना हैट और बरसाती उतारे बिना, घबड़ाहट से हांफते हुए वह दीवानख़ाने में घुस गयी और वहां से खाने के कमरे में। दीमोव क़मीज़ पहने, वास्कट के बटन खोले मेज़ पर बैठा एक कांटे के दान्तों पर चाकू तेज़ कर रहा था। उसके सामने प्लेट में भुनी हुई मुर्ग़ाबी रखी हुई थी। ओल्गा इवानोव्ना घर में यह निश्चय करके आयी थी कि उसे सारी बात अपने पति से छिपाये रखनी चाहिए और ऐसा करने की योग्यता और शक्ति उसमें थी भी। परन्तु अपने पति की खुली, नम्र, प्रसन्न मुस्कान और उसकी आंखों में चमकते हुए सुख को देखकर उसे ऐसा लगा कि ऐसे मनुष्य को धोखा देना उसके लिए उतना ही नीचतापूर्ण, घृणित और असंभव होगा जितना कि कलंक लगाकर बदनाम करना, चोरी अथवा हत्या करना। उसने उसी क्षण निश्चय किया कि जो कुछ बीती है, पूरी कह सुनाये। अपने पति को चुम्बन करने और गले मिलने का अवसर प्रदान करके, वह उसके सामने घुटने टेक कर बैठ गयी और अपना मुख दोनों हाथों से छिपा लिया।

"यह क्या? अरे यह क्या मम्मी?" उसने स्नेहपूर्वक पूछा, "क्या मैं इतना याद आता था?"

उसने अपना मुंह उठाया, जो शर्म से लाल हो उठा था, और अपराधी

10*

की भांति विनती भरी दृष्टि अपने पति पर डाली, परन्तु शर्म और डर ने उसको सच बात बताने से रोक दिया।

"कुछ भी नहीं..." उसने कहा, "मैं तो यों ही..."

"अच्छा, बैठ जाओ," उसने उसको उठाकर मेज़ पर बैठाते हुए कहा, "अब ठीक है... मुर्ग़ाबी खा लो। तुम्हें भूख लगी है, मेरी जान।"

उसने उत्सुकतापूर्वक अपने परिचित वातावरण में सांस ली, कुछ मुर्ग़ाबी खायी और वह स्नेहपूर्वक उसे घूरता और आनन्द से हंसता रहा।

६

जाड़ा सम्भवतः आधा बीत चुका था जब दीमोव को सन्देह होने लगा कि उसे धोखा दिया जा रहा है। वह अब अपनी पत्नी से आंखें नहीं मिला सकता था मानो स्वयं उसकी अन्तरात्मा दूषित हो गयी हो। अब वह उससे मिलता तो प्रसन्नता से मुस्कराता भी नहीं था, और उसके साथ एकान्त में जितना कम हो सके रहने के लिए वह छोटे बालों और झुर्रीदार चेहरे वाले अपने एक मित्र कोरोस्तेल्योव को बराबर अपने साथ भोजन के लिए लाने लगा। वह मित्र ओलगा इवानोव्ना को सम्बोधित करते ही घबड़ाहट में अपने कोट के बटन खोलने और बन्द करने लगता और फिर दाहिने हाथ से अपनी बाईं मूंछ खुरचने पर उतर आता। भोजन के समय डाक्टर बात किया करते कि उदर, वितान बहुत ऊंचा हो तो कभी-कभी दिल की धड़कन गड़बड़ा जाती है; या इधर मानसिक रोग अधिक फैलने लगे हैं, या दीमोव को कल एक रोगी की शव-परीक्षा करने में, जिसकी मृत्यु पीलिया में हुई थी, पित्तकोश में कैन्सर का पता चला था। ऐसा लगता था कि वे इस प्रकार की डाक्टरी बातचीत केवल इसलिए करते रहते थे कि ओलगा इवानोव्ना को बोलने अर्थात झूठ बोलने का अवसर न मिले। खाना खाने के बाद कोरोस्तेल्योव पियानो पर बैठ जाता और दीमोव ठण्डी सांस भर कर पुकारता:

"आओ, मेरे पुराने साथी! कोई विषाद भरी धुन बजाओ।"

कन्धे ऊंचे उठाये अपनी उंगलियां फैलाकर कोरोस्तेल्योव एक दो सुर

बजाता और ऊंचे स्वर में गाने लगता : "दिखा दो वह जगह मुझ को जहां रूसी किसान पीड़ा से नहीं कराहता," और दीमोव एक और ठण्डी सांस लेकर अपना सिर अपनी बन्द हथेली पर टिका लेता और विचारों में डूब जाता।

ओलगा इवानोव्ना अब अत्यन्त असावधानी से रहने लगी थी। वह रोज़ प्रातः उठती तो उसका चित्त अत्यंत बिगड़ा होता। उस समय वह विचार करती कि अब वह र्याबोव्स्की से प्रेम नहीं करती और इसे ख़ुदा का शुक्र मानती। परन्तु एक प्याला क़हवा पीने के बाद वह अपने को याद दिलाती कि र्याबोव्स्की ने उसके पति को उससे छीन लिया है और अब वह बिना पति और बिना र्याबोव्स्की के रह गयी है। फिर उसे याद आता कि उसके मित्र किसी अद्‌भुत चित्र की बात कर रहे थे जिसे र्याबोव्स्की प्रदर्शनी के लिए तैयार कर रहा था जो चित्रकार पोलेनोव की शैली में प्राकृतिक दृश्य और समस्या का सम्मिश्रण सा था और जो भी उसके स्टूडियो में गया था उसकी प्रशंसा की झड़ी लगा देता था। परन्तु ओलगा इवानोव्ना ने अपने मन को समझाया कि उसने यह चित्र मेरे ही प्रभाव से बनाया है और मेरे ही प्रभाव में उसकी कला का इतना महान विकास हुआ है। मेरा प्रभाव इतना लाभप्रद, इतना अर्थपूर्ण रहा है कि यदि मैं उसे छोड़ दूं तो वह धूल में मिल जायेगा। उसे यह भी याद आता कि जब वह पिछली बार मिलने आया तो उसने भूरा कोट पहन रखा था जिसमें चांदी के धागे बिने थे, टाई नयी थी, और उसने बड़े आसक्त भाव से पूछा था : "मैं सुन्दर हूं?" वह लम्बे घुंघराले बालों और नीली आंखों के कारण बहुत सुन्दर था। (कम से कम उसे तो ऐसा ही लगा था) और वह उसपर अपना प्रेम-भाव प्रदर्शित कर रहा था।

इसी प्रकार की और बहुत सी बातें वह याद करती, स्वयं परिणाम निकालती हुई, जल्दी-जल्दी कपड़े पहनती और बड़ी बेचैनी लिये र्याबोव्स्की के स्टूडियो पहुंच जाती। वह उसे प्रायः प्रसन्नचित्त और अपने चित्र की प्रशंसा करते हुए पाती, जो वास्तव में अत्यन्त सुन्दर था। वह तरंग में होता, हंसी ठट्ठे की बातें करता और गंभीर प्रश्नों को हंसी में टाल देता। ओलगा इवानोव्ना को चित्र से ईर्ष्या और घृणा थी, परन्तु वह सदैव ही पांच मिनट तक उसके सामने शिष्ट मौन में खड़ी रहती,

और तब जिस प्रकार लोग देव प्रतिमा के सामने ठण्डी सांसें भरते हैं, वह सांस भरकर कहती :

"हां, तुमने ऐसी चीज़ अब तक नहीं बनायी। तुम जानते हो, मुझे तो उससे डर लगने लगा है।"

तब वह उससे प्रेम करते रहने के लिए विनती करती कि उसे ठुकरा न दे और उस जैसे दीन दुखी जीव पर दया करे। वह रोती, उसके हाथ चूमती, उससे प्रेम का आश्वासन प्राप्त करने का प्रयत्न करती और यह बतलाती कि उसके प्रभाव के बिना वह मार्ग से भटक कर खो जायेगा। उसे पूरी तरह बौखला देने और अपना अपमान करा चुकने के बाद वह दर्जिन या एक जान-पहचान की अभिनेत्री के यहां नाटक के टिकट लेने के लिए चली जाती।

जिस दिन वह स्टूडियो में न मिलता, वह उसके लिए एक परचा छोड़ जाती कि तुम आज ही न आये तो ज़हर खाकर मर जाऊंगी। डर के मारे वह मिलने जाता और भोजन के लिए रुका रहता। उसके पति के उपस्थित होते हुए भी उसे कोई लाज न आती और वह उसके लिए अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करता, और वह भी उसका उत्तर उन्हीं शब्दों में देती। दोनों एक दूसरे को अपने मार्ग में बाधक समझते थे, और समझते थे कि दोनों अत्याचारी और शत्रु हैं। उससे उन्हें और भी क्रोध आता था और क्रोध में उन्हें इस बात का ध्यान भी नहीं रहता था कि उनका व्यवहार कितना अभद्र है। यहां तक कि छोटे बालों वाला कोरोस्तेल्योव भी सब कुछ समझ जाता था। भोजन के बाद र्याबोव्स्की जल्दी से विदा होकर चल देता।

"कहां जा रहे हो?" ओल्गा इवानोव्ना उससे ड्योढ़ी पर घृणा की दृष्टि से देखती हुई पूछती।

त्योरियां चढ़ाते हुए आंखें आधी बन्द करके वह किसी ऐसी महिला का नाम ले लेता जिसे वे दोनों जानते थे। स्पष्ट था कि वह उसकी ईर्ष्या की हंसी उड़ाना और उसे चिढ़ाना चाहता था। वह अपने सोने के कमरे में जाकर लेट जाती। ईर्ष्या, क्रोध, अपमान और लज्जा के कारण वह तकिया दांत से फाड़ती और ज़ोर ज़ोर से सिसकियां भरने लगती। तब दीमोव, कोरोस्तेल्योव को दीवानखाने ही में छोड़, सोने के कमरे में जाता और कुछ झेंपते, कुछ घबड़ाते हुए धीमे स्वर में कहता :

"इतने ज़ोर से मत रोओ, मम्मी... रोना किसके लिए? इस मामले में तुम्हें तो चुपचाप रहना चाहिए... लोगों को इसका पता क्यों देती हो... जो हो गया उसे सुधारना असम्भव है।"

अपनी ईर्ष्या दबा न पाने पर जिससे कि उसकी कनपटियां तक फड़कने लगती थीं और अपने मन को यह समझाते हुए कि अभी भी गुत्थी को सुलझाया जा सकता है, वह उठ पड़ती, मुंह-हाथ धोती, अपने आंसू भरे मुख पर पाउडर थोपती और जिस महिला का नाम र्‌याबोव्स्की ने बताया होता उसी के घर की ओर चल पड़ती। र्‌याबोव्स्की को वहां न पाकर वह दूसरे घर को, फिर तीसरे घर को भागती... पहले पहल तो उसे इन यात्राओं पर लज्जा आती थी। परन्तु शीघ्र ही वह इसकी आदी हो गयी। कभी-कभी वह एक ही शाम को अपनी जान-पहचान की सभी स्त्रियों के घर र्‌याबोव्स्की की खोज में हो आती और वे सभी उसके उद्देश्य को समझती थीं।

एक बार उसने र्‌याबोव्स्की से अपने पति के विषय में कहा:

"वह आदमी मुझे अपनी महान उदारता से दबा रहा है!"

यह वाक्य उसे इतना प्रिय लगा कि जब कभी उसकी भेंट उन कलाकारों में से किसी से होती, जो र्‌याबोव्स्की से उसके संबंध का रहस्य जानते थे, वह अपने पति का जिक्र करते हुए हाथ हिला-हिलाकर ज़ोर से कहती:

"वह आदमी मुझे अपनी महान उदारता से दबा रहा है!"

उनके जीवन का ढर्रा पिछले वर्ष की भांति ही चलता रहा। बुधवार की संध्या को दावतें होतीं। अभिनेता संवाद सुनाता, कलाकार चित्र बनाते, वादक वायलिनचेलो बजाता, गायक गीत गाता और ठीक साढ़े ग्यारह बजे खाने के कमरे का द्वार खुल जाता और दीमोव मुसकराते हुए कहता:

"महाशयो, खाने के लिए चलिये।"

ओल्गा इवानोव्ना सदैव की भांति ही बड़े लोगों को खोजती रहती, उनका पता लगाती और तब भी उसे सन्तोष नहीं होता और वह दूसरों की खोज में लग जाती। सदैव की भांति ही, वह रोज़ रात को देर से घर लौटती, पर जब वह आती तो उसे दीमोव कभी भी सोया हुआ न मिलता जैसा कि पिछले साल हुआ करता था। वह अपने कक्ष में बैठा काम कर रहा होता। वह तीन बजे सोता और आठ बजे उठ जाता था।

एक दिन संध्या समय जब वह नाट्यशाला जाने से पहले शीशे में अन्तिम बार अपने को देख रही थी, दीमोव लम्बा कोट पहने और सफ़ेद टाई लगाये सोने के कमरे में आ गया। वह बड़े दीन भाव से मुसकराया और पहले की भांति ख़ुशी से पत्नी की आंखों में आंखें डाल दीं। उसका चेहरा चमक रहा था।

"मैंने अभी-अभी अपना थीसिस प्रस्तुत किया है," उसने बैठकर घुटनों पर हाथ फेरते हुए कहा।

"सफलता मिली?" ओल्गा इवानोव्ना ने पूछा।

"हां, मिली तो!" वह हंसा और अपनी गर्दन ऊंची उठा ली, ताकि वह अपनी पत्नी का मुंह शीशे में देख सके क्योंकि वह अभी भी उसकी ओर पीठ किये खड़ी हुई अपने बालों को ठीक कर रही थी। "हां, मिली तो!" उसने फिर कहा, "इसकी भी बड़ी संभावना है कि मुझे जनरल पैथोलाजी का लैक्चरर बना दिया जायेगा। तुम जानती हो, रंग-ढंग तो ऐसा ही है।"

उसके प्रसन्न मुख और प्रफुल्लित भाव से स्पष्ट था कि यदि ओल्गा इवानोव्ना उसके आनन्द और विजयोल्लास में सम्मिलित हो जाती तो वह उसका सब कुछ क्षमा कर देता। भूत और भविष्य दोनों ही और सब कुछ भुला देता। परन्तु वह न तो यही समझी कि लैक्चरर कौन होता है और न वह यही जानती थी कि जनरल पैथोलाजी किस चिड़िया का नाम है। साथ ही उसे खटका लगा था कि कहीं नाट्यशाला पहुंचने में देर न हो जाये। इसलिए उसने कुछ भी नहीं कहा।

वह कुछ मिनट तक वहां बैठा रहा और फिर इस प्रकार मुस्कराते हुए मानो क्षमा मांग रहा हो, उठकर चल दिया।

७

वह बड़ी ही बेचैनी का दिन था।

दीमोव के सिर में भयंकर पीड़ा थी। उसने प्रातः न कुछ भोजन किया और न अस्पताल गया, बल्कि सारे दिन अपने कक्ष में कोच पर पड़ा रहा। ओल्गा इवानोव्ना सदैव की भांति ही, बारह बजे के बाद ही

र्याबोव्स्की के पास चली गयी। उसे अपना बनाया हुआ स्थिर वस्तु-चित्र का स्कैच दिखाना था और यह पूछना था कि वह उससे मिलने क्यों नहीं आया। वह जानती थी कि उसका स्कैच बहुत घटिया है और उसने उसे केवल इसीलिए बनाया है कि जाकर कलाकार से भेंट करने का बहाना मिल जाये।

वह घंटी बजाये बिना भीतर चली गयी और जिस समय कि वह ड्योढ़ी में अपने ऊपर वाले रबड़ के जूते उतार रही थी, तो उसे ऐसा लगा कि स्टूडियो में पांव की दबी-दबी आहट सुनायी दे रही है जिसके साथ किसी औरत के कपड़ों की सरसराहट भी सुनायी पड़ रही है। जब उसने जल्दी से भीतर ताका तो उसे एक तेज़ छिपते भूरे वस्त्र की झलक दिखायी पड़ी जो एक क्षण के लिए चमक कर एक बड़े चित्र के पीछे लुप्त हो गया, जिसपर फ़र्श तक एक काला कपड़ा पड़ा हुआ था। इसमें कोई सन्देह नहीं था कि कोई औरत उसके पीछे छिपी हुई है। कितनी बार स्वयं ओल्गा इवानोव्ना इसके पीछे छिपी थी! स्पष्ट था कि र्याबोव्स्की बड़े पसोपेश में पड़ गया; अपने दोनों हाथ उसकी ओर फैला दिये मानो उसके आने पर उसे बड़ा आश्चर्य हो रहा हो, उसने बनावटी मुस्कराहट से कहा:

"आ... आ... हा! ख़ुशी हुई तुमसे मिलकर... कहो क्या ख़बर है?"

ओल्गा इवानोव्ना की आंखों में आंसू डबडबा आये। उसे झेंप और कटुता का अनुभव हुआ और चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाये, वह अपनी बात उस दूसरी स्त्री के सामने नहीं कह सकती थी, जो उसकी प्रतिद्वन्द्वी थी, वह धोखेबाज़ जो इस समय चित्र के पीछे खड़ी थी और शायद उस पर हंस रही थी।

"मैं बस तुमको अपना स्कैच दिखलाना चाहती थी," उसने ऊंचे सहमे स्वर में कहा और उसके ओंठ कांपने लगे। "यह स्थिर वस्तु-चित्र है।"

"आ... आ... हा, स्कैच..."

कलाकार ने स्कैच अपने हाथों में ले लिया, और उस पर आंखें गड़ाये मानो अन्यमनस्कता से दूसरे कमरे में चला गया। ओल्गा इवानोव्ना उसके पीछे-पीछे गर्दन झुकाये चली गयी।

"स्कैच, जोड़ नहीं अन्यत्र," वह यंत्रवत् तुक मिलाते हुए बड़बड़ाने लगा, "अन्यत्र, चित्र-विचित्र, यत्रतत्र..."

स्टूडियो से जल्दी-जल्दी पग उठाने की चाप और साये की सरसराहट सुनायी पड़ी। इसका अर्थ यह था कि वह जा चुकी है। ओल्गा इवानोव्ना के मन में एकदम यह इच्छा हुई कि ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाये, कलाकार के सिर पर कोई भारी चीज़ दे मारे और भाग जाये, परन्तु उसे आंसुओं ने अंधा और अपमान ने दलित बना दिया था, और उसे ऐसा लग रहा था मानो अब वह कलाकार और ओल्गा इवानोव्ना नहीं रही बल्कि कोई तुच्छ जीव बनकर रह गयी है।

"मैं थक गया..." कलाकार ने स्कैच को देखते हुए और अपने सिर को झटका देकर अपनी थकावट का बोझ उतार फेंकने का प्रयत्न करते हुए मुरझाये स्वर में कहा, "यह अच्छा तो है, परन्तु स्कैच मात्र यह आज भी है, पिछले साल भी था, एक महीने बाद भी स्कैच ही होगा... क्या तुम्हारा मन इनसे ऊबता नहीं? तुम्हारे स्थान पर मैं होता तो चित्र-कला छोड़कर संगीत या ऐसे ही किसी कार्य को गंभीरता से पकड़ता। तुम तो कलाकार नहीं हो, तुम संगीतकार हो। परन्तु सच मानो मैं बहुत थक गया हूं! मैं कुछ चाय मंगवाता हूं, मंगवाऊं?"

वह कमरे से बाहर चला गया और ओल्गा इवानोव्ना ने उसको अपने नौकर से बातें करते सुना। विदाई के झगड़े से बचने और विशेषकर अपने को रो पड़ने से बचाने के लिए जब तक र्याबोव्स्की वापस न आये, वह ड्योढ़ी में भाग आयी, अपने रबड़ के जूते पहने और बाहर निकल पड़ी। गली में बाहर पहुंचते ही उसने मुक्त सांस ली और उसके मन को यह अनुभव हुआ कि उसने र्याबोव्स्की को, कला को और उस असह्य अपमान की भावना को जो उसे स्टूडियो में सहना पड़ा था, एक झटके में सदैव के लिए झाड़ कर फेंक दिया है। यह अध्याय समाप्त!

वह अपनी दर्ज़िन के यहां गयी, तब बरनई के पास जो अभी-अभी लौटा था, फिर बरनई के यहां से स्वरलिपियों की एक दुकान पर। सारे समय वह सोचती रही कि कैसे र्याबोव्स्की को एक निष्ठुर, कठोर, मर्यादापूर्ण पत्र लिखेगी और फिर वह वसन्त या गर्मी में अपने बीते काल को सदैव के लिए उतार फेंकने और नया जीवन आरम्भ करने के लिए दीमोव के साथ क्रीमिया चली जायेगी।

वह घर बहुत देर से पहुंची, परन्तु कपड़े बदलने के लिए अपने कमरे में जाने के बदले वह सीधे दीवानखाने में पत्र लिखने के लिए चली

गयी। र्याबोव्स्की ने उससे कहा था कि तुम कलाकार नहीं हो, और अब बदले में वह उसे बतायेगी कि वह हर साल एक ही चित्र लगातार बनाता रहा और एक ही बात लगातार हर रोज़ कहता रहा है, वह अब चुक गया और जो कुछ विकास उसका हो चुका है, अब उस से अधिक कभी प्राप्त नहीं कर सकता। वह यह भी जोड़ देना चाहती थी कि उसके अच्छे प्रभाव का ऋण उस र्याबोव्स्की पर लदा हुआ है और अब जो उसका व्यवहार बिगड़ गया है, उसका कारण यह है कि उसके प्रभाव को, हर प्रकार के घृणित जीवों ने, जिनमें से एक आज चित्र के पीछे छिपा था, चौपट कर दिया है।

"मम्मी!" दीमोव ने अपने कक्ष से दरवाज़ा खोले बिना ही आवाज़ लगायी: "मम्मी!"

"कहो, क्या चाहिए?"

"मेरे पास मत आना, मम्मी, बस दरवाज़े पर आ जाओ। बात यह है... मुझे डिप्थीरिया, एक दो दिन पहले अस्पताल में लग गयी है और अब... मेरा जी बहुत ख़राब है। ज़रा कोरोस्तेल्योव को बुलवाओ।"

ओलगा इवानोव्ना अपने पति को सदैव उसे दीमोव कहकर कुल नाम से पुकारती थी, जैसा कि वह अपने सभी पुरुष मित्रों के साथ करती थी। उसका नाम ओसिप था, यह नाम उसे पसन्द नहीं था क्योंकि उससे प्रसिद्ध रूसी लेखक गोगोल वाले ओसिप की याद आ जाती थी, इसके अतिरिक्त ओसिप और आर्खीप के नामों में श्लेषालंकार भी होता था। परन्तु इस समय वह चिल्ला उठी:

"अरे, ओसिप, नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।"

"उसको बुलवा लो। मेरा जी बिगड़ रहा है..." दीमोव ने कमरे के भीतर से कहा और ओलगा इवानोव्ना को सुनायी पड़ा कि वह चलकर कोच के पास पहुंचा और लेट गया। "उसको बुलवा दो!" ऐसा लग रहा था मानो उसका स्वर खोखला हो गया।

"क्या सचमुच ऐसा हो सकता है?" ओलगा इवानोव्ना ने भयभीत होकर सोचा। "अरे यह तो भयंकर है!"

न जाने क्यों वह एक मोमबत्ती लेकर अपने कमरे में चली गयी और अभी वह इसी सोच में थी कि क्या करे कि उसे अपनी प्रतिछाया शीशे में दिखायी पड़ गयी। अपना पीला भयभीत मुख, ऊंची फूली-फूली आस्तीनों

वाला जाकेट देख जिसमें आगे पीली झालर लगी हुई थी और साये पर आड़ी आड़ी धारियां बनी हुई थीं, उसने अपने आपको भयंकर डरावने तथा विद्रोही प्राणी के रूप में पाया। उसके मन के भीतर दीमोव के लिए, अपने प्रति उसके अगाध प्रेम, उसके तरुण जीवन, यहां तक कि उसकी सूने पलंग के लिए जिसपर वह एक लम्बे समय से नहीं सोया था, करुणा का एक महासागर उमड़ पड़ा और उनकी नम्र चिरस्थायी विनीत मुस्कान की उसको याद आ गयी। वह फूट-फूट कर रोने लगी और उसने कोरोस्तेल्योव को एक बड़ा कारुणिक पत्र लिखा। रात के दो बजे थे।

८

ओल्गा इवानोव्ना का सिर नींद न आने से भारी था, उसके बाल उलझे हुए थे और उसके मुख से अपराधी की भावना-सी झलक रही थी। असुन्दर सी लगती हुई वह जब प्रातः सात बजे अपने सोने के कमरे से बाहर निकली तो एक काली दाढ़ी वाले सज्जन, जो देखने में डाक्टर लगते थे, ड्योढ़ी में उसके पास से गुज़रे। दवाओं की गंध फैली हुई थी। कोरोस्तेल्योव कक्ष के दरवाज़े पर खड़ा अपनी बाईं मूंछ को दाहिने हाथ से ऐंठ रहा था।

"क्षमा कीजिये, परन्तु मैं आपको उनके पास नहीं जाने दूंगा," उसने उदास स्वर में ओल्गा इवानोव्ना से कहा, "कहीं बीमारी आपको भी न लग जाये। फिर, उसके पास आपका जाना व्यर्थ ही है, उसे तो अब सन्निपात हो गया है।"

"क्या उसे सचमुच डिप्थीरिया है?" ओल्गा इवानोव्ना ने धीरे से पूछा।

"जो कोई भी अपने आप को अकारण जोखिम में डालता है, मेरा बस चले तो उसे जेल भिजवा दूं," कोरोस्तेल्योव उसके प्रश्न का उत्तर दिये बिना ही बड़बड़ाया, "क्या आपको पता है, उसे छूत कैसे लगी? उसने डिप्थीरिया के रोगी, एक छोटे लड़के के गले की पीप चूस ली थी। और यह सब किस कारण? निरी मूर्खता... पागलपन..."

"क्या वह बहुत खतरनाक है?" ओल्गा इवानोव्ना ने पूछा।

"हां, कहते तो यही हैं कि बहुत ख़राब केस है। अब किसी प्रकार श्रेक को बुलवाना है।"

लाल बालों, लम्बी नाक और यहूदियों की बोली वाला एक छोटा-सा आदमी आया और उसके पीछे लम्बा, झुकी कमर और बिखरे बालों वाला व्यक्ति, जो बड़ा पादरी-सा लग रहा था और फिर उससे कम आयु का एक तगड़ा लाल मुंह का व्यक्ति जो चश्मा लगाये था। वे सभी डाक्टर थे जो अपने साथी को बारी-बारी देखते रहने और उसकी तीमारदारी के लिए आये थे। कोरोस्तेल्योव अपनी बारी ख़त्म हो जाने पर भी अपने घर नहीं गया और कमरों में पागलों की भांति फिरता रहा। नौकरानी डाक्टरों के लिए चाय लायी और बारबार दौड़ कर दवा की दुकान जाती थी, इसलिए कमरों को साफ़ करनेवाला कोई नहीं था। चारों ओर सन्नाटा था और उदासी छायी थी।

ओल्गा इवानोव्ना अपने सोने के कमरे में बैठी अपने मन में सोच रही थी कि भगवान् उसे अपने पति को धोखा देने के लिए दण्ड दे रहा है। वह मौन, शान्त, गूढ़ व्यक्ति, जिसके व्यक्तित्व को मधुर स्वभाव ने मिटा दिया था, जो हर बात मानने को तैयार रहता, दयालुता की अधिकता ने जिसे कमज़ोर कर दिया था, इस समय कोच पर पड़ा मौन ही पीड़ा को सहन कर रहा था। यदि वह शिकायत करता, या सन्निपात में ही कुछ बड़बड़ाता, तो उसकी देख-भाल करनेवाले डाक्टरों को पता चल जाता कि विपत्ति केवल डिप्थीरिया की लाई हुई नहीं है। वे अगर कोरोस्तेल्योव से पूछते, वह तो सब कुछ जानता था और यह अकारण ही नहीं था कि वह अपने मित्र की पत्नी को ऐसी निगाह से देखता था जो यह कहती प्रतीत हो रही थी कि असली दुष्टात्मा वही थी और डिप्थीरिया तो केवल उसका सहयोगी मात्र था। वोल्गा की चान्दनी रात, प्रेम के आश्वासन, किसान की झोंपड़ी का काव्यपूर्ण जीवन सब कुछ वह भूल गयी और उसे केवल एक ही बात याद रही कि वह किसी गन्दी चिपचिपी वस्तु में पड़ी है और कभी भी धोकर इस गन्दगी को साफ़ नहीं कर सकती और यह कुछ कोरी चंचलता और घटिया मौज उड़ाने के लिए...

"ओह, मैं कितनी झूठी रही हूं!" उसने र्याबोव्स्की और अपने बीच के अशान्त प्रेम को याद करते हुए अपने मन में कहा, "भस्म हो जाये यह सब कुछ!"

चार बजे वह कोरोस्तेल्योव के साथ खाने पर बैठी। कोरोस्तेल्योव ने कुछ नहीं खाया, बस थोड़ी लाल शराब पीता और मुंह बनाता रहा। उसने भी कुछ नहीं खाया। वह ईश्वर से मौन प्रार्थना करती और मनौती मनाती रही कि दीमोव अच्छा हो जाये तो मैं उससे फिर प्रेम करूंगी और पतिव्रता स्त्री बन कर रहूंगी। फिर अपने सारे दुख को क्षण भर के लिए भूलकर, वह कोरोस्तेल्योव की ओर देखती और उसे आश्चर्य होता कि इस प्रकार का महत्वहीन, चुचुके हुए मुंह और अशिष्ट व्यवहार वाला, गुमनाम व्यक्ति होना तो सचमुच बड़ा ही दुखदायी होगा। फिर उसे ऐसा लगा मानो अभी अभी ईश्वर का प्रकोप उस पर आ पड़ेगा क्योंकि छूत लगने के डर से वह अपने पति के कक्ष में एक बार भी नहीं गई थी। उसपर संताप की भावना छायी हुई थी और उसे इस विश्वास ने पीड़ित कर रखा था कि अब उसका जीवन ऐसा नष्ट हो गया है कि उसे कभी सुधारा नहीं जा सकता...

भोजन समाप्त होने पर शीघ्र ही अंधेरा हो गया। जब ओल्गा इवानोव्ना दीवानख़ाने में गयी तो उसे कोरोस्तेल्योव सोफ़े पर सोता मिला। उसका सिर रुपहले धागे से कढ़े रेशमी गद्दे पर पड़ा था। "खर्र-खर्र..." वह खर्राटे ले रहा था, "खर्र-खर्र।"

डाक्टर जो आते और चले जाते थे, वे इस सारी अव्यवस्था पर कोई ध्यान नहीं देते थे। दीवानखाने में खर्राटे लेता हुआ कोई मनुष्य, दीवालों पर टंगे हुए स्कैच, बेढंगा फ़रनीचर, घर की मालकिन का उलझे बाल लिए घूमना और उसके कपड़े की दुर्दशा, अब कोई बात भी किसी का ध्यान आकर्षित नहीं करती थी। एक डाक्टर किसी बात पर हंस पड़ा, परन्तु उसकी हंसी अत्यन्त अजीब लगी और सभी बेचैन-से हो गये।

ओल्गा इवानोव्ना जब दूसरी बार दीवानख़ाने में गयी तो कोरोस्तेल्योव आंखें खोले सोफ़े पर बैठा सिगरेट पी रहा था।

"डिप्थीरिया नाक के गढ़ों में फैल गया है," उसने दबे स्वर में कहा। "अब हृदय भी थकान के लक्षण प्रकट करने लगा है। हालत बुरी है।"

"फिर श्रेक को क्यों नहीं बुलवाते?" ओल्गा इवानोव्ना ने पूछा।

"वह आया था। उसी ने तो देखा कि डिप्थीरिया नाक तक पहुंच गया है। अब श्रेक भी क्या है? श्रेक ब्रेक से कुछ नहीं होता। वह श्रेक है और मैं कोरोस्तेल्योव हूं और बस।"

समय अत्यन्त कष्टदायक मन्द गति से बीतता रहा। ओल्गा इवानोव्ना पूरे कपड़े पहने अपने बिस्तर पर, जो सवेरे से उलझा पड़ा था, ऊंघ रही थी। उसे ऐसा लगता था कि पूरा घर फ़र्श से लेकर छत तक लोहे के एक भारी ढेर से भरा हुआ है और लगता था कि बस यह ढेर हटा दिया जाये तो सभी खिल उठेंगे। चौंककर वह उठी तो उसने अनुभव किया कि यह लोहे का ढेर नहीं बल्कि दीमोव की बीमारी है।

"चित्र-मित्र," उसने अपने मन में कहा और फिर ऊंघते हुए: "चित्र... मित्र... विचित्र... और यह श्रेक कौन है? श्रेक... व्रेक... क्रेक। अरे मेरे सारे मित्र कहां गये? क्या उन्हें पता नहीं कि हम विपत्ति में फंसे हैं? हे भगवान, हमें बचाओ, दया कर...श्रेक... व्रेक..."

फिर वही लोहे का ढेर... समय घिसटता जा रहा था और उसका कोई अन्त नहीं था, यद्यपि नीचे की मंज़िल में घड़ी बराबर घण्टा बजाती जा रही थी। रह-रहकर घण्टी बजती थी, डाक्टर लोग दीमोव के पास आते थे... नौकरानी थाली में एक ख़ाली गिलास लिये कमरे में आयी।

"आपका बिस्तर ठीक कर दूं, मालकिन?" उसने पूछा।

कोई उत्तर न मिलने पर वह फिर बाहर चली गयी। नीचे घड़ी ने घण्टा बजाया। ओल्गा इवानोव्ना ने स्वप्न में देखा कि वोल्गा पर वर्षा हो रही है और फिर उसके कमरे में कोई अपरिचित-सा व्यक्ति आ गया। दूसरे ही क्षण में उसने कोरोस्तेल्योव को पहचान लिया और खाट पर से उठ खड़ी हुई।

"क्या समय होगा?" उसने पूछा।

"लगभग तीन।"

"वह कैसे हैं?"

"कैसे? मैं आपको बताने आया था कि वह मर रहा है..."

उसने सिसकी दबा ली और खाट पर उसके पास आस्तीन से आंसू पोंछते हुए बैठ गया। पहले तो वह समझ ही नहीं पायी; अचानक उसे काठ मार गया और धीरे-धीरे उसने सलीब का चिह्न अपने सीने पर बनाया।

"मर रहा है..." कोरोस्तेल्योव ने ऊंचे स्वर में दुहराया और फिर सिसकने लगा। "मर रहा है क्योंकि उसने अपने आप को बलिदान कर दिया... विज्ञान को कितनी बड़ी क्षति पहुंची!" उसने कटुता से कहा। "हम सब की तुलना में वह एक महान मनुष्य, एक अद्‌भुत मनुष्य था!

कैसी प्रतिभा थी उसमें! हम सबको कितनी आशायें थीं उससे!" कोरोस्तेल्योव अपने हाथ मलते हुए बोलता रहा। "हे भगवान! वह कितना बड़ा वैज्ञानिक होता! कितना महान वैज्ञानिक! ओसिप दीमोव, ओसिप दीमोव! तुमने क्या कर लिया? हे भगवान!"

निराशा में कोरोस्तेल्योव ने अपना मुंह दोनों हाथों से छिपा लिया।

"हाय, कितनी बड़ी नैतिक शक्ति थी उसकी!" वह कहता रहा और किसी पर उसका क्रोध बढ़ता गया: "दयालु, पवित्र, स्नेहमय, निर्मल आत्मा! उसने विज्ञान की सेवा की और विज्ञान ही के लिए प्राण दिये। बैल की तरह काम करता दिन-रात। किसी को भी उसपर रहम नहीं आया और वह, तरुण विद्वान, भावी प्रोफ़ेसर, प्राइवेट प्रैक्टिस और रात-रात बैठकर अनुवाद करने को विवश इन सब... चीथड़ों का दाम चुकाने के लिए!"

कोरोस्तेल्योव ने ओलगा इवानोव्ना की ओर घृणा की दृष्टि से देखा, चादर को दोनों हाथों से पकड़ा और क्रोध से उसे नोच डाला मानो अपराध उसी चादर का हो।

"उसने भी स्वयं अपने ऊपर रहम नहीं किया और न किसी और ने उसपर रहम किया। पर अब बात करने से क्या लाभ?"

"हां, वह एक अद्भुत मनुष्य था!" दीवानख़ाने से गहरे स्वर में सुनायी पड़ा।

ओलगा इवानोव्ना को उसके साथ अपना पूरा जीवन प्रारम्भ से अन्त तक विस्तार से याद आ गया। हर छोटी-बड़ी बात याद आ गयी और एकदम उसे लगा कि वह सचमुच एक अद्भुत मनुष्य था, उसकी जान-पहचान के सभी लोगों की तुलना में एक महान व्यक्ति था। उसे अपने स्वर्गीय पिता और उनके सभी मित्रों का उसके प्रति व्यवहार याद आया और उसे अनुभव हुआ कि सभी उसको भविष्य का एक महान व्यक्ति समझते थे। दीवालें, छत, लैम्प और फ़र्श की दरी सभी उसको ताना देते लग रहे थे, मानो कह रहे हों: "तू चूक गयी!" वह सोने के कमरे से रोती हुई दौड़ी और दीवानखाने में किसी अपरिचित व्यक्ति के पास से बढ़ी और लपककर अपने पति के कक्ष में पहुंच गयी। वह कोच पर निश्चल पड़ा था और कम्बल से उसकी कमर तक का शरीर ढका हुआ था। उसका मुख भयानक ढंग से खिंचा और पतला हो गया था और उस पर ऐसा

भूरा पीलापन छा गया था, जो किसी जीवित मनुष्य के ऊपर नहीं होता। केवल उसके माथे, उसकी काली भौंहों और उसकी परिचित मुस्कान से पता चलता था कि वह दीमोव है। ओल्गा इवानोव्ना ने उसकी छाती, माथे और हाथों को जल्दी-जल्दी छुआ। छाती अभी तक गरम थी परन्तु माथा और हाथ अप्रिय ढंग से ठण्डे हो चुके थे। और अधमुंदी आंखें घूर रही थीं, ओल्गा इवानोव्ना को नहीं बल्कि कम्बल को।

"दीमोव!" उसने ज़ोर से पुकारा, "दीमोव!"

वह उसे समझाना चाहती थी कि जो कुछ हुआ ग़लत हुआ और अभी सब कुछ नष्ट नहीं हुआ है, जीवन को अभी भी सुन्दर और आनन्दमय बनाया जा सकता है, वह एक असाधारण, अद्‌भुत, महान व्यक्ति है और वह जीवन भर उसकी पूजा करेगी, उसके आगे सिर झुकायेगी और सदैव उसका पवित्र भय मानेगी...

"दीमोव!" उसने उसका कंधा हिलाते हुए पुकारा। उसे विश्वास नहीं होता था कि वह अब फिर कभी नहीं उठेगा। "दीमोव, दीमोव!"

उधर दीवानख़ाने में कोरोस्तेल्योव नौकरानी से कह रहा था:

"अब पूछने को रह ही क्या गया? गिरजाघर जाओ और वहीं पूछ लेना कि भिखारिनें कहां रहती हैं। वे शव को नहला देंगी और सब कुछ ठीक कर देंगी। वही सारा ज़रूरी काम कर देंगी।"

१८९२

इश्रोनिच

१

'स' नगर में जब नये आये हुए लोग शिकायत करते कि वहां का जीवन बहुत नीरस और ऊबानेवाला है, तो वहां के पुराने रहनेवाले लोग उसके पक्ष में यही कहा करते कि 'स' बहुत ही दिलचस्प शहर है, यहां एक पुस्तकालय है, नाट्यगृह है, क्लब है जहां नृत्य हुआ करते हैं और यह कि कुछ परिवार ऐसे रहते हैं जो दिलचस्प, ख़ुशमिज़ाज और समझदार हैं जिनसे परिचय प्राप्त किया जा सकता है। वे तूरकिन परिवार को संस्कृति और प्रतिभा के उदाहरण के रूप में पेश करते।

तूरकिन परिवार बड़ी सड़क पर गवर्नर के भवन के पड़ोस में निजी मकान में रहता था। इस परिवार का बुज़ुर्ग, इवान पेत्रोविच, हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर, काले बालों और गलमुच्छों वाला पुरुष था। वह ख़ैराती नाटक करवाता और ख़ुद बूढ़े जनरलों की भूमिकाएं अदा करता और ऐसे खांसता कि लोग हंसी से लोट-पोट हो जाते। उसे अनगिनत क़िस्से, कहानियां, कहावतें और खेल आते थे। मज़ाक़ करना उसे बहुत पसन्द था और उसका मुंह देखकर यह कहना कठिन था कि वह मज़ाक़ कर रहा है अथवा गम्भीर है। उसकी पत्नी वेरा इओसीफ़ोव्ना दुबली-पतली, सुंदर थी, वह बिना कमानीदार चश्मा पहनती थी और उपन्यास व कहानियां लिखा करती थी जिन्हें अतिथियों को सुनाने को सदैव तैयार रहती थी। उनकी एक लड़की थी जिसे येकतेरीना इवानोव्ना कहकर पुकारते थे; वह नवयुवती थी और पियानो बजाती थी। संक्षेप में, इस परिवार के हर सदस्य को भगवान ने कुछ न कुछ प्रतिभा अवश्य दी था। तूरकिन परिवार अतिथि-सत्कार में बड़ा निपुण था। अपने प्रतिभा का प्रदर्शन वे लोग बड़ी सरलता और हंसमुख ढंग से करते थे। उनका विशाल पत्थर का बना मकान गर्मियों में भी हमेशा ठंडा रहता था; पीछे की खिड़कियां एक पुराने सायादार बगीचे में खुलती

थीं जहां वसंत में बुलबुलें चहका करती थीं। जब अतिथि आते तो रसोईघर से छुरों की खनखनाहट आती और प्याज़ भुनने की बू से सारा आंगन महक उठता, जैसा कि वह यह विश्वास दिला रही हो कि रात्रि का भोजन भरपूर व स्वादिष्ट होगा।

डाक्टर द्मीत्री इओनिच स्तात्सेंव से, जो हाल ही में ज़ेम्स्त्वो के चिकित्सक नियुक्त हुए थे, जैसे ही वह 'स' से लगभग नौ मील पर स्थित द्यालिज में रहने के लिये आये, एक सुसंस्कृत व्यक्ति के नाते तूरकिन परिवार से अवश्य जान-पहचान करने के लिये कहा गया। एक दिन जाड़ों में उसकी भेंट इवान पेत्रोविच से सड़क पर करा दी गयी। मौसम, नाटक और हैज़े के प्रकोप पर बात करने के बाद उसे निमंत्रण भी मिल गया। वसंत में एक धार्मिक त्योहार के दिन अपने रोगियों से निपटकर स्तात्सेंव मनोरंजन की खोज में और साथ ही कुछ आवश्यक ख़रीदारी करने के लिये नगर की ओर चल पड़ा। पैदल, धीरे धीरे आराम से चलता हुआ (उसने अभी अपनी घोड़ा-गाड़ी नहीं ली थी) व "जीवन घट से अश्रुपेय पीने के पहले.." गुनगुनाता हुआ वह नगर की ओर चला।

नगर में उसने भोजन किया व पार्क में चहलक़दमी की तथा इवान पेत्रोविच के निमंत्रण की याद आते ही उसने तूरकिन परिवार के यहां जाने का निश्चय किया ताकि वह देख सके कि वे किस प्रकार के लोग हैं।

"नमस्कार-दमस्कार!" ओसारे में ही इवान पेत्रोविच ने उसका स्वागत किया। "आप जैसे अतिथि को देखकर बहुत प्रसन्नता हुई। आइये, अन्दर आइये, मैं अपनी पत्नी से मिलाऊं। मैं इनसे कह रहा हूं, वेरोच्का," पत्नी से परिचय कराते हुए उसने कहना जारी ही रखा, "कि काम के बाद अस्पताल में रुकने का इन्हें कोई सांसारिक अधिकार नहीं है। यह इनका कर्तव्य है कि अपना बाक़ी समय समाज को दें। क्यों, मैं ठीक कह रहा हूं न?"

"यहां बैठिये," अपनी बग़ल की कुर्सी की ओर इशारा करते हुए वेरा इओसीफ़ोव्ना ने कहा। "आप मुझे रिझा सकते हैं, मेरे पति तो ओथेल्लो की तरह ईर्षालु हैं पर हम सावधान रहने की चेष्टा करेंगे।"

"मेरी प्यारी मुर्ग़ी," इवान पेत्रोविच ने अपनी पत्नी के माथे को चूमते हुए, प्यार भरी आवाज़ में कहा। "आपने आने के लिये बहुत अच्छा मौक़ा चुना है," अपने अतिथि की ओर मुड़ता हुआ वह बोला, "मेरी

11*

पत्नी ने अभी एक बहुत सुन्दरम् उपन्यास पूरा किया है और आज वह उसे हमें पढ़कर सुनायेंगी।"

"जां," वेरा इओसीफ़ोव्ना ने पति से कहा, "dites, que l'on nous donne du thé."*

स्तार्त्सेव का परिचय अठारह वर्षीया लड़की येकतेरीना इवानोव्ना से कराया गया, जो अपनी मां से बिल्कुल मिलती-जुलती थी तथा उतनी ही दुबली-पतली व आकर्षक थी। उसके भाव में अभी भी बचपना था और वह नाज़ुक थी। उसके अक्षत यौवन के उठते हुए उभार के स्वास्थ्य व सौन्दर्य से सच्चे वसंत का आभास होता था। फिर लोग चाय पीने बैठे। चाय के साथ शहद, मुरब्बा, मिष्ठान्न और इतने बढ़िया बिस्कुट भी थे जो मुंह में रखते ही घुल जाते थे। शाम होने के साथ ही अतिथि आने लगे और इवान पेत्रोविच आंखों में ख़ुशी भरे हर किसी से कहता था:

"नमश्कार-दमश्कार।"

फिर लोग बैठक में गम्भीरता के साथ बैठ गये। वेरा इओसीफ़ोव्ना ने अपना उपन्यास पढ़ा। वह इन शब्दों से आरम्भ होता था: "कड़ाके का जाड़ा था..." खिड़कियां खुली थीं व रसोई में से छुरियों की खनखनाहट की आवाज़ आ रही थी और उनके साथ प्याज़ भुनने की बू भी... मुलायम आराम-कुर्सियों पर बैठे सब लोग शांतिपूर्वक सुन रहे थे; धुंधली रोशनीवाली बैठक में रोशनी मानो आंखें मिचमिचा रही थी और गर्मियों की उस शाम को, जबकि सड़क पर से शोर व हंसने की आवाज़ें आ रही थीं तथा बाग़ से बकाइन की सुगन्ध के झकोरे आ रहे थे, यह कल्पना करना कठिन था कि "कड़ाके का जाड़ा था और डूबते हुए सूर्य की ठंडी किरणें बर्फ़ीले मैदान और एकाकी पथिक को रोशनी दे रही थीं"। वेरा इओसीफ़ोव्ना पढ़ रही थी कि किस प्रकार जवान व सुन्दर राजकुमारी ने अपने गांव में स्कूल, अस्पताल, पुस्तकालय आदि बनवाये और किस तरह वह इस घुमते-फिरते कलाकार के प्रेम में पड़ गयी, उन बातों का विवरण देते हुए जो ज़िन्दगी में तो कभी नहीं होती हैं, पर तब भी उसको सुनने में इतना शान्तिमय आनन्द आ रहा था कि सब आराम से मजा लेते रहे और किसी की उठने की इच्छा न हुई...

---

*नौकरों से चाय के लिये कहो।—सं०

"अनच्छा नहीं है..." इवान पेत्रोविच ने धीरे से कहा।

एक विचारमग्न अतिथि ने जिसके विचार कहीं दूर दूर थे, बहुत ही धीरे से कहा:

"हां... सचमुच..."

एक घंटा बीत गया, और एक और। पास में नगर के पार्क में आर्केस्ट्रा बज रहा था तथा कोई गायन मंडली गा रही थी। जब वेरा इओसीफ़ोव्ना ने अपनी कापी बन्द की, पांच–एक मिनट तक कोई कुछ नहीं बोला और सब 'लूचीनुश्का' गीत को सुनते रहे और गीत में वह अभिव्यक्त हुआ जो उपन्यास में नहीं था और जो जीवन की बात थी।

"क्या आप अपनी कृतियों को पत्रिकाओं में छपवाती हैं?" स्तार्त्सेव ने वेरा इओसीफ़ोव्ना से पूछा।

"नहीं," उसने उत्तर दिया, "मैं उन्हें क़तई नहीं छपवाती। मैं उन्हें लिखती हूं और एक आलमारी में छिपा देती हूं। मैं उन्हें क्यों छपवाऊं? हमारे पास गुज़र करने के लिये काफ़ी है," सफ़ाई देते हुए उसने आगे कहा।

और किसी कारणवश सब ने एक लम्बी सांस ली।

"और, बिल्लो, अब तुम कुछ बजाकर सुनाओ हमें," इवान पेत्रोविच ने अपनी बेटी से कहा।

पियानो का ढक्कन उठा दिया गया, स्वरलिपि सामने लगी तैयार ही थी। येकतेरीना इवानोव्ना पियानो पर बैठ गयी और उसके हाथ चलने लगे। उसकी उंगलियां पूरी शक्ति से परदों पर पड़ीं, फिर बार-बार पड़ती रहीं। उसके कंधे व छातियां कांपने लगीं और वह उसी आग्रह के साथ एक ही जगह पर प्रहार करती रही, जैसे वह पियानो के परदों को उसके अन्दर ठूंस देने पर तुली हुई हो। बैठक गूंज उठी, सब चीज़ें थर्राने लगीं – फ़र्श, छत, फ़र्नीचर... येकतेरीना इवानोव्ना ने एक मुश्किल धुन बजायी जिसकी सारी दिलचस्पी उसकी जटिलता में ही थी। पद लम्बा और एकरूप था और सुनते सुनते स्तार्त्सेव ने अपने आप एक ऊंचे पहाड़ की चोटी से चट्टानों के लुढ़कने की कल्पना की। वे लुढ़क रही थीं, लुढ़कती रहीं, एक के बाद एक, और उसकी इच्छा हुई कि वे रुक जायें, यद्यपि येकतेरीना इवानोव्ना जो अपने इस प्रयत्न से गुलाबी हो रही थी और जिसके बालों की एक लट उसके माथे पर लटक गयी थी, उसको बहुत आकर्षक लग रही

थी। द्यालिज में बीमारों और किसानों के बीच जाड़े बिताने के बाद एक बैठक में बैठना, इस यौवन, सुरुचि व मासूम प्राणी को देखना और इन शोर भरी, थका देनेवाली पर साथ ही सांस्कृतिक आवाज़ों को सुनना उसे बड़ा भला और नया लग रहा था...

"वाह, बिल्लो, तुमने आज कमाल कर दिया, ख़ुद अपने आपको मात कर दिया," आंखों में आंसू भरे इवान पेत्रोविच ने कहा, जब उसकी पुत्री अपना संगीत पूरा करके उठी।

सब ने उसे घेर लिया, बधाइयां दीं, तारीफ़ की तथा क़सम खायी कि ऐसा संगीत उन्होंने सालों से नहीं सुना था, और वह चेहरे पर हल्की मुस्कान लिये, चुपचाप खड़ी सुनती रही; उसके पूरे शरीर से विजयोल्लास झलक रहा था।

"शाबाश! शाबाश!"

तब स्तार्त्सेव ने भी उत्साह के बहाव में कहा: "बहुत सुन्दर! आपने कहां पढ़ा है?" उसने येकतेरीना इवानोव्ना से पूछा, "संगीतविद्यालय में?"

"नहीं, मैं तो संगीतविद्यालय में प्रवेश के लिये तैयारी भर कर रही हूं, लेकिन इसी बीच मैं मैडम ज़व्लोव्स्काया से सीख रही हूं।"

"क्या आपने स्थानीय हाई स्कूल से सनद ली है?"

"अरे नहीं," वेरा इओसीफ़ोव्ना ने उसकी तरफ़ से उत्तर दिया। "हमने उसके लिये घर पर शिक्षक लगा लिये थे, आप इस बात से सहमत होंगे कि हाई स्कूल या विद्यालय में उसपर कुछ बुरा असर भी पड़ सकता था। बढ़ती हुई लड़की पर उसकी मां के अलावा किसी का असर नहीं होना चाहिये।"

"मगर मैं तो संगीतविद्यालय जानेवाली हूं।" येकतेरीना इवानोव्ना ने कहा।

"अरे, नहीं, हमारी बिल्लो अपनी मां को बहुत प्यार करती है, हमारी बिल्लो अपनी अम्मां और पापा को दुख नहीं देगी।"

"मैं जाऊंगी, मैं जाऊंगी!" पैर पटकते हुए लाड़ में मचलने की नक़ल करते हुए येकतेरीना इवानोव्ना ने कहा।

ब्यालू के समय इवान पेत्रोविच की अपने विशेष गुण दिखाने की बारी आयी। आंखों में ही मुस्कराते हुए उसने क़िस्से सुनाये, मज़ाक़ किये, हंसी

की पहेलियां बुझायीं जिनको उसने स्वयं ही हल किया, बराबर अपनी अनोखी भाषा में बोलता रहा जो उसने मसखरेपन के लम्बे अभ्यास में अपना ली थी और जो अब उसकी आदत बन गयी थी, जैसे "बहुत सुन्दरम्, अनच्छा नहीं, कृतज्ञताम् से धन्यवादम्"।

मगर मनोरंजन यहीं खत्म नहीं हुआ। जब खुश और सन्तुष्ट मेहमान अपने अपने कोट और छड़ियां लेने ड्योढ़ी में आये तो चौदह वर्षीय लड़का नौकर पावेल या जैसा कि उसे पुकारा जाता था "पावा" जिसके बाल कटे हुए थे और चेहरा गदबदाया हुआ था, उनके इर्द-गिर्द मंडराने लगा।

"दिखाओ, पावा! दिखाओ!" इवान पेत्रोविच ने कहा।

पावा ने मुद्रा बनायी, एक हाथ ऊपर उठाया और दुख भरे स्वर में कहा:

"बदनसीब कहीं की! बरबाद हो जा!"

और सब लोग हंस पड़े।

"मजे की बात!" डाक्टर ने घर से बाहर आते हुए सोचा।

एक रेस्तरां में आकर उसने बीयर पी और द्यालिज वापस लौटा। रास्ते भर वह गुनगुनाता रहा:

तुम्हारी कोमल आवाज के
घुल जानेवाले स्वर...

नौ मील चलने के बाद भी जब वह सोने के लिये बिस्तर पर पहुंचा तो उसे जरा भी थकान नहीं लग रही थी और वह अपने आपसे कह रहा था कि अभी तो मैं सहर्ष बीस मील और चल लूंगा।

"अनच्छा नहीं..," उसने हंसते हुए याद किया और सो गया।

२

स्तार्त्सेव बराबर तूरकिन परिवार से भेंट के लिये जाने को सोचता रहा किन्तु उसे अस्पताल में बहुत काम रहता और वह कभी एक दो घण्टे खाली नहीं निकाल पाता। एक साल इसी तरह काम और एकान्त में बीत

गया। फिर एक दिन एक नीले लिफ़ाफ़े में उसके पास शहर से पत्र आया...

वेरा इस्रोसीफ़ोव्ना को बहुत दिनों से सिरदर्द की शिकायत थी, किन्तु हाल में बिल्लो की रोज़ रोज़ संगीतविद्यालय में जाने की धमकियों से दर्द का दौरा जल्दी जल्दी पड़ने लगा था। नगर के सब डाक्टर इलाज के लिये तूरकिन परिवार गये और अंत में स्तार्त्सेव का नम्बर भी आया। वेरा इस्रोसीफ़ोव्ना ने उसे एक मार्मिक पत्र लिखा जिसमें आने तथा उसका कष्ट दूर करने को कहा गया था। स्तार्त्सेव उसे देखने गया और उसके बाद आये दिन प्रायः ही तूरकिन परिवार के यहां जाने लगा... सचमुच ही उसने वेरा इस्रोसीफ़ोव्ना की पीड़ा कुछ कम करने में सहायता की और सब मेहमानों को बता दिया गया कि वह बहुत बढ़िया, असाधारण, आश्चर्यजनक डाक्टर है। किन्तु अब वह उसके सिरदर्द के कारण तूरकिन निवास नहीं जाता था...

छुट्टी का दिन था। येकतेरीना इवानोव्ना पियानो का लम्बा व मुश्किल अभ्यास ख़त्म कर चुकी थी। वे सब खाने के कमरे की मेज़ पर बैठे देर तक चाय पी रहे थे। इवान पेत्रोविच कोई मज़ाक़िया क़िस्सा सुना रहा था। दरवाज़े की घंटी बजी और उसे उठकर किसी मेहमान से मिलने के लिये बाहर जाना पड़ा। स्तार्त्सेव ने हलचल का फ़ायदा उठाते हुए येकतेरीना इवानोव्ना के कान में भावावेश से फुसफुसाया :

"भगवान के लिये मुझे और न तड़पाओ, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं! चलो हम बाग़ में चलें!"

उसने अपने कंधे उचकाये जैसे वह आश्चर्य में हो और समझी भी न हो कि वह क्या चाहता है, किन्तु वह उठी और बाहर चल दी।

"तुम तीन-चार घंटे अभ्यास करती हो," उसने उसके पीछे चलते हुए कहा, "तब तुम अपनी मां के पास बैठ जाती हो और तुमसे बात करने का कोई मौक़ा ही नहीं मिल पाता। मैं प्रार्थना करता हूं मुझे केवल एक चौथाई घंटे का समय दो।"

शरद आ रहा था और पुराना बगीचा शांत व उदास था, रास्ते पर गहरे रंग की पत्तियां छितरी हुई थीं। दिन छोटे हो रहे थे...

"मैंने तुम्हें पूरे एक हफ़्ते से नहीं देखा है," स्तार्त्सेव बोलता गया, "काश, तुम मेरे इस कष्ट को समझ पातीं! हम कहीं बैठ जायें। मुझे तुमसे कुछ कहना है।"

बाग़ में उनका एक प्रिय स्थान था – एक पुराने, घने, छायादार मेपिल वृक्ष के नीचे एक बेंच। और अब वे उसी बेंच पर बैठ गये।

"तुम क्या चाहते हो?" येकतेरीना इवानोव्ना ने रूखी, कामकाजी आवाज़ में पूछा।

"मैंने तुम्हें पूरे एक हफ़्ते से नहीं देखा है, तुम्हारी आवाज़ सुने युग बीत गये। मैं विकलता से इंतज़ार करता हूं, मैं तुम्हारी आवाज़ सुनने को प्यासा हूं। बोलो!"

उसकी ताजगी, उसकी आंखों के भोलेपन, मासूम गालों से वह अभिभूत हो गया। यहां तक कि उसकी पोशाक की चुस्ती में भी उसे कुछ अनोखा माधुर्य दिखाई दिया, उसकी सादगी और भोली छवि उसे बड़ी हृदयग्राही लगी। और इस भोलेपन के बावजूद वह उसे अपनी उम्र से अधिक बुद्धिमती और होशियार लगती थी। वह उससे साहित्य, कला या किसी अन्य विषय पर बात करता, लोगों और ज़िन्दगी के बारे में शिकायत करता, हालांकि कभी कभी वह गंभीर बात के दौरान ही अचानक हंस पड़ती और घर भाग जाती। 'स' नगर की अन्य लड़कियों की तरह वह भी पढ़ती बहुत थी ('स' में लोग पढ़ते बहुत कम थे और स्थानीय पुस्तकालय के लोग कहा करते थे कि जवान यहूदियों और लड़कियों के लिये ही पुस्तकालय चल रहा है, नहीं तो यह बंद हो जाये) और इससे स्तार्त्सेव को बहुत ख़ुशी होती थी। हर बार जब वह उससे मिलता, वह बड़ी उत्सुकता से पूछता कि तुम क्या पढ़ती रहीं और जब वह बताती तो मोहित बैठा सुना करता।

अब उसने पूछा: "पिछली भेंट के बाद इस हफ़्ते तुम क्या पढ़ती रहीं? मुझे बताओ न!"

"मैं पीसेम्स्की की कृतियां पढ़ती रही।"

"उसकी कौनसी किताब?"

बिल्लो ने जवाब दिया: "'सहस्र आत्माएं' और पीसेम्स्की को नाम भी क्या मज़ेदार मिला है – अलेक्सेई फ़ेओफ़िलाकतिच!"

"अरे तुम चल कहां दीं?" उसे एकाएक उठकर घर की ओर जाते देख, स्तार्त्सेव घबड़ा कर चिल्लाया। "मुझे तुमसे बहुत ज़रूरी बातें करनी हैं, मुझे कुछ बताना है तुम्हें... मेरे साथ ठहरो, अच्छा, चाहे पांच मिनट के लिये ही सही! मैं तुमसे विनय करता हूं!"

वह ठहर गयी, मानो कुछ कहना चाहती हो, फिर बेढंगे तरीक़े से काग़ज़ का एक पुरज़ा उसके हाथ में थमाकर घर भाग गयी और वहां पहुंचकर फ़ौरन बैठकर पियानो बजाने लगी।

स्तार्त्सेव ने पुरज़ा पढ़ा: "आज रात ग्यारह बजे क़ब्रिस्तान में डिमैंटी की क़ब्र पर पहुंचना।"

जब उसका आश्चर्य ख़त्म हो चुका, वह सोचने लगा: "क्या बेवक़ूफ़ी है! क़ब्रिस्तान क्यों? किसलिये?"

बात बिल्कुल साफ़ थी – बिल्लो मज़ाक़ कर रही थी। जिसमें भी ज़रा-सी समझ होगी वह रात में, शहर से दूर मिलने की बात न करेगा जब सड़क पर या पार्क में ही मिला जा सकता था। और क्या उसे, ज़ेम्स्त्वो के डाक्टर को, एक बुद्धिमान, सम्भ्रान्त व्यक्ति को यह शोभा देता था कि वह किसी लड़की के लिये ऐसे सांसें भरे, पुरज़े ले, क़ब्रिस्तानों में घूमे, ऐसी मूर्खता करे जिसपर आजकल के लड़के भी हंसा करते हैं? इस सब का फल क्या निकलेगा? अगर उसके साथी जान गये, तो क्या कहेंगे? क्लब में कुरसियों के बीच से गुज़रते हुए स्तार्त्सेव ऐसे ही विचारों में मग्न था, पर तब भी, साढ़े दस बजने पर वह क़ब्रिस्तान के लिये रवाना हो गया।

अब उसके पास अपनी दो घोड़ों वाली गाड़ी थी; उसका कोचवान जिसका नाम पंतेलीमोन था मख़मल की वास्कट पहनता था। चांद आसमान में चमक रहा था। रात ख़ामोश और गर्म थी, पर यह गर्मी पतझड़ की तरह की गरमी थी। शहर से बाहर, बूचड़ख़ाने के पास कुत्ते भूंक रहे थे। स्तार्त्सेव ने अपनी गाड़ी शहर के बाहर ही एक गली में रोक दी और पैदल क़ब्रिस्तान चला। "हर एक में अपना अपना अनोखापन होता है। बिल्लो अनोखी लड़की है, और कौन जाने? शायद वह सचमुच ही आना चाहती हो, शायद वह यहां मौजूद हो।" इस तरह सोचते सोचते उसपर इस कमज़ोर, व्यर्थ की आशा का नशा-सा छा गया।

रास्ते का आख़िरी हिस्सा एक खेत में होकर गुज़रता था। दूर घनी काली पट्टी, जंगल या एक बड़े बाग़ की तरह क़ब्रिस्तान दिखाई देता था। पत्थर की बनी एक सफ़ेद दीवाल सामने नज़र आयी और फिर फाटक... फाटक पर यह वाक्य चांदनी में भी पढ़ा जा सकता था: "तुम्हारा वक़्त भी आयेगा।" स्तार्त्सेव ने छोटा फाटक ढकेल कर खोल लिया और अपने

को एक चौड़े रास्ते पर पाया जिसके दोनों ओर सफ़ेद सलीबों, स्मारकों व ऊंचे पोपलर वृक्षों की कतारें थीं और उनमें से हर एक का साया रास्ते पर पड़ रहा था। अलसाये पेड़ों की शाखें सफ़ेद पत्थरों पर छा रही थीं, हर चीज़ या तो सफ़ेद थी या काली। यहां खेत से ज्यादा रोशनी मालूम हो रही थी। पंजानुमा मेपिल के पत्ते रास्ते के पीले रेत व क़ब्रों के सफ़ेद पत्थरों पर साफ़-साफ़ नज़र आ रहे थे। पत्थरों पर लिखे वाक्य स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। एकाएक स्तार्त्सेव के मन में विचार आया कि शायद वह जीवन में पहली और आख़िरी बार यह सब देख रहा था—एक ऐसी दुनिया जो दूसरी सभी दुनियाओं से भिन्न थी, ऐसी दुनिया जहां चांदनी भी ऐसी मधुर और मुलायम थी मानो यह जगह उसका पालना हो, जहां जीवन नहीं था, बिल्कुल नहीं, लेकिन जहां हर स्याह पोपलर और हर समाधि में रहस्य की मौजूदगी लग रही थी—रहस्य, जो शान्त, सुन्दर और शाश्वत जीवन की आशा दिला रही थी। समाधियों के पत्थरों, मुरझाये हुए फूलों और पत्तों की पतझड़ वाली गंध—सबसे क्षमा, दुख और शान्ति फूटती सी लगती थी।

हर तरफ़ सन्नाटा था। सितारे मानो अतिशय विनम्रता में आसमान से नीचे झांक रहे थे और स्तार्त्सेव की पगध्वनि उस शान्ति में असंगत और तीखी लगती थी। लेकिन जब गिरजाघर का घड़ियाल बजने लगा और वह अपने को मरा और हमेशा के लिये दफ़नाया हुआ मानने की कल्पना में तल्लीन था तभी उसे लगा मानो कोई उसे ताक रहा हो और क्षण भर के लिये उसके दिमाग़ में यह बात कौंध गयी कि यह शान्ति और स्तब्धता नहीं, बल्कि अस्तित्वहीनता की गंभीर उदासी, दबी घुटी निराशा है...

डिमैटी का स्मारक छोटे-से गिरजाघर की शक्ल का बना था और उसकी छत पर एक फ़रिश्ते की मूर्ति बनी थी। पहले कभी इतालवी संगीत-नाटक मंडली 'स' नगर में आयी थी और मंडली की एक गायिका यहीं मर गयी थी। यह स्मारक उसी की क़ब्र पर बनाया गया था। नगर में किसी को भी अब उसकी याद नहीं थी, पर क़ब्र के द्वार पर लटकते दीपक चांदनी से ऐसे चमक रहा था, मानो जल रहा हो।

आस-पास कोई नहीं दिखाई दे रहा था और यहां आधी रात में आयेगा भी कौन? लेकिन स्तार्त्सेव इन्तिज़ार करता रहा और मानो चांदनी से उसकी कामना जाग उठी हो, वह बेताबी से इन्तिज़ार करता रहा और

कल्पना करता रहा आलिंगनों की, चुम्बनों की... क़ब्र के पास वह लगभग आध घण्टे तक बैठा रहा और फिर वहीं पास ही टहलने लगा, हाथ में टोप लिये, सोचते हुए कि इन क़ब्रों में लेटी कितनी स्त्रियां, युवतियां, सुन्दरी रही होंगी, आकर्षक रही होंगी, उन्होंने प्रेम किया होगा, रातों में वासना से प्रज्वलित हो उठी होंगी जब वे अपने प्रेमियों के प्रणय के समक्ष निढाल हो गयी होंगी। मां-प्रकृति भी मनुष्यों के साथ कैसा निष्ठुर परिहास करती है और इसे स्वीकार करने में भी कैसी लांछना है! यह सब सोचते हुए स्तार्त्सेव की तबीयत हुई कि वह चिल्लाकर कहे कि मुझे प्रेम चाहिये, मुझे हर हालत में प्रेम मिलना ही चाहिये! उसकी कल्पना में अब संगमर्मर के सफ़ेद शिलाखण्ड नहीं आ रहे थे, वरन्, शरीर, आकार जो लजा लजा कर पेड़ों की छाया में छिप रहे थे, उसे उन शरीरों की गरमाहट तक महसूस होने लगी और आख़िर में वासना उसके लिये असहनीय हो उठी...

और एकाएक, मानो परदा गिरा दिया गया हो, चांद एक बादल के पीछे छिप गया और हर ओर अंधेरा छा गया। स्तार्त्सेव को फाटक तक ढूंढ़ना मुश्किल हो गया, क्योंकि रात शरद की अंधेरी रातों की तरह हो गयी थी और वह डेढ़ घण्टे तक उस गली को ढूंढ़ने में भटकता रहा, जहां उसने अपनी गाड़ी छोड़ी थी।

"मैं इतना थक गया हूं कि मेरे लिये खड़ा होना भी दुर्लभ है," उसने पंतेलीमोन से कहा और गद्दी पर आराम से धसकते ही अपने आप से कहा: "मुझे इतना मोटा नहीं होना चाहिये!"

३

अगली शाम वह शादी का प्रस्ताव करने का पक्का इरादा कर तूरकिन परिवार के पास पहुंचा। पर मौक़ा ठीक नहीं था, क्योंकि येकतेरीना इवानोव्ना के कमरे में नाई उसके बाल संवार रहा था। वह क्लब में होनेवाले नाच में शामिल होने जा रही थी।

एक बार फिर खाने के कमरे में चाय पीने में ढेर सारा वक़्त बिताना पड़ा। यह देखकर कि मेहमान किसी विचार में खोया हुआ है और बातों में दिलचस्पी नहीं ले रहा है, इवान पेत्रोविच ने वास्कट की जेब से कुछ

काग़ज़ निकाले और एक जर्मन कारिन्दे का बहुत ही टूटी-फूटी और बेहद भोंडी और हास्यास्पद रूसी भाषा में लिखा पत्र ज़ोर से पढ़कर सुनाने लगा।

बेमन से उसे सुनते हुए स्तार्त्सेव ने सोचा: "लगता है कि ये लोग उसे काफ़ी बड़ा दहेज भी देंगे।"

बिना सोये रात बिता देने के कारण वह भौचक्का और हड़बड़ाया-सा हो रहा था, मानो उसे कोई मीठी नशीली चीज़ खिला दी गयी हो। एक तरफ़ उसके दिल में एक स्वप्निल, आनन्दमय, गरमाहट देनेवाली सुखद अनुभूति हो रही थी और दूसरी ओर उसके दिमाग़ में कोई ठंडी भारी चीज़ तर्क कर रही थी:

"सम्हल जाओ, समय रहते सम्हल जाओ! क्या वह तुम्हारे योग्य है? वह लाड़ से बिगड़ी हुई, ज़िद्दी लड़की है जो तीसरे पहर तक सोती है और तुम गिरजाघर के एक मामूली कर्मचारी के बेटे हो, ज़ेम्स्त्वो के डाक्टर हो..."

उसने सोचा: "अच्छा, तो फिर?"

वह चीज़ दिमाग़ में तर्क कर रही थी: "इसके अलावा अगर तुमने उससे शादी की तो उसके संबंधी तुमसे ज़ेम्स्त्वो की डाक्टरी छुड़वा कर नगर में आकर बसने को बाध्य करेंगे।"

उसने सोचा: "तो शहर में रहने में क्या हर्ज है? ये लोग उसे दहेज देंगे ही और शहर में घर बसा लिया जायेगा..."

आख़िरकार येकतेरीना इवानोव्ना ऐसी तरोताज़ा और नाच की पोशाक में भली लगती हुई निकली कि स्तार्त्सेव उसकी ओर सिर्फ़ ताकता रहा, जी भर ताकता रहा और ताकते ताकते ऐसा आनन्दविभोर हो उठा कि एक शब्द भी बोल न सका; वह सिर्फ़ ताकता रहा और हंसता रहा।

वह बाहर जाने के लिए तैयार थी और स्तार्त्सेव को वहां ठहरने का अब चूंकि कोई काम न था, वह भी उठ खड़ा हुआ और बोला कि अब मुझे भी घर जाना है, वक़्त हो गया, मेरे मरीज़ इन्तजार कर रहे होंगे।

इवान पेत्रोविच बोला: "ख़ैर, तो जाओ और तुम बिल्लो को पहुंचाते ही क्यों न जाओ अपनी गाड़ी पर।"

बाहर अंधेरा था, बूंदा-बांदी हो रही थी और उन्हें पंतेलीमोन की

बैठे गले की खांसी की आवाज़ से ही पता चला कि गाड़ी कहां है। गाड़ी की छतरी तनी हुई थी।

इवान पेत्रोविच अपनी बेटी को गाड़ी पर चढ़ाते हुए और उन दोनों से विदा लेते हुए बराबर मज़ाक़ करता रहा:

"अच्छा जाओ! नमस्कार-दमस्कार!"

वे रवाना हो गये।

"मैं कल क़ब्रिस्तान गया था," स्तार्त्सेव ने कहना शुरू किया, "कितनी निर्दय और अनुदार बात थी..."

"तुम क़ब्रिस्तान गये थे?"

"हां, गया था और वहां क़रीब दो बजे तक तुम्हारी राह देखता रहा। मुझे इतनी परेशानी हुई..."

"अगर तुम मज़ाक़ भी नहीं समझ पाते, तो ठीक ही हुआ।"

येकतेरीना इवानोव्ना अपने प्रेमी को इस सफलता के साथ मूर्ख बनाने और इतनी आतुरता से प्रेम किये जाने पर ख़ुश हुई और ज़ोर ज़ोर से हंसने लगी। दूसरे ही क्षण वह घबड़ाकर ज़ोर से चीख़ पड़ी क्योंकि घोड़े एकदम क्लब की ओर मुड़े जिससे गाड़ी हिचकोला खा गयी। स्तार्त्सेव ने येकतेरीना इवानोव्ना का आलिंगन किया। डर कर वह स्तार्त्सेव के सहारे टिक गयी और वह उसके होंठों व ठुड्डी का चुम्बन करने और उसे अपने बाहुपाश में कसकर जकड़ लेने से अपने को रोक न सका।

वह रुखाई से बोली: "बस, बहुत हुआ।"

क्षण भर बाद वह गाड़ी में न थी, क्लब की तेज़ रोशनी से रौशन दरवाज़े पर खड़े पुलिस के सिपाही ने घिनौनी आवाज़ में चिल्लाकर पंतेलीमोन से कहा:

"अबे गधे, खड़ा क्या देखता है? आगे बढ़!"

स्तार्त्सेव घर गया, पर फ़ौरन फिर चल पड़ा। दूसरे के मांगे हुए फ़्राक-कोट पहने और कड़ी सफ़ेद टाई लगाये जो एक ओर को फिसल गयी थी, वह क्लब की बैठक में आधी रात को बैठा जोश से येकतेरीना इवानोव्ना से कह रहा था:

"अरे, जिन्होंने प्यार नहीं किया वे कितना कम जानते हैं! मुझे तो लगता है कि आज तक कोई भी प्रेम का सच्चाई और सफलता के साथ वर्णन ही नहीं कर सका, वास्तव में इस कोमल, सुखद, यातनापूर्ण भावना

का वर्णन कर सकना असंभव है और जिस किसी को इसका एक बार भी अनुभव हुआ है, वह फिर इस भावना को शब्दों में व्यक्त करने का प्रयत्न ही न करेगा। पर इस वर्णन की क्या जरूरत? यह अनावश्यक वाक्पटुता क्यों? मेरा प्रेम असीम है... मैं तुमसे अनुरोध करता हूं, अनुनय-विनय करता हूं कि तुम मेरी पत्नी बन जाओ!" अंत में स्तार्त्सेव ने कह ही दिया।

"द्मीत्री इग्रोनिच," बड़ी गंभीर बन कर येकतेरीना इवानोव्ना कुछ रुककर बोली, "इस सम्मान के लिये मैं तुम्हारी आभारी हूं, मैं तुम्हारा आदर करती हूं, किन्तु..." वह उठकर खड़ी हो गयी और खड़ी खड़ी ही बोलती रही, "लेकिन, मुझे साफ़ करना, मैं तुम्हारी पत्नी नहीं बन सकती। हम लोग साफ़-साफ़ एक-दूसरे को समझें। तुम जानते हो, द्मीत्री इग्रोनिच, कि मुझे जीवन में कला से सबसे ज़्यादा प्रेम है, मैं संगीत पर जान देती हूं, इसकी पूजा करती हूं। मैं अपना पूरा जीवन इसे अर्पित कर चुकी हूं। मैं संगीतज्ञ होना चाहती हूं, प्रसिद्धि, सफलता, स्वाधीनता चाहती हूं, और तुम चाहते हो कि मैं इस शहर में रहती रहूं, यहां की बेरौनक, व्यर्थ की जिन्दगी बसर करूं जो मुझे कभी की असह्य हो चुकी है। बस किसी की बीवी होऊं, न, धन्यवाद! मनुष्य को जीवन में ऊंचा, ज्वलंत लक्ष्य बनाना चाहिए और गृहस्थ जीवन मुझे हमेशा के लिये बांध डालेगा, द्मीत्री इग्रोनिच!" (वह हलका-सा मुसकरायी क्योंकि द्मीत्री इग्रोनिच का नाम लेते ही उसे बरबस अलेक्सेई फ़ेग्रोफ़िलाक्तिच नाम की याद आयी।) "द्मीत्री इग्रोनिच! तुम बड़े उदार, कृपालु, बुद्धिमान व्यक्ति हो, बाक़ी सबसे तुम बहुत अच्छे हो..." यह कहते कहते उसकी आंखों में आंसू भर आये, "मुझे हृदय से तुम्हारे साथ सहानुभूति है, लेकिन... मेरा ख़्याल है कि तुम समझ सकोगे..."

वह पलट कर बैठक से बाहर निकल गयी ताकि रो न दे।

स्तार्त्सेव का दिल अब घबराहट में नहीं फड़फड़ा रहा था। क्लब से निकल कर गली में जाते ही उसने पहला काम यह किया कि टाई नोच कर अलग की और एक गहरी सांस ली। वह कुछ झेंपा हुआ था, कुछ उसके अहं को ठेस पहुंची थी – उसने अस्वीकृति की कल्पना भी न की थी और वह विश्वास नहीं कर पा रहा था कि उसके सारे सपने, यातनाएं और आशाएं यूं इस अति साधारण ढंग से ख़त्म हो जायेंगी, मानो नौसिखुए

अभिनेताओं द्वारा खेले गये किसी नाटक के अंतिम दृश्य में। उसे अपने प्रेम और भावनाओं पर तरस आने लगा और उसका मन रो पड़ने या फिर पूरी ताक़त से अपना छाता पन्तेलीमोन के चौड़े कन्धों पर पटक देने को होने लगा।

तीन दिन तक उसका हर काम उलटा-पुलटा होता रहा, पर जब उसे ख़बर मिली कि येकतेरीना इवानोव्ना संगीतविद्यालय में भरती होने के लिये मास्को चली गयी है, वह शान्त हो गया और उसका जीवन फिर पुराने ढर्रे पर चल निकला।

बाद में जब उसे याद आता कि किस तरह वह क़ब्रिस्तान में घूमा था और कैसे एक फ़्राक-कोट के लिये सारा शहर छान मारा था, वह आलस्य से निढाल हो लेट जाता और कहता:

"कितनी परेशानी उठानी पड़ी!"

४

चार साल गुज़र गये। स्तार्त्सेव की अब शहर में ज़ोरदार डाक्टरी प्रेक्टिस चल निकली थी। रोज़ सबेरे वह द्यालिज में मरीज़ों को जल्दी जल्दी देख कर अपने शहर के मरीज़ देखने आ जाता। अब वह दो घोड़ों वाली गाड़ी पर नहीं तीन घोड़ों की शानदार बग्घी पर आता; गाड़ी के झुनझुने बजा करते, वह घर देर रात गये ही लौटता। वह मोटा, भारी-भरकम हो गया था और पैदल चलने से वह घबराता था क्योंकि उसकी सांस फूल जाती थी। पन्तेलीमोन भी मोटा हो गया था और जितना ही उसका मुटापा बढ़ता था उतने ही दुख से वह सांसें भर भर कर अपने भाग्य को कोसता: "हमेशा चलना ही चलना!"

स्तार्त्सेव अनेक लोगों के यहां जाता और बहुत से लोगों से मिलता; पर वह किसी से भी अभिन्नता या मित्रता का रिश्ता न जोड़ता। शहर के लोगों की बातचीत, विचारों और उनकी शक्ल तक से उसे चिढ़ थी। उसने धीरे धीरे सीख लिया था कि जब तक वह लोगों के साथ ताश खेलता और भोजन करता है तब तक वे शान्त, प्रसन्नचित्त व अपेक्षतया बुद्धिमान भी लगते हैं, पर जहां बात राजनीति या विज्ञान जैसे विचित्र विषयों पर

जा पहुंचती है वे या तो हड़बड़ा जाते हैं या ऐसे मूर्खतापूर्ण और दुष्ट दार्शनिक सिद्धान्त बघारने लगते हैं कि उन्हें छोड़कर चलते ही बनता है। जब स्तार्त्सेव किसी उदार व्यक्ति से भी कहता कि ख़ुदा का शुक्र है कि इंसान तरक़्क़ी कर रहा है और एक वक़्त आयेगा जब हमें फांसी की सज़ा से नजात मिल जायेगी और पासपोर्ट की ज़रूरत न रहेगी तो वह व्यक्ति स्तार्त्सेव की तरफ़ तिरछी निगाह से देखता जिसमें अविश्वास भरा होता और पूछता: "तब फिर लोग सड़कों पर जिसका जी चाहेगा गला काट सकेंगे?" जब रात में कहीं खाना खाते या चाय पीते स्तार्त्सेव कहता कि हर व्यक्ति को काम करना चाहिये और काम के बिना जीवन असम्भव है, तो लोग इसे अपनी निन्दा समझकर ज़ोर ज़ोर से बहस करने लगते। साथ ही ये लोग न तो कुछ करते थे, बिल्कुल कुछ नहीं करते थे और न किसी चीज़ में दिलचस्पी लेते थे, जिससे इन लोगों से बात करने के लिये विषय ढूंढ़ निकालना असम्भव ही हो जाता था। और स्तार्त्सेव बातचीत से बचता, इन लोगों के साथ सिर्फ़ ताश खेलता या खाना खाता; अगर किसी परिवार में किसी घरेलू उत्सव में भाग लेने के लिये वह आमंत्रित होता तो वह चुपचाप बैठा खाना खाया करता और अपनी थाली की ओर ही देखा करता। ऐसे मौक़ों पर होनेवाली बातचीत हमेशा ग़ैरदिलचस्प, मूर्खतापूर्ण और अन्याय भरी ही होती और वह खीज कर उत्तेजित हो जाता; इसीलिये कि वह हमेशा चुप रहता और चूंकि वह अपनी थाली की ओर ही गंभीर शान्ति से घूरा करता, शहर में लोग उसे "घमण्डी पोलैण्डवासी" कहते हालांकि पोलैण्डवासी वह कभी न था।

नाच-गाने और नाटक जैसे मनोरंजन से वह दूर भागता। हां, हर शाम तीन घण्टे ताश ज़रूर खेलता और इसमें पूरा मज़ा लेता। एक और मनोरंजन था जिसमें उसे धीरे धीरे अज्ञात रूप से आनन्द आने लगा था; यह था शाम को अपनी जेबों से दिन भर मरीज़ों से ली गयी फ़ीस के नोट निकालना – इनमें से कुछ पीले होते, कुछ हरे, कुछ से इत्र की ख़ुशबू आती और कुछ से सिरके, मछली की चर्बी या लोहबान की – ये नोट अक्सर सत्तर रूबल तक पहुंच जाते। जब उसके पास कई सौ रूबल हो जाते तो वह उन्हें 'म्युचुअल क्रेडिट सोसायटी' में जमा करा देता।

येकतेरीना इवानोव्ना के जाने के बाद वह तूरकिन परिवार में चार साल में केवल दो बार ही गया था और वह भी वेरा इओसीफ़ोव्ना के

आमंत्रण पर जिसके सिरदर्द का इलाज अब भी चल रहा था। येकतेरीना इवानोव्ना हर गरमी में अपने माता-पिता के पास आ जाती पर स्तार्त्सेव की उससे भेंट नहीं हुई, ऐसा संयोग ही नहीं आया।

और अब चार वर्ष गुज़र गये थे। एक दिन सवेरे जब हवा में स्थिरता और गरमाहट थी, अस्पताल में उसे एक पत्र मिला। वेरा इओसीफ़ोव्ना ने द्मीत्री इओनिच को लिखा था कि उसे उसकी बहुत याद आती है और उसे अवश्य आकर उससे मिलना चाहिये और उसका कष्ट दूर करना चाहिये; और यह कि आज उसका जन्म दिन भी है। पत्र के अंत में एक पंक्ति यह जुड़ी थी: "अम्मा के अनुरोध में मैं भी अपना अनुरोध जोड़ती हूं। ये०।"

स्तार्त्सेव ने इस मसले पर ग़ौर किया और शाम को तूरकिन के यहां गया। इवान पेत्रोविच ने उसी पुराने ढंग से "नमश्कार-दमश्कार" कहकर उसका स्वागत किया। उसकी आंखों में मुस्कराहट थी।

वेरा इओसीफ़ोव्ना काफ़ी बूढ़ी हो गयी थी और उसके बाल सफ़ेद हो गये थे, उसने स्तार्त्सेव का हाथ दबा कर बनते हुए सांस भरी और कहा:

"डाक्टर, तुम मुझे रिझाना नहीं चाहते, तुम कभी हम से मिलने नहीं आते, तुम्हारे लिये तो मैं बूढ़ी हुई, पर यह लड़की भी आ गयी है, शायद वह ज़्यादा ख़ुशक़िस्मत साबित हो।"

और बिल्लो? वह और भी दुबली और पीली पड़ गयी थी, पर अब भी सुन्दर और भी ज़्यादा मनमोहक हो गयी थी। अब वह येकतेरीना इवानोव्ना थी, महज़ बिल्लो नहीं। उसकी ताज़गी और बच्चों जैसी निश्छलता की भावभंगी ख़त्म हो चुकी थी। अब हाव-भाव में, निगाह में कुछ नया, कुछ जो सहमा हुआ और अपराधी-सा था, आ गया था मानो तूरकिन परिवार में वह अब अपनापन महसूस न करती हो।

अपना हाथ स्तार्त्सेव के हाथ में रखते हुए वह बोली: "हम लोगों को मिले युग बीत गये!" स्पष्ट था कि उसका दिल ज़ोरों से धक धक कर रहा था। उसके चेहरे पर आंखें जमाये और जिज्ञासा से उसे घूरते हुए वह बोली: "आप ज़रा मोटे हो गये हैं! आप पहले से कुछ सांवले पड़ गये हैं और ज़्यादा पुरुषोचित भाव आपके चेहरे पर आ गया है, पर आम तौर पर ज़्यादा परिवर्तन नहीं हुआ है।"

स्तार्त्सेव को वह अब भी आकर्षक, अत्यन्त आकर्षक लगती, पर उसमें अब कहीं कुछ कमी या कुछ बेशी मालूम पड़ती थी। वह कह नहीं सकता था कि यह क्या है, पर यह कमी या बेशी उसे पहले जैसी भावना धारण करने से रोक रही थी। उसे उसका पीलापन अच्छा नहीं लगता था, उसका नया भाव अच्छा नहीं लगता था, उसकी हलकी मुस्कान, उसकी आवाज़ अच्छी नहीं लग रही थी और थोड़ी देर में ही उसे उसकी पोशाक, कुरसी जिसपर वह बैठी थी, विगत में कुछ, जब वह उससे शादी करते करते रह गया था, सब कुछ नापसन्द लगने लगा। उसे अपने प्रेम, आशाएं, सपने याद आये जिन्होंने चार वर्ष पहले उसे उद्वेलित कर दिया था और उसे कुछ अजीब-सा लगने लगा। चाय और केक आये। फिर वेरा इओसीफ़ोव्ना ने ज़ोर ज़ोर से अपना उपन्यास पढ़ा, जिसमें उन बातों का ज़िक्र था जो जीवन में कभी होतीं नहीं और स्तार्त्सेव उसके सफ़ेद बालों से घिरे सुन्दर चेहरे को देखता सुनता रहा और इन्तज़ार करता रहा कि कब उपन्यास ख़त्म हो।

उसने सोचा: "अनाड़ी लोग वे नहीं होते जो कहानी लिख नहीं पाते बल्कि वे होते हैं जो कहानियां लिखते हैं और इस बात को छिपा नहीं पाते।"

"अनच्छा नहीं," इवान पेत्रोविच ने कहा।

फिर येकतेरीना इवानोव्ना ने देर तक शोर मचाते हुए पियानो बजाया और जब वह थमी लोगों ने देर तक उसकी प्रशंसा की और उसे धन्यवाद दिया।

स्तार्त्सेव ने सोचा: "अच्छा ही हुआ कि मैंने उससे शादी नहीं की।"

येकतेरीना इवानोव्ना ने स्तार्त्सेव की ओर ताका, स्पष्ट था कि वह आशा कर रही थी कि वह उससे बगीचे में चलने को कहेगा पर वह कुछ नहीं बोला।

वह उसके पास जा पहुंची और बोली: "आइये हम आप बातें करें। आप कैसे हैं? कैसा कट रहा है आपका वक़्त? इन सारे दिनों मैं आपके बारे में ही सोचती रहती थी," घबराहट में उसने कहना जारी रखा, "मैं आपको पत्र लिखना चाहती थी, आपसे मिलने द्यालिज आना चाहती थी, वहां जाने का तय भी कर लिया था, पर फिर मैंने इरादा बदल

12*

दिया – न जाने अब आप मेरे बारे में क्या सोचते होंगे। आज आपके आने की मुझे उत्कट प्रतीक्षा थी। चलिये बाग़ में चलें।"

वे बगीचे में पहुंचे और उसी पुराने मेपिल वृक्ष के तले बेंच पर जा बैठे जहां चार वर्ष पहले बैठे थे। अंधेरा हो गया।

"हां, अब बताइये, क्या हाल-चाल हैं, आपके?" येकतेरीना इवानोव्ना ने पूछा।

"मज़े में हूं, धन्यवाद," स्तार्त्सेव ने जवाब दिया।

वह यह नहीं सोच पा रहा था कि कहे क्या। दोनों चुप बैठे रहे।

अपने चेहरे पर हाथ रखते हुए येकतेरीना इवानोव्ना ने कहा: "मुझे बड़ी ललक और उत्तेजना है। कोई ख़्याल न कीजियेगा। घर आकर मैं इतनी ख़ुश हूं, सब लोगों से मिलकर इतनी ख़ुश हूं कि मैं इस ख़ुशी की आदी नहीं हो पाती। क्या क्या यादें हैं! मैं सोचती थी, हम आप रात भर बातें करते करते एक दूसरे का सिर चाट जायेंगे।"

स्तार्त्सेव को उसका चेहरा और चमकती आंखें दिखाई पड़ रही थीं और यहां अंधेरे में वह ज्यादा युवा लग रही थी, उसके पहलेवाला बच्चों जैसा भाव भी उसके चेहरे पर फिर से आ गया लगता था। सचमुच सरल जिज्ञासा से वह उसकी ओर ताक रही थी, मानो और ज़्यादा निकट पहुंचकर इस व्यक्ति को समझ लेना चाहती थी, उस व्यक्ति को जो एक समय उससे इतनी लगन से, ऐसी सुकुमारता से, ऐसी निरर्थकता से प्रेम करता था। उसकी आंखें उस प्रेम के लिये स्तार्त्सेव को धन्यवाद दे रही थीं। और उसे भी हर बात याद आ रही थी, छोटी से छोटी बात भी, कैसे वह क़ब्रिस्तान में टहलता रहा था और कैसे भोर होने पर, थकान से चूर हो वह घर लौटा था, और एकाएक वह उदास हो गया और विगत पर उसे खेद होने लगा। उसकी आत्मा में एक छोटा-सा दीपक जल उठा। उसने पूछा:

"याद है तुम्हें वह रात जब मैं तुम्हें क्लब ले गया था? पानी बरस रहा था, अंधेरा था..."

आत्मा में वह दीपक प्रज्वलित हो उठा और अब उसे बात करने, अपने जीवन की नीरसता पर दुख प्रकट करने की लालसा हुई...

उसने गहरी सांस लेकर कहा: "अरे! तुम मुझसे मेरी ज़िन्दगी के बारे में पूछती हो। हम यहां रहते ही कहां हैं? हम ज़िन्दा नहीं रहते।

हम बूढ़े और मोटे होते जा रहे हैं, जीवन की रास हम ढीली छोड़ देते हैं। दिन आते हैं, गुज़र जाते हैं, ज़िन्दगी कट जाती है, मैली और बदरंग ज़िन्दगी जिसपर विचारों और अनुभूतियों के प्रभाव ही नहीं पड़ते... दिन रुपया बनाने में गुज़र जाते हैं, शाम शराबियों, गप्पियों, ताश खेलनेवालों के साथ क्लब में; उनमें से हर एक से मैं नफ़रत करता हूं। यह ज़िन्दगी किस ढब की है, तुम्हीं बताओ।"

"पर तुम्हारा काम! वह तो जीवन में एक पवित्र उद्देश्य है। तुम अपने अस्पताल के बारे में इतने चाव से बातें किया करते थे। तब मैं अजीब क़िस्म की लड़की थी, स्वयं बहुत बड़ी संगीतज्ञ होने की कल्पना करती थी। महान पियानो वादिका बनने की कल्पना में रहती थी। आजकल सभी जवान लड़कियां पियानो बजाती हैं, मैं भी औरों की तरह पियानो बजाती थी। मुझमें कोई विशेषता नहीं थी। मैं वैसी ही संगीतज्ञ हूं जैसी माता जी उपन्यासकार हैं। हां, तब मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता था, पर बाद में, मास्को में, मैं अक्सर तुम्हारे बारे में सोचा करती थी। डाक्टर होने में कितना आनन्द है, दुखियों की सहायता करने, जनता की सेवा करने में कितना सुख है, कितना आनन्द है!" बड़े उत्साह से येकतेरीना इवानोव्ना ये बातें दोहरा रही थी। "जब मैं मास्को में तुम्हारे बारे में सोचती थी तो तुम मुझे आदर्श, महान व्यक्ति लगते थे..."

स्तार्त्सेव को याद आया कि हर शाम वह किस सन्तोष से अपनी जेब से नोट निकालता है और उसकी आत्मा का दीपक बुझ गया।

वह घर वापस जाने के लिये उठ खड़ा हुआ। येकतेरीना इवानोव्ना ने उसका हाथ थाम लिया और अपनी बात जारी रखी:

"जितने लोगों को मैं जानती हूं, तुम उन सबसे अच्छे हो। हम लोग एक दूसरे से मिलते और बातचीत करते रहेंगे! क्यों, है न? मुझसे वादा करो। मैं पियानो अच्छा नहीं बजा पाती, मुझे अब ऐसा कोई गुमान नहीं है और मैं कभी तुम्हारे सामने न पियानो बजाऊंगी और न संगीत की बात करूंगी।"

जब वे फिर घर पहुंचे और स्तार्त्सेव ने रोशनी में उसका चेहरा देखा और उसकी उदास, तीखी, कृतज्ञ निगाह देखी, जिससे वह उसकी तरफ़ ताक रही थी, उसका मन विकल हो गया, पर वह सोचने लगा:

"अच्छा ही हुआ कि मैंने इससे शादी नहीं की।"

उसने जाने के लिये अनुमति मांगी।

"रात के खाने के पहले जाने का तुम्हें क़तई कोई सांसारिक अधिकार नहीं है," इवान पेत्रोविच उससे विदा लेते हुए बोला। "यह तो तुम्हारी चमक-दमकवाली बात है। चलो अब दिखाओ अपनी करामात!" ड्योढ़ी में पावा की ओर मुड़कर वह चिल्लाया।

पावा अब लड़का नहीं, मूंछों वाला जवान था; उसने मुद्रा बनायी, एक हाथ उठाया और दुख भरे स्वर में कहा:

"बदनसीब कहीं की! बरबाद हो जा!"

इससे अब स्तार्त्सेव को खिजलाहट ही हुई। अपनी गाड़ी में बैठते हुए उसने मकान और बगीचे की ओर देखा, जो एक समय उसे बहुत प्रिय थे और उसे हर बात एकदम याद आ गयी – वेरा इओसीफ़ोव्ना के उपन्यास, बिल्लो का शोर मचाते हुए पियानो बजाना, इवान पेत्रोविच के मजाक़, पावा की दुखद मुद्रा; वह सोचने लगा कि जब नगर के सर्वगुणसम्पन्न लोग इतने साधारण हैं, तो नगर से क्या आशा की जाये?

तीन दिन बाद पावा उसके पास येकतेरीना इवानोव्ना की एक चिट्ठी लाया। उसने लिखा था: "तुम हम लोगों से मिलने नहीं आते। क्यों? मुझे आशंका होती है कि तुम्हारा दिल हम लोगों की तरफ़ से फिर गया है। मुझे डर है और यह ख़्याल भर मुझे भयभीत कर डालता है। मुझे आश्वासन दो, आकर मुझसे कह दो कि सब कुछ ठीक है।

मुझे तुमसे मिलना है।

तुम्हारी ये० तू०।"

उसने ख़त पढ़ा, एक मिनट तक सोचा, फिर पावा से कहा:

"कह देना, छोकरे, कि मैं आज नहीं आ सकूंगा। बहुत व्यस्त हूं। मैं दो-एक दिन बाद आऊंगा।"

पर तीन दिन हो गये, फिर हफ़्ता गुज़र गया और वह गया नहीं। एक बार तूरकिन के घर के पास से अपनी गाड़ी में गुज़रते हुए उसे ख़्याल आया कि उसे भीतर जाकर मिलना चाहिये, चाहे कुछ मिनटों के लिये ही सही, फिर उसने कुछ देर सोचा... और वह गाड़ी बढ़ा कर चल दिया।

वह फिर कभी तूरकिन के घर नहीं गया।

५

कुछ साल और गुज़र गये। स्तार्त्सेव और मोटा हो गया था, बिल्कुल तुंदियल, जल्दी हांफने लगा और चलने में उसे सिर पीछे की ओर झुकाना पड़ता था। लाल लाल, गदबदा स्तार्त्सेव घंटियां बजाते तीन घोड़ों की गाड़ी पर बैठकर जब गुज़रता और उतना ही लाल और गदबदा पन्तेलीमोन कोचवान की सीट पर बैठ जाता तो दृश्य देखने काबिल होता: पन्तेलीमोन की गरदन पर चर्बी की परतें लटकती होतीं, बांहें सामने आगे बढ़ी हुई होतीं, मानो वे लकड़ी की हों, सामने से आनेवाले गाड़ीवानों पर वह चिल्लाता: "हट्ट्टो द्द्दाहिनी ओर बचो!" और ऐसा लगता था कि कोई इन्सान नहीं देवता गुज़र रहा हो। उसकी डाक्टरी इस ज़ोर-शोर से चल रही थी कि उसे दम मारने की फ़ुरसत भी नहीं मिलती थी; पास देहात में उसने जागीर ले ली थी, शहर में दो मकान ख़रीद लिये थे और एक तीसरे पर निगाह लगाये हुए था जो और भी बड़े मुनाफ़े का सौदा था। 'म्युचुअल क्रेडिट सोसायटी' के दफ़्तर में जब कभी वह सुनता कि किसी मकान का नीलाम होनेवाला है, वह बिना इजाज़त लिये घर में घुस जाता, अधनंगी औरतों, बच्चों का ख़्याल किये बिना हर कमरे में जाता और हर दरवाज़े पर छड़ी खटखटाते हुए कहता था:

"वह पढ़ाई का कमरा है? क्या वह सोने का कमरा है? यह कौनसा कमरा है?" मौजूद औरतें और बच्चे उसकी ओर डर से देखते थे। वह बराबर हांफता रहता और माथे से पसीना पोंछता जाता।

उसकी फ़िक्रें और काम बहुत बढ़ गये थे, फिर भी उसने ज़ेम्स्त्वो के डाक्टर का पद नहीं छोड़ा था, लालच के मारे वह जो कुछ जहां मिलता इकट्ठा करता जाता। अब द्यालिज व शहर दोनों में सब लोग उसे इओनिच कहकर पुकारते: "इओनिच कहां जा रहा है?" या "क्या इओनिच को बुलाना ठीक न होगा?"

गरदन पर पड़ी चर्बी की परतों के कारण ही उसकी आवाज़ तीखी हो गयी थी और पिपियाने लगी थी। उसका मिज़ाज भी बदल गया था और अब वह चिड़चिड़ा और गुस्सैल हो गया। मरीज़ देखते वह गुस्सा हो उठता। अपनी छड़ी असहिष्णुता से फ़र्श पर ठोकता और कर्कश आवाज़ में चिल्ला पड़ता:

"मेहरबानी कर ग़ैरज़रूरी बात न करें, मैं जो पूछता हूं, वही बतायें!"

वह अकेला रहता है, उसका जीवन नीरस है, उसे किसी चीज़ में दिलचस्पी नहीं है।

द्यालिज में रहते हुए उसके जीवन में अकेली ख़ुशी – शायद आख़िरी भी, उसका बिल्लो को प्यार करना थी। शाम को वह क्लब में बैठकर ताश खेलता और फिर एक बड़ी मेज़ पर अकेला बैठकर रात का खाना खाता था। क्लब का सबसे पुराना और इज़्ज़तदार नौकर इवान ही हमेशा उसे खाना खिलाता था। वह उसके लिये १७ नम्बर की बढ़िया शराब लाता था। और हर एक – मैनेजर, रसोइया, दरबान उसकी पसन्द-नापसन्द जानते थे और उसे ख़ुश रखने की पूरी कोशिश करते थे, नहीं तो, ईश्वर न करे, वह एकाएक क्रोध में आ जाता और फ़र्श पर छड़ी पटकने लगता था।

खाना खाते खाते कभी कभी वह मुड़कर और लोगों की बातों में शामिल हो जाता था:

"आप किसकी बात कर रहे हैं? ऐं? कौन?"

और यदि पास वाली मेज़ पर बातचीत तूरकिन परिवार के बारे में होती तो वह पूछता था:

"क्या आप तूरकिन परिवार की बात कर रहे हैं? वही तूरकिन जिसकी लड़की पियानो बजाती है?"

उसके बारे में कहने की बस यही है।

और तूरकिन परिवार? इवान पेत्रोविच न तो बुढ़ाया ही था और न उसमें कोई परिवर्तन आया था, वह अब भी मज़ाक़ करता था और हंसी की कहानियां सुनाता था। वेरा इओसीफ़ोव्ना आगन्तुकों को उसी ख़ुशी और सरलता से अपने उपन्यास सुनाती थी। और बिल्लो चार घण्टे रोज़ पियानो बजाने का अभ्यास करती थी। उसकी बढ़ती हुई उम्र प्रकट होने लगी। वह अक्सर बीमार रहती थी और हर पतझड़ में मां के साथ क्रीमिया चली जाती थी। ट्रेन छूटते समय आंखें पोंछते हुए इवान पेत्रोविच कहता था:

"नमश्कार-दमश्कार!"

और अपना रूमाल हिलाता था।

दुलहन

१

रात के दस बज चुके थे और बगीचे में पूरा चांद चमक रहा था। शूमिन परिवार में दादी मार्फ़ा मिखाइलोव्ना की आज्ञानुसार आयोजित शाम की प्रार्थना अभी अभी ख़त्म हुई थी, और नाद्या को जो एक मिनट के लिए बगीचे में निकल आयी थी, दिखाई पड़ रहा था कि खाने के कमरे में रात का भोजन परोसा जा रहा है। उसकी दादी फूली-फूली रेशमी पोशाक पहने, मेज़ के चारों ओर मंडरा रही थीं; पादरी अन्द्रेई नाद्या की मां नीना इवानोव्ना से बातें कर रहे थे। नीना इवानोव्ना बत्ती की रोशनी में नवयुवती सी दिख रही थी। मां के पास पादरी अन्द्रेई का लड़का अन्द्रेई अन्द्रेइच खड़ा हुआ ध्यान से बातचीत सुन रहा था।

बगीचे में ठण्डक और ख़ामोशी थी, गहरी निश्चल छायाएं ज़मीन पर पसर रही थीं। बहुत दूर से, शायद शहर के बाहर से मेंढ़कों के टर्राने की आवाज़ आ रही थी। हवा में मई की, सुहावनी मई की उमंग थी। ताज़ी हवा में गहरी सांस लेकर यह कल्पना की जा सकती थी कि कहीं, शहर से बहुत दूर, आसमान के नीचे, पेड़ों की चोटियों के ऊपर, खेतों और झाड़ियों में वसन्त अपना जीवन – रहस्यमय और अत्यन्त सुन्दर, अमूल्य और पवित्र जीवन – आरम्भ कर रहा है जो कमज़ोर, पापी मानव की पहुंच से बाहर है। जाने क्यों, रोने को जी चाहता था।

नाद्या अब तेईस साल की थी; सोलह साल की उम्र से ही वह व्यग्रता के साथ शादी के सपने देख रही थी, और अब आख़िरकार खाने के कमरे में खड़े नौजवान अन्द्रेई अन्द्रेइच से उसकी सगाई हो चुकी थी। वह अन्द्रेई को पसन्द करती थी, शादी की तारीख सातवीं जुलाई तय कर दी गयी थी लेकिन उसे कोई ख़ुशी नहीं महसूस हो रही थी, न रात में अच्छी तरह नींद आती, उसकी ख़ुशी ग़ायब हो गयी थी... नीचे के रसोईघर की

खुली खिड़कियों से छुरी कांटों की खनखनाहट सुनाई पड़ रही थी, दरवाज़ा बराबर भड़भड़ा रहा था। मुर्ग़ के भुनने और मसालेदार चेरी की ख़ुशबू आ रही थी। ऐसा मालूम होता था कि यह सब बिना बदले अनन्त काल तक ऐसे ही चलता रहेगा!

मकान से कोई निकला और ओसारे में खड़ा हो गया। यह अलेक्सान्द्र तिमोफ़ेइच या जैसा कि सब कोई उसे पुकारते थे, साशा था, जो मास्को से क़रीब दस रोज़ पहले आया था। बहुत दिन हुए नाद्या की दादी की दूर की कुलीन रिश्तेदार, छोटे कद की, दुबली-पतली, रुग्ण और ग़रीब विधवा मरीया पेत्रोव्ना दादी से मदद मांगने के लिए मिलने आया करती थी। उसी का एकलड़का था साशा। पता नहीं क्यों, लोगों का कहना था कि वह एक अच्छा कलाकार था और जब उसकी मां मरी तो दादी ने आत्मा की शान्ति के लिए मास्को के कोमिसारोव स्कूल में उसे भेज दिया। एक या दो साल बाद, उसने अपना तबादला चित्रकला विद्यालय में करा लिया जहां वह लगभग पन्द्रह साल रहा। अंत में वह वास्तु-शिल्प-विभाग की अन्तिम परीक्षा में किसी तरह उत्तीर्ण हो गया; उसने वास्तु-शिल्पी की हैसियत से कभी काम नहीं किया बल्कि मास्को में लिथो-छापेख़ाने में नौकरी कर ली। वह क़रीब क़रीब हर गर्मी में आम तौर से काफ़ी बीमार होकर आराम करने और स्वास्थ्य-लाभ के लिए आता था।

गले तक बटन लगाये वह एक लम्बा कोट और पुरानी-सी किरमिच की पतलून पहने हुए था, जिसके पायंचों के किनारों से छूंछके निकल रहे थे। उसकी कमीज़ पर इस्त्री नहीं थी, वह मलिन दिखलाई पड़ रहा था। वह दुबला, बड़ी-बड़ी आंखों, लम्बी हड़ीली उंगलियों और दाढ़ीवाला, सांवले रंग का, परन्तु सुन्दर युवक था। शूमिन के यहां उसे लगता जैसे वह अपने ही लोगों के बीच है और उन लोगों में उसी तरह से घुला-मिला रहता था। गर्मियों में उसके ठहरने का कमरा भी साशा का कमरा कहलाता था।

ओसारे से उसने नाद्या को देखा और उसके पास चला गया।

"यहां बहुत सुहावना है," उसने कहा।

"हां, बहुत सुहावना है, तुम्हें पतझड़ तक यहां ठहरना चाहिए।"

"हां, शायद ठहरना ही पड़ेगा। मैं शायद तुम्हारे साथ सितम्बर तक ठहरूंगा।"

वह अकारण हंसा और उसकी बग़ल में बैठ गया।

"मैं यहां बैठी मां को देख रही हूं," नाद्या ने कहा। "यहां से वह बहुत ही युवा मालूम पड़ रही है। यह ठीक है कि मेरी मां में कमज़ोरियां हैं," उसने ज़रा रुककर आगे कहा, "मगर फिर भी वह अनूठी औरत है।"

"हां, वह बहुत अच्छी है..." साशा ने सम्मति प्रकट की। "अपनी तरह से तुम्हारी मां बहुत अच्छी और दयालु है, लेकिन... मैं कैसे समझाऊं? मैं आज सवेरे तड़के रसोईघर में गया था, और मैंने वहां चार नौकरों को फ़र्श पर सोते देखा, बिना बिस्तर, बिछाने के लिए सिर्फ़ चिथड़े... खटमल, तिलचट्टे... बिल्कुल बीस साल पहले की तरह, ज़रा भी बदले बिना। दादी को दोष नहीं देना चाहिए, वह बुड्ढी हैं—लेकिन तुम्हारी मां, जिन्हें सभ्य फ़्रेंच भाषा आती है और नाटकों में दिलचस्पी है... उन्हें तो समझना चाहिए।"

साशा की आदत थी कि बोलते समय सुनने वाले की ओर दो उंगलियां अठाया करता लेता था।

"यहां मुझे हर चीज़ बड़ी अजीब लगती है," उसने कहा। "मैं इनका आदी नहीं हूं—कोई कभी काम नहीं करता है। तुम्हारी मां रानी की तरह टहलने के अलावा कुछ नहीं करती है, दादी भी कुछ नहीं करती हैं और न तुम। और तुम्हारा मंगेतर, वह भी कुछ नहीं करता है।"

नाद्या पिछले साल यह सब कुछ सुन चुकी थी और उसे याद आ रहा था कि दो साल पहले भी उसने यही सब सुना था। नाद्या को पता था कि साशा का दिमाग़ सिर्फ़ इसी तरह काम कर सकता था। एक वक़्त था कि जब इन बातों से उसका मनोरंजन होता था लेकिन अब किसी वजह से उसे चिढ़ लग रही थी।

"यह पुराना पचड़ा है, मैं इसे सुनते-सुनते ऊब गयी हूं," नाद्या ने उठते हुए कहा। "क्या तुम कोई नयी बात नहीं सोच सकते?"

वह हंसा और उठ खड़ा हुआ, और दोनों घर में वापस चले गये। साशा के बग़ल में चलती हुई वह ख़ूबसूरत, लम्बी और छरहरी लगती थी, उसकी तड़क-भड़क और स्वास्थ्य कुछ खटकता-सा था। उसे ख़ुद इस बात का अहसास था और उसे साशा के लिए अफ़सोस व न जाने क्यों कुछ झेंप भी लग रही थी।

"तुम बहुत बेकार बातें करते हो," उसने कहा। "देखो, तुमने अभी मेरे अन्द्रेई के बारे में कहा है लेकिन तुम उसे जरा भी नहीं जानते हो।"

"मेरा अन्द्रेई... तुम्हारे अन्द्रेई की चिन्ता नहीं, मुझे तुम्हारी जवानी का शिकवा है।"

जब वे खाने के कमरे में गये, उस वक़्त हर एक खाने के लिए बैठ ही रहा था। दुहरे बदन की असुन्दर बूढ़ी औरत मोटी भौंहों और मूंछों वाली, नाद्या की दादी ज़ोर से बात कर रही थीं। उनकी आवाज और बात करने के ढंग से जाहिर होता था कि घर की असली मालिकिन वही हैं। बाजार में दुकानों की क़तारों की वह मालकिन थीं, और खम्भों और बगीचे वाला मकान भी उन्हीं का था। लेकिन हर रोज़ सवेरे वह भगवान से प्रार्थना करतीं कि भगवान सर्वनाश से उनकी रक्षा करे और रो पड़तीं। उनकी बहू, नाद्या की मां, नीना इवानोव्ना, गेहुएं रंग की, तंग कपड़े पहने, बिना कमानी का चश्मा लगाये और सब उंगलियों में हीरे की अंगूठियां पहने हुए थी; पादरी अन्द्रेई, पोपले और दुबले जो हमेशा ऐसे लगते थे जैसे कोई मज़ाकिया बात कहने जा रहे हों और उनका लड़का अन्द्रेई अन्द्रेइच – नाद्या का मंगेतर – तगड़ा, ख़ूबसूरत, घुंघराले बालों वाला नौजवान जो एक अभिनेता या कलाकार ज्यादा लगता था, ये तीनों सम्मोहन-विद्या के बारे में बातें कर रहे थे।

"तुम यहां एक हफ़्ते में मोटे हो जाओगे," दादी ने साशा से कहा। "लेकिन तुम्हें ज्यादा खाना चाहिए। जरा अपने को देखो," उन्होंने आह भरी, "तुम बहुत डरावने लगते हो। एक आवारा बेटा, वाक़ई तुम वही हो।"

"ऊधमी जीवन बसर करने की वजह से इसका शरीर क्षय हुआ है..." पादरी अन्द्रेई ने धीरे धीरे शब्द निकालते हुए विचार प्रकट किये। उनकी आंखें हंस रही थीं।

"मैं अपने पिता को प्यार करता हूं," अन्द्रेई अन्द्रेइच ने अपने पिता का कन्धा छूते हुए कहा। "प्यारे बूढ़े। अच्छे बूढ़े।"

किसी ने कुछ नहीं कहा। साशा एकाएक हंसा और उसने नैपकिन से अपने ओंठ दबा लिये।

"तो तुम्हें सम्मोहन-विद्या में विश्वास है?" पादरी अन्द्रेई ने नीना इवानोव्ना से पूछा।

"मैं नहीं कह सकती कि मैं इसमें यक़ीन करती हूं," नीना इवानोव्ना ने गंभीर, लगभग कठोर भाव दर्शाते हुए जवाब दिया, "लेकिन मुझे यह मानना पड़ता है कि प्रकृति में बहुत कुछ अगम्य और रहस्यमय है।"

"मैं तुमसे सहमत हूं, हालांकि मैं यह और जोड़ दूं कि हम लोगों की धार्मिक आस्था रहस्य का क्षेत्र काफ़ी कम कर देती है।"

एक बहुत ही बड़ा और रसदार मुर्ग़ा मेज़ पर परोसा गया। पादरी अन्द्रेई और नीना इवानोव्ना बातों में मशग़ूल रहे। नीना इवानोव्ना की उंगलियों के हीरे चमक रहे थे और आंखों में आंसू; वह बहुत भावुक हो गयी थी।

"मैं आप के साथ तर्क करने का साहस तो नहीं करती हूं," उसने कहा, "लेकिन आप सहमत होंगे कि जिन्दगी में बहुत-सी अनबूझ पहेलियां हैं।"

"एक भी नहीं, मैं तुम्हें यक़ीन दिलाता हूं।"

खाने के बाद अन्द्रेई अन्द्रेइच ने वायलिन बजाया और संगत में नीना इवानोव्ना पियानो बजा रही थी। अन्द्रेई अन्द्रेइच ने विश्वविद्यालय के भाषाविज्ञान विभाग से दस साल पहले डिग्री प्राप्त कर ली थी परन्तु न वह नौकरी करता था और न उसका कोई निश्चित धन्धा था, सिवा इसके कि कभी-कभी वह सहायतार्थ संगीत-कार्यक्रमों में वायलिन बजाता था। शहर में वह एक संगीतज्ञ के रूप में मशहूर था।

अन्द्रेई अन्द्रेइच वाद्य बजा रहा था और सब ख़ामोशी से सुन रहे थे। मेज़ पर समोवार से भाप निकल रही थी और अकेला साशा चाय पी रहा था। जैसे ही बारह बजे, वायलिन का एक तार टूट गया। सब हंस पड़े और विदाई की भड़भड़ी शुरू हो गयी।

अपने संगेतर से शुभ रात्रि कह कर नाद्या ऊपर चली गयी जहां वह अपनी मां के साथ रहती थी (नीचे के हिस्से में दादी रहती थीं)। नीचे खाने के कमरे में बत्तियां बुझायी जा रही थीं, लेकिन साशा बैठा चाय पीता रहा। वह हमेशा देर तक चाय पीता था मास्को के फ़ैशन के मुताबिक एक के बाद एक छः-सात गिलास चाय। कपड़े उतार कर बिस्तर पर लेटने के बहुत देर बाद तक नाद्या को नौकरों के मेज़ साफ़ करने की आवाज़ और दादी की डांट सुनायी पड़ती रही। आख़िरकार, नीचे साशा के कमरे से कभी-कभी खांसने की आवाज़ को छोड़ कर घर में ख़ामोशी छा गयी।

२

ज़रूर दो बजे होंगे जब नाद्या जग गयी, पौ फटने लगी थी। दूर चौकीदार की लाठी की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। नाद्या को नींद नहीं आ रही थी, बिस्तर ज़रूरत से ज़्यादा मुलायम जान पड़ रहा था। गत कई रातों की तरह मई की इस रात को भी वह बिस्तर में बैठ गयी और विचारों में खो गयी। ये विचार पिछली रात की ही तरह अरुचिकर और निरर्थक थे और उसका पीछा नहीं छोड़ रहे थे। अन्द्रेई अन्द्रेइच का ख़्याल आया कि किस तरह उसने उससे दोस्ती की और शादी का प्रस्ताव रखा, और कैसे उसने वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था और बाद में धीरे-धीरे इस अच्छे और चतुर आदमी की क़द्र करने लगी थी। लेकिन जब शादी का सिर्फ़ एक महीना रह गया था, तो न मालूम क्यों उसे डर और बेचैनी लगने लगी थी, जैसे उसके भविष्य में कोई अस्पष्ट शोक निहित हो।

"टिक-टोक, टिक-टोक..." चौकीदार की अलसायी आहट सुनाई पड़ रही थी, "टिक-टोक... टिक-टोक..."

बड़ी पुरानी खिड़की से बगीचा और उसके पीछे फूलों से लदी बकाइन की झाड़ियां, ठंडी हवा में उनींदी और अलसायी सी दिख रही थीं। और एक घना कुहासा बकाइन की झाड़ियों पर छाया हुआ था, मानो उन्हें घेर लेने का निश्चय कर चुका हो। दूर पेड़ों से उनींदे कौवों की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी।

"हे ईश्वर, मुझे क्यों इतना शोक है?"

क्या शादी से पहले सब लड़कियां ऐसा ही महसूस करती हैं? कौन जाने? क्या यह साशा का प्रभाव है? लेकिन साशा तो सालों-साल उन्हीं पुरानी बातों को बराबर दुहराता रहा था, मानो रटी हुई हों। और जब भी कुछ कहता वह बहुत भोला और अजीब लगता, मगर वह साशा का विचार अपने दिमाग़ से निकाल क्यों नहीं पा रही थी? क्यों?

चौकीदार बहुत देर पहले ही गश्त ख़त्म कर चुका था। पेड़ों की चोटियों पर और खिड़की के नीचे चिड़ियों ने चहचहाना शुरू कर दिया था, बगीचे का कुहासा दूर हो गया था, हर चीज़ वसन्त की धूप से चमक रही थी, हर चीज़ मुस्कराती हुई सी लग रही थी। थोड़ी देर में सारा बगीचा सूर्य की प्यारी गर्मी से सजीव हो उठा, पेड़ों की पत्तियों

पर ओस हीरों की तरह चमक रही थी और पुराना उपेक्षित बगीचा आज के सवेरे में तरुण और उल्लसित हो उठा था।

दादी भी जाग चुकी थीं। साशा अपनी रूखी खांसी खांस रहा था। नीचे से नौकरों के समोवार लाने और इधर-उधर कुर्सियां हटाये जाने की आवाज़ आ रही थी।

समय धीरे-धीरे गुज़र रहा था। नाद्या उठकर बहुत देर से बगीचे में टहल रही थी, मगर सवेरा फिर भी लम्बा होता जा रहा था।

नीना इवानोव्ना, आंखों में आंसू भरे, हाथ में मिनरल वाटर का गिलास लिए हुए आयी। उसे स्पिरिटिज़्म और होम्योपेथी में दिलचस्पी थी, उसने काफ़ी पढ़ा था और उसे अपनी शंकाओं के बारे में बात करने का शौक़ था। और नाद्या का ख़्याल था कि इन सब में कोई रहस्यमय गूढ़ महत्व होगा। उसने अपनी मां का चुम्बन किया और उसके बग़ल में चलने लगी।

"तुम किस के बारे में रो रही हो मां?" उसने पूछा।

"मैंने कल रात एक बूढ़े आदमी और उसकी बेटी के बारे में किताब पढ़ी थी। बूढ़ा किसी दफ़्तर में नौकरी करता था और उसका अफ़सर बूढ़े की लड़की के प्रेम में फंस गया। मैंने किताब अभी खत्म नहीं की है, लेकिन एक स्थल पर मैं रुलाई न रोक सकी," नीना इवानोव्ना ने कहा और गिलास से एक घूंट भरा। "मुझे आज सवेरे याद आयी और फिर रुलाई आ गयी।"

"और मैं आजकल बहुत उदास हूं," नाद्या ने ज़रा रुककर कहा। "मुझे नींद क्यों नहीं आती?"

"मुझे नहीं मालूम, प्यारी। जब मैं सो नहीं सकती हूं तो मैं अपनी आंखें कसकर बन्द कर लेती हूं, इस तरह, और कल्पना करती हूं कि आन्ना करेनिना कैसी लगती थी और किस तरह बोलती थी या मैं किसी ऐतिहासिक बात की कल्पना करने की कोशिश करती हूं, किसी पुराने ज़माने की बात की कल्पना..."

नाद्या को महसूस हुआ कि उसकी मां उसे नहीं समझ पायी, उसे समझने में असमर्थ और अयोग्य है। इससे पहले कभी उसने यह बात महसूस नहीं की थी। इस एहसास से वह डर गयी, उसे कहीं छिपने की इच्छा हुई और वह अपने कमरे में चली गयी।

दो बजे सब खाना खाने बैठे। आज बुध यानी व्रत का दिन था और

दादी के खाने में बिना गोश्त का शोरबा, और दलिया के साथ मछली परोसी गयी।

दादी को चिढ़ाने के लिए साशा ने बिना गोश्त का और गोश्त का शोरबा दोनों खा लिया। वह पूरे खाने भर मज़ाक़ करता रहा। लेकिन उसके लतीफ़े लम्बे और हमेशा सदाचार गर्भित होते थे और बिल्कुल पुरमज़ाक़ नहीं मालूम पड़ते थे; जबकि कोई हंसी की बात कहने के पहले वह अपनी दो हड़ीली और निर्जीव-सी उंगलियां उठाता था, फिर, यह बात याद आते ही कि वह बहुत बीमार है और शायद ज्यादा दिन ज़िन्दा न रहे, इतना दुःख मन में उमड़ पड़ता कि रोना आ जाता।

भोजन के बाद दादी अपने कमरे में आराम करने चली गयीं। नीना इवानोव्ना थोड़ी देर पियानो बजाती रही और फिर वह भी उठ कर कमरे के बाहर चली गयी।

"ओह, प्यारी नाद्या," साशा ने अपने रोज़मर्रा के खाने के बाद के विषय पर बोलते हुए कहा, "काश तुम मेरी बात सुनती!"

वह एक पुराने फ़ैशन की आराम-कुर्सी पर सिमटकर, आंखें बन्द किये बैठी थी, और साशा कमरे में चहलक़दमी कर रहा था।

"अगर तुम चली जाओ और पढ़ो," उसने कहा। "केवल सुविज्ञ और सन्त व्यक्ति दिलचस्प होते हैं, केवल उन्हीं की ज़रूरत होती है। जितने ही ऐसे आदमी ज्यादा होंगे, उतनी ही शीघ्र पृथ्वी पर स्वर्ग आयेगा। तब तुम्हारे इस शहर में हर चीज़ उलट-पुलट हो जायेगी। हर चीज़ बदल जायेगी, मानो कोई जादू हो गया हो। और फिर यहां शानदार भव्य इमारतें, सुन्दर उद्यान, बढ़िया फव्वारे और अच्छे लोग होंगे... लेकिन यह मुख्य बात नहीं है। मुख्य बात यह है कि कोई भीड़ नहीं होगी, जैसा कि इस शब्द के मानी हम समझते हैं। अपनी मौजूदा शक्ल में यह बुराई ग़ायब हो जायेगी क्योंकि हर व्यक्ति की आस्था होगी, और वह जानता होगा कि उसे जीवन में क्या करना है, और कोई भी भीड़ से समर्थन नहीं चाहेगा। प्यारी बच्ची, चली जाओ! उन्हें दिखा दो कि इस सुस्त, पापी और गतिरुद्ध जिन्दगी से तुम ऊब गयी हो। कम से कम तुम अपने को तो दिखा दो!"

"असंभव, साशा, मैं शादी करने जा रही हूं।"

"रहने दो! उससे क्या होता है?"

वे बगीचे में चले गये और टहलने लगे।

"कुछ भी हो, मेरी प्यारी, तुम्हें सोचना ही पड़ेगा, समझना ही पड़ेगा कि तुम्हारी बेकार की ज़िन्दगी कितनी घृणित और अनैतिक है," साशा बोलता रहा। "क्या तुम देखती नहीं हो, दूसरे तुम्हारे लिए काम करते हैं ताकि तुम्हारी मां, तुम्हारी दादी और तुम आलसी जीवन बिता सको। तुम दूसरों की जिन्दगी नष्ट कर रही हो, क्या यह अच्छा है, क्या यह हेय नहीं है?"

नाद्या कहना चाहती थी: "हां, तुम ठीक हो," बताना चाहती थी कि वह उसे समझती थी, लेकिन उसकी आँखों में आंसू भर आये, वह ख़ामोश हो गयी, लगा जैसे कि अपने में सिमट गयी हो और वह अपने कमरे में चली गयी।

शाम को अन्द्रेई अन्द्रेइच आया और सदैव की तरह बहुत देर तक वायलिन बजाता रहा। वह प्रकृति से चुप्पा था, और उसे वायलिन बजाना शायद इसीलिए प्रिय था, क्योंकि बजाते वक़्त उसे बोलना नहीं पड़ता था। दस बजने के बाद, जब उसने घर जाने के लिए अपना कोट पहन लिया तो नाद्या को अपनी बांहों में भर लिया और उसके कन्धों, बांहों और चेहरे पर गर्म चुम्बनों की बौछार कर दी।

"मेरी प्यारी, मेरी प्रियतमा, मेरी सुंदरी!" वह फुसफुसाया। "मैं कितना ख़ुश हूं! कहीं मैं ख़ुशी से पागल न हो जाऊं!"

और यह उसे ऐसा लगा कि वह बहुत पहले ही ये सारी बातें सुन चुकी हो, या किसी पुराने जीर्ण-शीर्ण उपन्यास में पढ़ चुकी हो।

हाल में साशा अपनी पांचों उंगलियों की नोकों पर तश्तरी सम्हाले हुए चाय पी रहा था। दादी अकेली ताश खेल रही थीं। नीना इवानोव्ना पढ़ रही थी। दीपक की रोशनी थिरक रही थी और हर चीज़ स्थिर और सुरक्षित मालूम हो रही थी। नाद्या ने शुभ रात्रि कहा और अपने कमरे में चली गयी। बिस्तर पर लेटते ही उसको नींद आ गयी। लेकिन पिछली रातों की तरह उषा की पहली किरण के साथ ही वह जाग गयी। वह सो नहीं सकी, उसके दिल में बेचैनी और एक बोझ-सा था। वह उठ कर बैठ गयी और घुटनों पर सिर रख लिया और सोचने लगी अपने मंगेतर के बारे में, अपनी शादी के बारे में... किसी कारण से उसे याद आ गया कि मां ने अपने स्वर्गीय पति को प्यार नहीं किया था और अब उसके पास अपना कहने को कुछ भी नहीं था और वह पूरी तरह से दादी यानी अपनी सास पर निर्भर थी। कोशिशों के बावजूद नाद्या न समझ सकी कि अब तक

कैसे उसने मां को अनूठी समझा था और यह नहीं समझा था कि वह मामूली और दुखी औरत है।

नीचे साशा भी जाग चुका था, उसे उसकी खांसी सुनाई दे रही थी। वह एक अजीब भोला व्यक्ति है, नाद्या ने सोचा और उसके सारे सपनों में कुछ निरर्थकता है–उन शानदार और बढ़िया उद्यानों और फव्वारों के सपनों में। लेकिन उसके भोलेपन में, वाहियातपन में भी कितनी सुन्दरता है कि ज्यों ही नाद्या ने सोचना शुरू किया कि शायद उसे सचमुच जाकर पढ़ना चाहिए, त्यों ही उसके दिल में, उसके भीतर ताज़गी देने वाली ठंडक भर गयी और वह आह्लादविभोर हो उठी।

"न सोचना ही अच्छा है," वह फुसफुसायी, "इसके बारे में न सोचना ही अच्छा है..."

"टिक-टोक, टिक-टोक..." दूर से चौकीदार की आवाज़ आ रही थी, "टिक-टोक, टिक-टोक..."

३

जून के मध्य में साशा एकाएक खीज उठा और ऊब गया और मास्को वापस जाने के बारे में बातें करने लगा।

"मैं इस शहर में नहीं रह सकता," उसने रुखाई से कहा। "न नल है और न परनाले का इन्तजाम! मेरे लिए खाना खाना भी असह्य है–रसोई इतनी गंदी है कि क्या कहा जाये..."

"थोड़ा और इन्तजार करो, आवारा बेटे!" दादी बुदबुदायीं, "शादी सातवीं को होगी!"

"मैं नहीं रुकना चाहता।"

"तुमने कहा था कि तुम हमारे साथ सितम्बर तक ठहरोगे।"

"और अब मैं नहीं चाहता। मुझे काम करना है!"

गर्मियां ठण्डी और भीगी निकलीं। पेड़ हमेशा टपटपाते रहते। बगीचा उदास और अप्रिय मालूम होता। सचमुच काम करने को जी चाहता था। ऊपर नीचे हर कमरे से अनजानी औरतों की आवाज़ें सुनाई पड़तीं। दादी के कमरे में सिलाई की मशीन खटखट करती रहती। यह सब दहेज की तैयारी के शोरगुल का हिस्सा था। नाद्या के लिए अकेले जाड़े के कोट छः बन रहे थे और उनमें सबसे सस्ता, दादी ने डींग मारी–तीन सौ रूबल का था! इस शोर-शराबे से साशा को चिढ़ हो रही थी। वह अपने कमरे

में मुंह फुलाये बैठा रहता। लेकिन फिर उसे ठहरने के लिए राज़ी कर लिया गया और उसने पहली जुलाई से पहले न जाने का वादा कर लिया।

वक़्त जल्दी गुज़र गया। सेंट प्योत्र के दिन, खाना खाने के बाद अन्द्रेई अन्द्रेइच नाद्या को किराये पर लिए गए सजाए हुए मकान को एक बार फिर देखने के लिए मोस्कोव्स्काया सड़क ले गया। यह मकान दुमंज़िला था लेकिन अभी तक सिर्फ़ ऊपर का तल्ला सजाया गया था। चमकते हुए फ़र्श वाले हाल में मुड़ी हुई लकड़ी की कुर्सियां, एक बड़ा पियानो और स्वरलिपि रखने के लिए स्टैंड था। ताज़े रंग की बू आ रही थी। दीवाल पर सुनहरे चौखटे में मढ़ा हुआ एक बड़ा तैल-चित्र टंगा हुआ था, जिसपर नंगी औरत टूटे हत्थेदार बैंगनी रंग के फूलदान के पास खड़ी हुई थी।

"बहुत सुन्दर तस्वीर है!" अन्द्रेई अन्द्रेइच ने सम्मान भरी आह के साथ कहा, "यह शिश्मचेव्स्की की कृति है।"

साथ ही दीवानख़ाना था, जिसमें एक गोल मेज़, एक सोफ़ा और चमकीले नीले रंग के कपड़े में मढ़ी हुई आराम-कुर्सियां थीं। सोफ़े के ऊपर पादरी अन्द्रेई का एक बड़ा चित्र था। चित्र में पादरी साहब अपने सब तमग़े और अपना ख़ास टोप लगाये हुए थे। तब वे लोग खाने के कमरे में गए और वहां से सोने के कमरे में। यहां मद्धिम रोशनी में, अगल-बग़ल दो बिस्तर लगे हुए थे, और ऐसा लगता था कि इस कमरे को सजाने वालों ने यह समझ लिया था कि यहां जीवन हमेशा सुखी रहेगा, जैसे और कुछ हो ही नहीं सकता। अन्द्रेई अन्द्रेइच नाद्या को कमरे दिखाता रहा, बिना उसकी कमर से हाथ हटाये हुए। वह अपने को कमज़ोर, दोषी समझ रही थी, और उसे उन तमाम कमरों, बिस्तरों और कुर्सियों से घृणा हो रही थी। नंगी औरत से तो उसे मतली आ रही थी। अब वह साफ़ तौर पर समझ रही थी कि वह अन्द्रेई अन्द्रेइच को प्यार नहीं करती, शायद कभी उसे प्यार नहीं करती थी। हालांकि वह रात-दिन उसके बारे में सोचती रहती थी, वह ठीक नहीं समझ पाती और समझ भी नहीं सकती थी कि यह कैसे कहे, किससे कहे, और कहे ही क्यों। वह उसकी कमर में हाथ डाले था, उससे इतनी दयालुता से, इतनी नम्रता से बातें कर रहा था, अपने घर में घूमता हुआ बहुत ख़ुश था। और नाद्या को सिर्फ़ फूहड़पन, जाहिल, भौंडा, असह्य फूहड़पन दिखलाई पड़ रहा था। और अपनी कमर में अन्द्रेई अन्द्रेइच का हाथ उसको लोहे के घेरे की तरह ठंडा

ग्रौर सख़्त मालूम हो रहा था। किसी भी क्षण वह भाग जाने को, सिसकियां भरने को, खिड़की से बाहर कूद पड़ने को तैयार थी। ग्रन्द्रेई ग्रन्द्रेइच उसको ग़ुस्लख़ाने में ले गया, दीवाल में जड़े हुए एक नल को दबाया ग्रौर पानी बह निकला।

"कैसा रहा?" उसने कहा ग्रौर हंस पड़ा। "मैंने उन लोगों से एक सौ बाल्टियों की एक टंकी बनवायी ताकि हमारे ग़ुस्लख़ाने में पानी ग्राता रहे।"

वे थोड़ी देर ग्रहाते में टहलते रहे ग्रौर फिर सड़क पर निकल ग्राये ग्रौर किराये की गाड़ी में बैठ गये। सड़क पर धूल के बादल उड़ने लगे ग्रौर लगा कि पानी बरसने वाला है।

"क्या तुम्हें सर्दी लग रही है?" ग्रन्द्रेई ग्रन्द्रेइच ने धूल से ग्रांखें बचाते हुए पूछा।

उसने जवाब नहीं दिया।

"तुम्हें याद है कि कल साशा मेरे द्वारा कुछ काम न करने पर भर्त्सना कर रहा था?" उसने थोड़ी देर रुक कर कहा। "हां, वह ठीक था! एकदम ठीक था! मैं कुछ नहीं करता ग्रौर न कुछ करना मैं जानता ही हूं। ऐसा क्यों है, मेरी प्यारी? ऐसा क्यों है कि टोपी में बैज लगाकर दफ़्तर जाने के विचार मात्र से मुझे मतली ग्राने लगती है? ऐसा क्यों है कि मैं एक वकील को, लैटिन के शिक्षक को, नगर-परिषद के सदस्य को देखना तक बरदाश्त नहीं कर सकता? ग्राह रूस-माता! रूस-माता! तुम ग्रपने वक्ष पर कितने ग्रालसियों ग्रौर बेकारों को वहन करती हो! मेरी तरह के कितने लोगों को, कष्ट भोगने वाली मां!"

ग्रौर ग्रपनी निष्क्रियता को समय का चिन्ह मान कर उसने सिद्धान्त बताना शुरू कर दिया।

"जब हमारी शादी हो जायेगी," वह कहता रहा, "हम देहात में चले जायेंगे, मेरी प्यारी, वहां हम काम करेंगे। हम वहां बगीचे ग्रौर झरने वाला एक छोटा-सा ज़मीन का टुकड़ा ख़रीद लेंगे ग्रौर हम मेहनत करेंगे, ज़िन्दगी समझेंगे... ग्राह, यह कितना सुन्दर होगा!"

उसने ग्रपना टोप उतार लिया। उसके बाल हवा में लहराने लगे। नाद्या उसकी बातें सुनती रही ग्रौर सोचती रही: "हे ईश्वर! मैं घर जाना चाहती हूं! हे ईश्वर!" घर के पास ही उन्होंने पादरी ग्रन्द्रेई को पकड़ लिया।

"ग्ररे देखो, वह मेरे पिता हैं!" ग्रन्द्रेई ग्रन्द्रेइच ने खुशी से कहा

और उसने अपना टोप हिलाया। "मैं अपने बूढ़े पिता से प्यार करता हूं, वाक़ई प्यार करता हूं," उसने गाड़ी का किराया देते हुए कहा। "प्यारे बूढ़े। अच्छे बूढ़े।"

अप्रसन्नता और अस्वस्थता अनुभव करती हुई नाद्या घर में चली गयी। वह यह भूल नहीं सकी कि सारी शाम मेहमान रहेंगे और उसे उनकी ख़ातिर-तवाज़ा करनी होगी, मुस्कराना होगा, वायलिन सुननी पड़ेगी, हर तरह की बेवक़ूफ़ी की बातें सुननी पड़ेंगी और सिर्फ़ शादी की बातें करनी पड़ेंगी। दादी रेशमी पोशाक पहने शान से अकड़ी हुई समोवार के पास बैठी हुई थीं, वह बहुत घमंडी मालूम हो रही थीं, जैसा कि वह हमेशा मेहमानों के आने पर लगती थीं। पादरी अन्द्रेई चेहरे पर चालाकी भरी मुस्कराहट लिये कमरे में आये।

"मुझे आप को स्वस्थ देख कर प्रसन्नता और पवित्र सन्तोष प्राप्त हुआ है," उन्होंने दादी से कहा। यह कहना मुश्किल था कि उन्होंने गंभीरता से कहा था या मज़ाक़ में।

४

खिड़कियों के शीशों और छत से हवा टकरा रही थी। सीटियों की सी आवाज़ सुनाई पड़ रही थी और चिमनी में परी अपना उदास गीत गा रही थी। रात का एक बजा था। घर का हर आदमी बिस्तर पर लेट चुका था पर कोई भी सोया न था और नाद्या को लग रहा था कि उसे नीचे से वायलिन बजाये जाने की आवाज़ सुनाई पड़ रही है। बाहर से ज़ोर की आवाज़ आयी। ज़रूर ही कहीं की किवाड़ी क़ब्ज़ों से उखड़ गयी थी। एक मिनट बाद सिर्फ़ शेमीज़ पहने नीना इवानोव्ना मोमबत्ती लिये कमरे में आयी।

उन्होंने पूछा: "यह आवाज़ कैसी थी, नाद्या?"

नाद्या की मां, बालों की चोटी बांधे झेंपी-सी मुस्कराहट लिये इस तूफ़ानी रात में अधिक बूढ़ी, मामूली सूरत वाली और हमेशा से ज़्यादा ठिंगनी मालूम हो रही थी। नाद्या को याद आया कि कैसे वह अभी हाल ही तक अपनी मां को अनूठी महिला समझती थी और उसकी बातें सुनने में गर्व महसूस करती थी। और अब किसी भी क़ीमत पर उसे याद नहीं आ रहा था कि वे शब्द थे क्या – उसे जो शब्द याद आ रहे थे वे मामूली

श्रौर श्रनावश्यक मालूम देते थे।

ऐसा मालूम हो रहा था कि चिमनी के भीतर भारी श्रावाज़ में गाया जा रहा है, लगता कि "हे मेरे परमात्मा!" शब्द भी सुनाई पड़ रहे थे। नाद्या बिस्तर में उठकर बैठ गयी श्रौर उसने श्रचानक सिसकियां भरते हुए माथा थाम लिया।

"मां, मां," वह चिल्लायी, "मेरी प्यारी! काश तुम जानतीं कि मेरे ऊपर क्या गुज़र रही है! मैं तुमसे भीख मांगती हूं, प्रार्थना करती हूं, मुझे चला जाने दो!"

"कहां?" भौचक्की होकर नीना इवानोव्ना ने पूछा श्रौर वह बिस्तर के किनारे बैठ गयी। "तुम कहां जाना चाहती हो?"

नाद्या देर तक रोती चिल्लाती रही, एक भी शब्द बोलने में वह श्रसमर्थ थी।

"मुझे इस शहर से बाहर चला जाने दो!" उसने श्राख़िरकार कहा। "शादी न होनी चाहिए श्रौर न होगी, विश्वास करो! मैं उस श्रादमी को प्यार नहीं करती हूं... मैं उसके बारे में बात करना भी सहन नहीं कर सकती हूं।"

"नहीं, मेरी प्यारी, नहीं," नीना इवानोव्ना ने जल्दी से कहा, वह बहुत डर गयी थी। "श्रपने को शान्त करो। तुम होश में नहीं हो। यह गुज़र जायेगा। ऐसा होता भी है। शायद तुम श्रन्द्रेई से झगड़ श्रायी हो, लेकिन प्रेमियों के झगड़े का श्रन्त चुंबनों में होता है।"

"जाश्रो, मां, जाश्रो," नाद्या रो पड़ी।

"हां," नीना इवानोव्ना ने थोड़ा रुककर कहा। "कल तक तुम एक छोटी बच्ची थीं श्रौर श्रब तुम दुलहन हो। प्रकृति सदैव परिवर्तनशील है। इसके पहले कि तुम समझ सको तुम स्वयं मां बन जाश्रोगी श्रौर उसके बाद बूढ़ी, जिसके मेरे जैसी एक नटखट बेटी होगी।"

"मेरी प्यारी, तुम दयालु श्रौर चतुर हो श्रौर तुम दुखी हो रही हो," नाद्या ने कहा। "तुम बहुत दुखी हो; तुम ऐसी फूहड़ बातें क्यों करती हो?"

नीना इवानोव्ना ने बोलने की कोशिश की। लेकिन एक शब्द भी नहीं बोल सकी, केवल सिसकियां भरती रही श्रौर श्रपने कमरे में लौट गयी। एक बार फिर चिमनी से भारी श्रावाज़ों का रुदन सुनाई दिया श्रौर एकाएक नाद्या भयभीत हो गयी। वह बिस्तर से कूदकर श्रपनी मां के कमरे में भाग गयी। नीना इवानोव्ना की श्रांखें रोने से सूज गयी थीं, वह नीले

रंग का कंबल ओढ़े हुए एक किताब हाथ में लिये लेटी हुई थी।

"मां, मेरी बात सुनो!" नाद्या ने कहा, "सोचो, मुझे समझने की कोशिश करो, मैं तुमसे प्रार्थना करती हूं। सिर्फ़ सोचो कि हमारा जीवन कितना ओछा और अपमानजनक है। मेरी आंखें खुल गयी हैं। मैं अब सब समझ रही हूं। और तुम्हारा अन्द्रेई अन्द्रेइच क्या है? क्यों, वह बिल्कुल भी अक़्लमंद नहीं है, मां! हे ईश्वर, ज़रा सोचो, मां, वह बेवक़ूफ़ है!"

नीना इवानोव्ना एक झटके से उठकर बैठ गयी।

"तुम और तुम्हारी दादी मुझे सताती रहती हैं!" उसने हिचकी भरते हुए कहा। "मैं जीना चाहती हूं, जीना!" बार बार अपनी छाती पर अपने छोटे मुक्के मारते हुए उसने दुहराया। "मुझे आज़ाद कर दो! मैं अभी भी जवान हूं, मैं जीना चाहती हूं। तुमने मुझे बुढ़िया बना दिया है!"

वह फूट-फूटकर रोती हुई कम्बल के नीचे सिकुड़कर लेट गयी। वह छोटी-सी, बेवक़ूफ़ और दयनीय लग रही थी। नाद्या ने अपने कमरे में जाकर कपड़े पहन लिये और फिर सुबह के इन्तजार में खिड़की पर जाकर बैठ गयी। सारी रात वह बैठी सोचती रही और ऐसा लग रहा था कि कोई सारी रात खिड़की खटखटाता रहा और सीटी बजाता रहा।

दूसरे दिन सबेरे दादी ने शिकायत की कि हवा से सारे सेब गिर गये थे और पुराना बेर का पेड़ टूट गया था। सुबह उदास, धुंधली थी। ऐसा दिन जब कि सुबह से ही लैम्प जलाने की तबीयत होने लगती है। हर आदमी ठण्ड की शिकायत कर रहा था, खिड़कियों के शीशों पर पानी की बूंदें टप-टप कर रही थीं। नाश्ते के बाद नाद्या साशा के कमरे में गयी और बिना बोले कोने में रखी हुई कुर्सी के सामने घुटनों के बल गिर पड़ी और अपने चेहरे को हाथों से ढांप लिया।

"क्या?" साशा ने पूछा।

"मैं इस तरह नहीं रह सकती," उसने कहा। "मैं नहीं जानती कि मैं यहां पहले किस तरह रहती थी, मैं बिल्कुल नहीं समझ सकती। मैं अपने मंगेतर से घृणा करती हूं, अपने आप से घृणा करती हूं और मैं इस काहिल और खोखली ज़िन्दगी से घृणा करती हूं..."

"हां, हां," साशा ने कहा, वह अभी तक समझा नहीं था कि वह किस बारे में कह रही है। "कुछ नहीं... अच्छा..."

"यह ज़िन्दगी मेरे लिये घृणित है," नाद्या ने कहा, "मैं एक दिन और यहां रहना बरदाश्त नहीं कर सकती हूं। मैं कल चली जाऊंगी। ईश्वर के लिए, मुझे अपने साथ ले चलो!"

साशा आश्चर्य में एक क्षण उसकी ओर देखता रहा। आख़िरकार बात उसकी समझ में आ गयी और वह एक बच्चे की तरह ख़ुश हो गया, अपनी बांहें हिलाने और थिरकने लगा जैसे आनन्द के मारे नाच रहा हो।

"वाह! वाह!" उसने अपने हाथ मलते हुए कहा, "हे भगवान, कितना सुन्दर है!"

वह उसकी तरफ़ निर्निमेष आंखों से, प्रेम से देखती रही, जैसे मुग्ध हो गयी हो और प्रतीक्षा में थी कि वह फ़ौरन ही कोई ख़ास और असाधारण महत्त्व की बात कहे। साशा ने अभी तक उससे कुछ नहीं कहा था लेकिन उसे अनुभव हो रहा था कि कुछ नवीन और विस्तृत, कोई अनोखी चीज़ उसके सामने आ रही है, और वह साशा को आशा से देखती रही। वह हर चीज़ के लिए तैयार थी, मृत्यु के लिए भी।

"मैं कल जा रहा हूं," कुछ देर सोचकर उसने कहा, "तुम मुझे छोड़ने के लिए स्टेशन तक आओगी... मैं तुम्हारा सामान अपने सन्दूक़ में रख लूंगा और तुम्हारे लिए टिकट ख़रीद लूंगा और जब तीसरी घंटी बजे, तो तुम गाड़ी में चढ़ जाना और हम चले जायेंगे। मास्को तक मेरे साथ चलो और वहां से पीटर्सबर्ग ख़ुद अकेली चली जाओ। क्या तुम्हारे पास पासपोर्ट है?"

"हां।"

"तुम इसके लिए कभी भी नहीं पछताओगी, कभी पश्चात्ताप नहीं करोगी, क़सम से," साशा ने उत्साह से कहा। "तुम चली जाओगी और अध्ययन करोगी, और बाद में अपने आप रास्ता निकल आयेगा। जैसे ही तुम अपनी जिन्दगी में करवट लाओगी, हर चीज़ बदल जायेगी। सबसे बड़ी बात तो ज़िन्दगी में फेर लाना है, बाक़ी सब बेकार है। अच्छा तो, हम लोग कल जा रहे हैं?"

"हां! भगवान करे!"

नाद्या का विचार था कि वह उद्वेलित हो गई है और उसका मन कभी इतना बोझिल नहीं था, उसे पूरा यक़ीन था कि जाने के पहले उसको बहुत सदमा होगा, दुखद विचार उसके दिमाग़ पर छा जायेंगे। लेकिन

वह ऊपर अपने कमरे में पहुंचकर बिस्तर पर लेटी ही थी, कि गहरी नींद आ गयी और आंसू भरे चेहरे और ओठों पर मुस्कराहट लिये शाम तक सोती रही।

५

गाड़ी मंगायी जा चुकी थी। नाद्या कोट और टोप लगाये आखिरी मरतबा अपनी मां और उन सब चीज़ों को जो अभी तक उसकी थीं, देखने ऊपर गयी। वह अपने कमरे में थोड़ी देर बिस्तर के पास खड़ी रही, बिस्तर अभी तक गर्म था, चारों ओर देखा और फिर चुपचाप अपनी मां के कमरे में गयी। नीना इवानोव्ना सो रही थी और उसके कमरे में सन्नाटा था। मां के बाल ठीक करने और उसे चूमने के बाद एक-दो मिनट तक खड़ी रही... तब धीरे क़दमों से नीचे उतर गयी।

बारिश की झड़ी लगी हुई थी। पानी से भीगी और टपकती हुई गाड़ी ओसारे के सामने खड़ी थी। गाड़ी की छतरी उठी हुई थी।

"तुम्हारे लिए उसके पास जगह नहीं है, नाद्या," नौकर गाड़ी में सामान रखने लगे तो दादी ने कहा। "मुझे ताज्जुब है कि तुम ऐसे ख़राब मौसम में उसे छोड़ने जाना चाहती हो। अच्छा हो कि तुम घर पर ही रहो। ज़रा बारिश को तो देखो!"

नाद्या ने कुछ कहने की कोशिश की, लेकिन कह न सकी। साशा ने उसे गाड़ी में बिठाया और कंबल से उसके पैर ढक दिये। और अब वह उसकी बग़ल में बैठा था।

"विदा, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे!" दादी ओसारे से चिल्लायीं। "मास्को पहुंचकर चिट्ठी लिखने का ख़्याल रखना, साशा!"

"अच्छी बात है, विदा दादी!"

"स्वर्ग की देवी तुम्हारी रक्षा करे!"

"क्या मौसम है!" साशा ने कहा।

नाद्या ने अब रोना शुरू किया। उसे अब जाकर ज्ञान हुआ कि वह वास्तव में चली जा रही है। इसका उसको अभी तक वास्तव में विश्वास नहीं हो रहा था, अपनी मां के पास खड़ी थी, तब भी नहीं, दादी से विदा लेते समय भी नहीं। विदा, मेरे शहर! तमाम बातें जल्दी जल्दी उसके दिमाग़ में घूम गयीं – अन्द्रेई, उसका पिता, नया मकान और फूलदान वाली

नंगी औरत। लेकिन अब उसे इन बातों से डर नहीं लगा और न उसे मन पर बोझा ही मालूम हुआ। ये छोटी और क्षुद्र बातें हो गयी थीं। अतीत में यह सब दूर, और दूर खोया जा रहा था और जब वे रेल में सवार हुए और गाड़ी चल दी तो उसका सम्पूर्ण अतीत – इतना बड़ा और महत्त्वपूर्ण – सिमट, सिकुड़कर ज़रा-सा रह गया; और एक शानदार भविष्य जिसकी अभी तक केवल रेखा ही दिखाई देती थी, उसके सामने उभरता जा रहा था। गाड़ी की खिड़कियों पर पानी की बूंदें टप-टप कर रही थीं। हरे-भरे खेतों, तेज़ी से गुज़रने वाले तार के खम्भों, तारों पर बैठी चिड़ियों के सिवा और कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था, और एकाएक वह आनन्द विभोर हो उठी – उसे याद आया कि वह आज़ाद होने और पढ़ने के लिए जा रही है, जैसे कभी पुराने ज़माने में लोग भागकर कज़्ज़ाकों में मिल जाते थे। वह हंसी, रोयी और प्रार्थना की।

"सब कुछ ठीक है!" साशा ने मुस्कराते हुए कहा, "सब कुछ!"

६

पतझड़ समाप्त हुआ और उसके बाद जाड़ा भी। नाद्या को अब घर की याद बहुत सताती और वह हर रोज़ अपनी दादी और मां के बारे में सोचती। उसे साशा का भी ख़्याल आता। घर से कृपापूर्ण और सहृदय पत्र आते जिससे लगता था कि सारी बातें क्षमा कर दी गयी थीं और भूली जा चुकी थीं। मई की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के बाद वह स्वस्थ और सानन्द घर को रवाना हो गयी। साशा से मिलने के लिए वह मास्को में रुकी। वह बिल्कुल वैसा ही था जैसा कि साल भर पहले – दाढ़ी रखे, अस्तव्यस्त, वही लम्बा कोट और किरमिच की पतलून पहने; उसकी आंखें हमेशा की भांति बड़ी और सुन्दर थीं। लेकिन वह बीमार और सताया हुआ लग रहा था। वह अधिक बूढ़ा और दुबला दिखाई दे रहा था और लगातार खांसता था। नाद्या को वह नीरस और तनिक ग्रामीण लग रहा था।

"अरे, यह तो नाद्या है!" ख़ुशी से हंसते हुए वह चिल्लाया। "मेरी प्यारी, मेरी लाड़ली!"

वे दोनों साथ साथ तम्बाकू के धुएं और रंग व स्याही की दम घोटने वाली बदबू वाले लिथो-छापेख़ाने में कुछ देर बैठे और फिर साशा के कमरे में चले गये, वहां तम्बाकू की बू भरी हुई थी, कूड़ा-करकट फैला हुआ

था और चारों तरफ़ गन्दगी थी। मेज़ पर ठंडे समोवार के पास एक टूटी प्लेट रखी हुई थी, जिसमें भूरा-सा एक काग़ज़ का टुकड़ा था और मेज़ व फ़र्श मरी हुई मक्खियों से भरे हुए थे। यहां की हर चीज़ बतला रही थी कि साशा अपनी निजी ज़िन्दगी का ज़रा भी ख़्याल नहीं करता, अस्तव्यस्त रहता और उसे आरामदेह जीवन के प्रति उपेक्षा थी। यदि कोई उससे उसके व्यक्तिगत सुख और निजी जीवन के बारे में पूछता, कि कोई ऐसा है, जो उसे प्यार करता हो, तो उसकी समझ ही में न आता कि पूछने वाले का मंशा क्या है और वह सिर्फ़ हंस देता।

"हर चीज़ अच्छी तरह गुज़र गयी," नाद्या ने जल्दी से कहा। "मां मुझसे मिलने के लिए पतझड़ के मौसम में पीटर्सबर्ग आयी थीं, उनका कहना था कि दादी नाराज़ नहीं हैं। लेकिन वह मेरे कमरे में आती रहती हैं दीवालों पर सलीब का चिन्ह बनाती रहती हैं।"

साशा ख़ुश दिल मालूम हो रहा था, लेकिन खांसता था और फटी आवाज़ में बातें कर रहा था और नाद्या उसकी ओर देखती रही। वह सोच रही थी कि क्या वह वास्तव में बहुत बीमार है या यह उसकी कल्पना है।

"साशा, मेरे प्यारे!" उसने कहा, "लेकिन तुम तो बीमार हो।"

"मैं ठीक हूं, ज़रा अस्वस्थ हूं, कोई गंभीर बात नहीं..."

"ईश्वर के लिए," नाद्या ने बेचैन आवाज़ में कहा, "तुम डाक्टर को दिखाने के लिए क्यों नहीं जाते? तुम अपने स्वास्थ्य का ध्यान क्यों नहीं रखते? मेरे प्यारे, प्रिय साशा!" उसने कहा और उसकी आंखों में आंसू भर आये और किसी वजह से अन्द्रेई अन्द्रेइच, फूलदानवाली नंगी औरत और उसके सारे अतीत का चित्र, जो बचपन की तरह बहुत धुंधला और दूर प्रतीत होता था, उसके दिमाग़ में घूम गया। और वह रो उठी क्योंकि अब उसे साशा साल भर पहले की तरह मौलिक, चतुर और दिलचस्प नहीं मालूम हुआ। "साशा, प्रिय, तुम बहुत बीमार हो, मैं नहीं जानती कि तुम्हें पीला और क्षीण न देखने के लिए मैं क्या नहीं कर सकती! मैं तुम्हारे प्रति बहुत ऋणी हूं। तुम कल्पना नहीं कर सकते कि तुमने मेरे लिए कितना काम किया है! वास्तव में, साशा, तुम मेरे जीवन में सबसे घनिष्ठ और प्रिय व्यक्ति हो।"

वे बैठे हुए बातें करते रहे। और अब पीटर्सबर्ग में एक जाड़ा व्यतीत करने के बाद नाद्या को लग रहा था कि साशा की बातचीत में, उसकी मुस्कराहट और उसकी सम्पूर्ण आकृति में कोई ऐसी चीज़ थी, जो पुराने फ़ैशन की, पिछड़ी-गुज़री हुई है, जो शायद क़ब्र तक पहुंच चुकी है।

"मैं परसों वोलगा पर सैर करने के लिए जा रहा हूं," साशा ने कहा, "उसके बाद मैं कुमीस (घोड़ी के दूध से बना पेय—सं०) का इस्तेमाल करना चाहता हूं। मेरा एक दोस्त और उसकी बीवी मेरे साथ जा रहे हैं। दोस्त की बीवी बहुत अच्छी है। मैं उसे समझाने की कोशिश करता रहता हूं कि वह जाकर पढ़े। मैं चाहता हूं कि वह अपनी ज़िन्दगी को उलट-पलट दे।"

जब वे अपनी बातों का ख़ज़ाना ख़ाली कर चुके तो स्टेशन गए। साशा ने उसे चाय पिलायी और उसके लिए कुछ सेब ख़रीदे और जब गाड़ी चली और वह मुस्कराता हुआ अपना रूमाल हिला रहा था तो नाद्या उसकी टांगें देख कर ही समझ रही थी कि वह कितना बीमार है और उसके ज्यादा दिनों जिन्दा रहने की आशा नहीं है।

नाद्या अपने शहर में दोपहर को पहुंची। जब वह स्टेशन से अपने घर जा रही थी तो उसे सड़कें अस्वाभाविक रूप से चौड़ी लग रही थीं और मकान छोटे और नीचे नीचे। उसे कोई भी आदमी न दिखाई पड़ा सिवा पियानोसाज़ जर्मन के जो अपना मटमैला ओवरकोट पहने हुए था। मकान धूल से सने हुए मालूम पड़ रहे थे। दादी ने जो अब वाक़ई बूढ़ी हो गई थीं और पहले ही की भांति मोटी और असुन्दर थीं, नाद्या की कमर में बांहें डाल दीं और नाद्या के कंधे पर सिर रख कर बहुत देर तक रोती रहीं, गोया वह अपने को अलग न कर पा रही हों। नीना इवानोव्ना की भी उमर बहुत ज्यादा लगने लगी थी और वह मामूली-सी सिकुड़ी-सी लग रही थी, मगर वह अब भी तंग कपड़े पहनती और उसकी उंगलियों से हीरे चमकते।

"मेरी प्यारी!" उसने ऊपर से नीचे तक कांपते हुए कहा, "मेरी दुलारी!"

और फिर वे बैठ गयीं और चुपचाप रोने लगीं। यह सहज ही देखा जा सकता था कि दादी और मां दोनों समझ गयी हैं कि अतीत हमेशा के लिए खो गया है। उनका सामाजिक रुतबा, पहले का बड़प्पन, घर में

मेहमान बुलाने का हक़ ख़त्म हो चुका है। वे उन आदमियों की तरह महसूस कर रही थीं, जिनकी आरामदेह और बिना परेशानी की ज़िन्दगी में किसी रात पुलिस वाले आयें और तलाशी लें और यह पता लगे कि घर के मालिक ने ग़बन या जालसाज़ी की है और फिर हमेशा के लिए आरामदेह और बिना परेशानी की ज़िन्दगी ख़त्म!

नाद्या ऊपर गयी और वही पुराना बिस्तर, सफ़ेद परदों वाली वही खिड़कियां, खिड़की से बगीचे का वही दृश्य – धूप से नहाया हुआ, ख़ुश, ज़िन्दा। उसने अपनी मेज़ छुई, बैठ गयी और सपनों में खो गयी। उसने अच्छा खाना खाया और फिर मलाई की मोटी तह वाली चाय पी। मगर उसे कुछ कमी-सी महसूस हो रही थी। कमरों में एक खोखलापन नज़र आ रहा था, छत बहुत नीची लगी। रात में जब वह सोने गयी और उसने कंबल ओढ़ा तो उसे गर्म और बहुत नर्म बिस्तर में लेटना उपहासास्पद लगा।

नीना इवानोव्ना एक मिनट के लिए आयी और अपराधी की तरह सहमी-सी चारों तरफ़ देखती हुई बैठ गयी।

"अच्छा, नाद्या," उसने कहा, "क्या तुम ख़ुश हो? वाक़ई ख़ुश हो?"

"हां, मां!"

नीना इवानोव्ना ने उठकर नाद्या और खिड़कियों के ऊपर क्रास का चिन्ह बनाया।

"जैसा कि तुम देख रही हो, मैं धार्मिक हो गयी हूं," उसने कहा। "मैं दर्शन का अध्ययन कर रही हूं और मैं सोचती रहती हूं, सोचती रहती हूं... और बहुत-सी चीज़ें अब मुझे दिन की रोशनी की तरह साफ़ हो गयी हैं। मुझे लगता है कि सबसे महत्त्व की बात जीवन को बहुमुखी शीशे के ज़रिये देखना ही है।

"मां, दादी कैसी हैं?"

"वह ठीक लगती हैं। जब तुम साशा के साथ चली गयी थी और दादी ने तुम्हारा तार पढ़ा तो वह ज़मीन पर गिर पड़ीं। उसके बाद बिना हिले वह तीन दिन तक बिस्तर पर पड़ी रहीं और फिर वह रोने और प्रार्थना करने लगीं। लेकिन अब वह ठीक हैं।"

नीना इवानोव्ना उठकर कमरे में चहलक़दमी करने लगी।

"टिक-टोक..." चौकीदार की आहट आयी, "टिक-टोक, टिक-टोक..."

"ज़िन्दगी को बहुमुखी शीशे के ज़रिये देखना चाहिये," उसने कहा, "दूसरे शब्दों में अपनी चेतना में जीवन को सरल तत्त्वों में विभाजित कर देना चाहिए, सात मौलिक रंगों की तरह और हर तत्त्व का अलग अलग अध्ययन करना चाहिए।"

फिर नीना इवानोव्ना ने और क्या कहा और वह कब चली गयी नाद्या को नहीं मालूम, क्योंकि वह फ़ौरन ही सो गयी थी।

मई गुज़री और जून आया। नाद्या घर पर रहने की आदी हो गयी। दादी समोवार के पास बैठी हुई चाय उंडेलती हुई ठण्डी सांसें भरतीं। नीना इवानोव्ना शामों को अपने दर्शन के बारे में बातें करती। वह अब भी एक आश्रित की तरह घर में रहती और थोड़े-से कोपेक की भी ज़रूरत पड़ने पर दादी के सामने हाथ पसारती। घर में मक्खियां भरी थीं और छत दिनों दिन नीची आती प्रतीत हो रही थी। इस डर से कि कहीं पादरी अन्द्रेई और अन्द्रेई अन्द्रेइच से मुलाक़ात न हो जाये, दादी और नीना इवानोव्ना कभी बाहर नहीं निकलती थीं। नाद्या बगीचे और गलियों में टहलती और मकानों और भूरी चहारदीवारों को देखती हुई सोचती कि शहर बहुत दिनों से बूढ़ा हो रहा है, इसके दिन बीत चुके हैं और अब यह अपने अंत की प्रतीक्षा में है या फिर ताज़गी और जवानी के आरम्भ होने की। काश, यह नयी और पाक ज़िन्दगी जल्दी आ जाए, जब हम सिर ऊंचा कर आगे बढ़ सकें, क़िस्मत की आंखों में आंखें डालकर देख सकें, यह जानते हुए कि हम सही हैं, ख़ुश और आज़ाद रह सकें! ऐसी ज़िन्दगी देर-सबेर आकर रहेगी! वक़्त आयेगा जब दादी के मकान का कुछ भी नहीं रहेगा, जिसमें चार नौकरानियां एक ही ढंग से तहख़ाने के गंदे कमरे में रहती आयी थीं – वक़्त आयेगा, जब उस मकान का चिन्ह भी शेष नहीं रहेगा, जब हर आदमी इसका अस्तित्व भूल जायेगा और याद करने वाला कोई भी नहीं बचेगा। नाद्या का एक मात्र मनबहलाव पड़ोस के घर के बच्चे थे जो, जब वह बगीचे में टहलती, तो चहारदीवारी पर हाथ मारकर हंसते हुए चिल्लाते:

"दुलहन, दुलहन!"

सारातोव से साशा का ख़त आया। उसने अपनी टेढ़ी-मेढ़ी और बेढंगी लिखावट में लिखा था कि वोल्गा की सैर बहुत सफल रही है। लेकिन वह सारातोव में ज़रा बीमार पड़ गया और उसकी आवाज़ ग़ायब हो गयी थी

ग्रौर पिछले पन्द्रह दिन से वह ग्रस्पताल में है। नाद्या समझ गयी कि इसके क्या मानी हैं ग्रौर एक ग्राशंका, एक विश्वास-सा उसके दिल में बैठ गया। उसे चिढ़ लग रही थी कि ग्राशंका ग्रौर ख़ुद साशा के विचार से वह ग्रब पहले की भांति द्रवित नहीं हो पा रही थी। उसे ज़िन्दा रहने की इच्छा, पीटर्सबर्ग जाने की इच्छा हो रही थी। ग्रौर साशा के साथ दोस्ती ग्रतीत की चीज़ मालूम हो रही थी, जो प्रिय होने पर भी बहुत दूर हो गयी थी। वह सारी रात सो नहीं सकी, ग्रौर सवेरे खिड़की पर जाकर बैठ गयी, मानो किसी बात को सुनने वाली हो। ग्रौर वास्तव में नीचे से बातचीत की ग्रावाज़ ग्रायी – दादी घबराहट के साथ किसी से कुछ जल्दी-जल्दी पूछ रही थीं। फिर कोई रोया... जब नाद्या नीचे गयी तो दादी कमरे के कोने में खड़ी हुई प्रार्थना कर रही थीं ग्रौर उनका चेहरा ग्रांसुग्रों से भरा हुग्रा था। मेज़ पर एक तार पड़ा हुग्रा था।

दादी का रोना सुनते हुए नाद्या कमरे में बहुत देर तक इधर से उधर चक्कर काटती रही। फिर तार उठाकर पढ़ा। तार में लिखा था कि कल सुबह सारातोव में ग्रलेक्सान्द्र तिमोफ़ेइच या साशा क्षय से मर गया।

दादी ग्रौर नीना इवानोव्ना मृतक के लिए प्रार्थना करवाने के लिए गिरजाघर गयीं ग्रौर नाद्या बहुत देर तक कमरों में सोचती हुई चक्कर काटती रही। वह ग्रच्छी तरह समझ रही थी कि जैसा साशा चाहता था, उसकी ज़िन्दगी उलट-पलट हो गयी थी, वह यहां पर ग्रकेली, परायी-सी, यहां पर ग्रवांछित थी। ग्रौर यहां पर कोई चीज़ नहीं थी, जिसे वह चाहती हो। विगत छीनकर ख़त्म कर दिया गया था मानो वह ग्राग में जल कर भस्म हो गया था ग्रौर राख हवा में बिखेर दी गयी थी। वह साशा के कमरे में गयी ग्रौर वहां खड़ी रही।

"विदा, प्यारे साशा!" उसने कहा। उसकी कल्पना में उसके सामने नयी, वृहत् ग्रौर विशाल ज़िन्दगी थी ग्रौर यह ज़िन्दगी, ग्रभी तक ग्रस्पष्ट ग्रौर रहस्यमय, उसे बुला रही थी, ग्रागे खींच रही थी।

वह ऊपर सामान बांधने चली गयी ग्रौर दूसरे दिन सवेरे ग्रपने घर से विदा लेकर प्रसन्न ग्रौर उमंगों से भरी हुई शहर से चली गयी, कभी भी वापस न लौटने के विश्वास से साथ।

१९०३

प्रिय पाठकगण,

पिछले कुछ समय से प्रगति प्रकाशन "सर्वश्रेष्ठ रूसी और सोवियत पुस्तकमाला" प्रकाशित कर रहा है।

इसके अन्तर्गत अब तक निम्न पुस्तकें निकल चुकी हैं:

इवान तुर्गेनेव, "रूदिन";
फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की, "रजत रातें";
लेव तोलस्तोय, "कहानियां";
बोरीस लाव्रेन्योव, "इकतालीसवां";
ब्रूनो यासेन्स्की, "कायाकल्प";
चंगीज़ आइत्मातोव, "तीन लघु उपन्यास";
मक्सिम गोर्की, "चुनी हुई कहानियां"।

इन पुस्तकों के बारे में आपके विचार जानकर हम अनुगृहीत होंगे।

हमारा पता है:
प्रगति प्रकाशन,
२१, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ
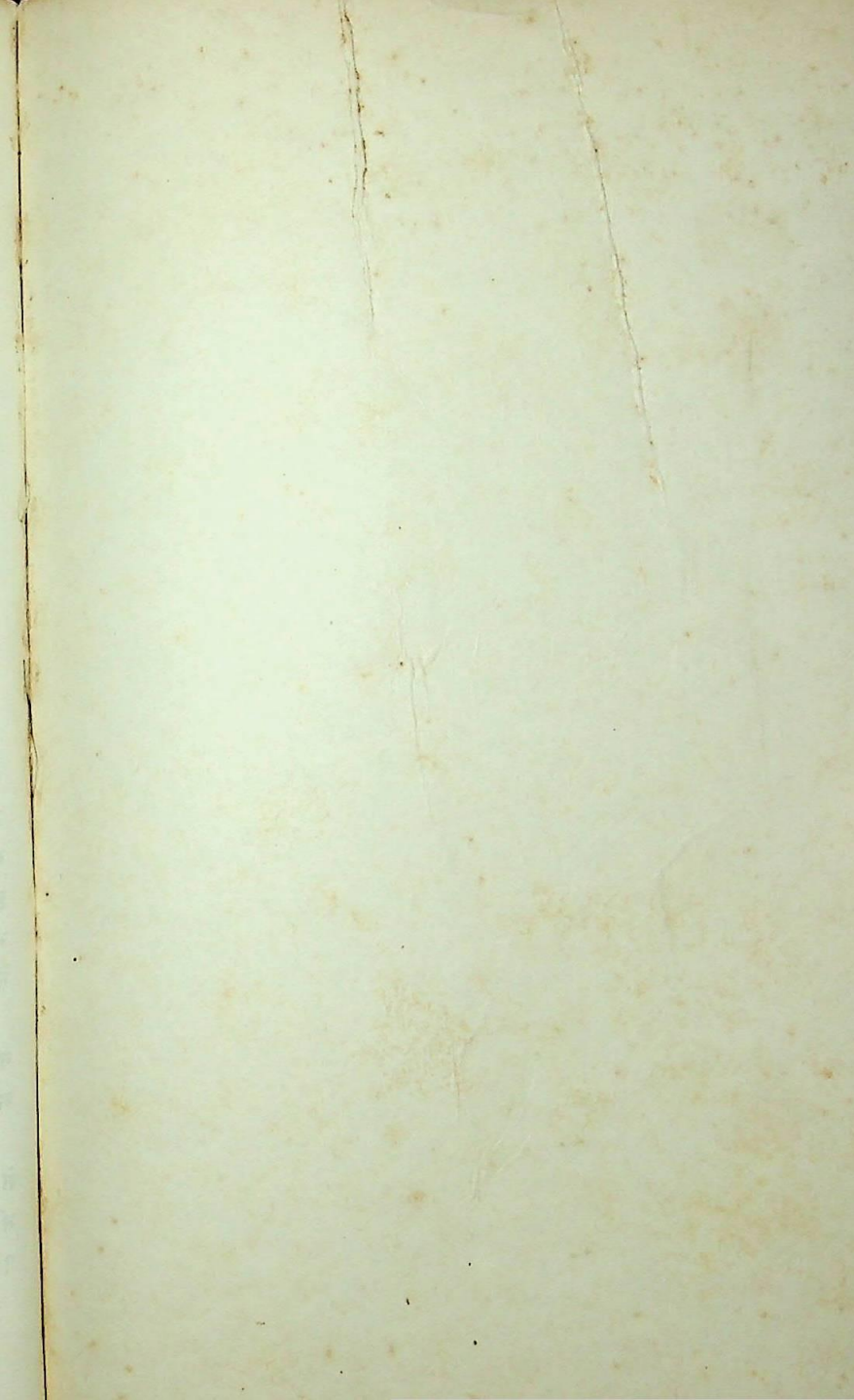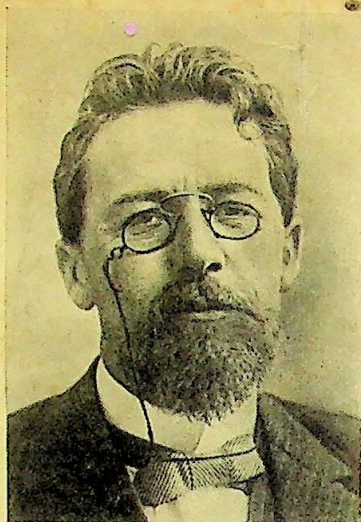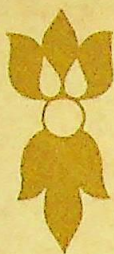
चेख़ोव एक अतुलनीय कलाकार हैं। हां, बिल्कुल अतुलनीय। वह जीवन के कलाकार हैं। उनके सृजन-कार्य का कमाल यह है कि वह केवल प्रत्येक रूसी के ही नहीं, बल्कि आम तौर से प्रत्येक मनुष्य के निकट है...

लेव तोलस्तोय

रूस... उन्हें बहुत दिनों तक याद रखेगा, बहुत दिनों तक जीवन को उनकी कृतियों के ज़रिये समझेगा, जिनमें एक प्रेम करनेवाले हृदय की दुखद मुस्कान का उजाला है, उनकी कहानियों के ज़रिये, जो जीवन के गहरे ज्ञान से ओत-प्रोत हैं।

शैलीकार की हैसियत से चेख़ोव अतुलनीय हैं और साहित्य का एक भावी इतिहासकार रूसी भाषा के बारे में लिखते हुए कहेगा कि इस भाषा का निर्माण पुश्किन, तुर्गेनेव और चेख़ोव ने किया था।

मक्सिम गोर्की